विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

Dhingra Family Foundation USA

शिवना प्रकाशन

वर्ष : 7, अंक : 27
अक्टूबर-दिसम्बर 2022
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

औरत

चंद्रकांत देवताले

वह औरत
आकाश पृथ्वी के बीच
कबसे कपड़े पछीट रही है?
पछीट रही है शताब्दियों से
धूप के तार पर सुखा रही है
वह औरत आकाश और धूप और हवा से
वंचित घुप्प की गुहा में
कितना आटा गूँथ रही है?
गूँथ रही है टनों आटा
असंख्य रोटियाँ
सूरज की पीठ पर पका रही है
एक औरत
दिशाओं के सूप में
खेतों को फटक रही है
एक औरत वक़्त की नदी में
दोपहर के पत्थर से
शताब्दियाँ हो गयीं
एड़ी घिस रही है
एक औरत अनंत पृथ्वी को
अपने स्तनों में समेटे
दूध के झरने बहा रही है
एक औरत अपने सिर पर
घास का गठ्ठर रखे
कबसे धरती को नापती ही जा रही है
एक औरत अँधेरे में
खर्राटे भरते हुए आदमी के पास
निर्वसन जागती
शताब्दियों से सोयी है।
एक औरत का धड़
भीड़ में भटक रहा है
उसके हाथ अपना चेहरा ढूँढ़ रहे हैं
उसके पाँव
जाने कब से सबसे
अपना पता पूछ रहे हैं।
000

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

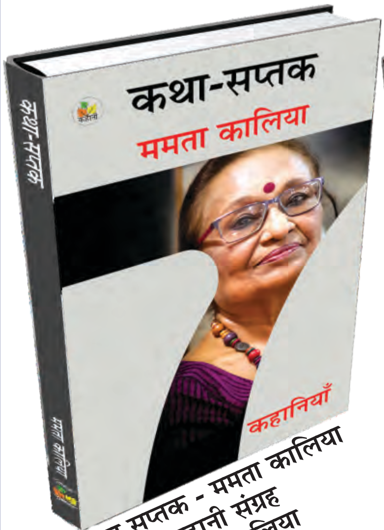

कथा सप्तक - ममता कालिया
कहानी संग्रह
ममता कालिया

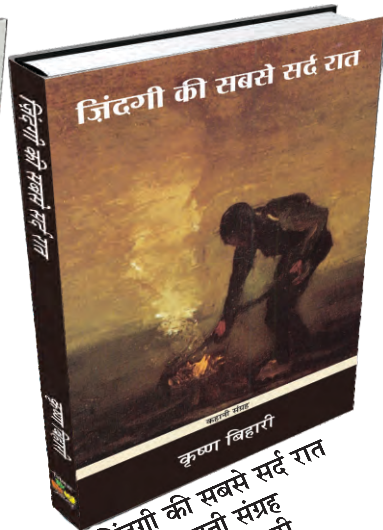

ज़िंदगी की सबसे सर्द रात
कहानी संग्रह
कृष्ण बिहारी

एक्स वाई का ज़ेड
कहानी संग्रह
प्रभात रंजन

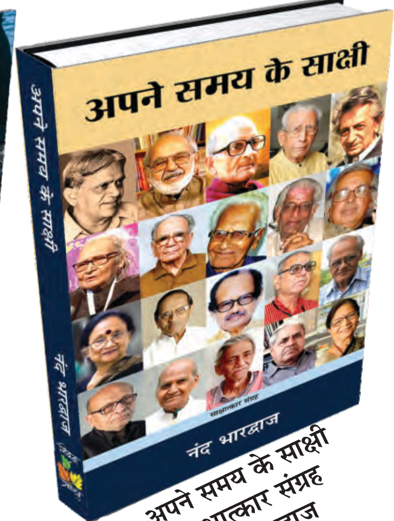

अपने समय के साक्षी
साक्षात्कार संग्रह
नंद भारद्वाज

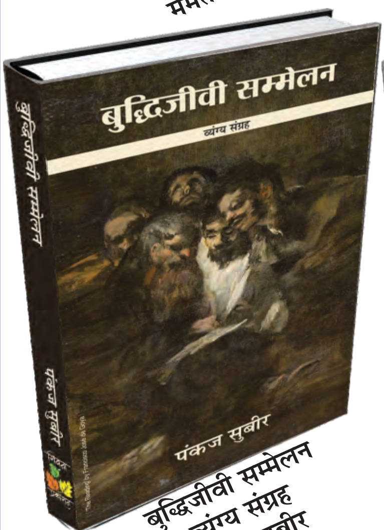

बुद्धिजीवी सम्मेलन
व्यंग्य संग्रह
पंकज सुबीर

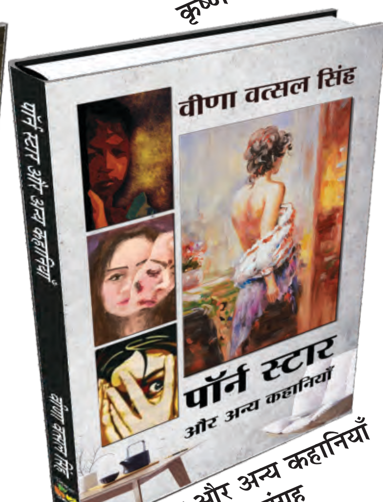

पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ
कहानी संग्रह
वीणा वत्सल सिंह

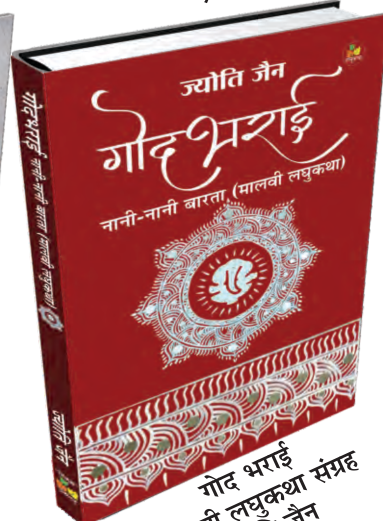

गोद भराई
मालवी लघुकथा संग्रह
ज्योति जैन

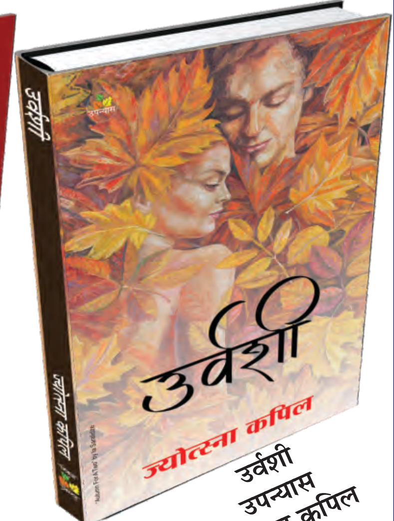

उर्वशी
उपन्यास
ज्योत्स्ना कपिल

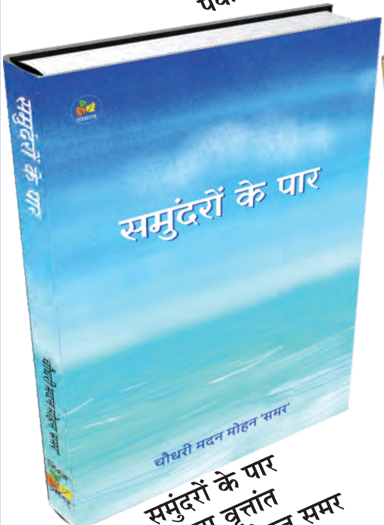

समुंदरों के पार
यात्रा वृत्तांत
चौधरी मदन मोहन समर

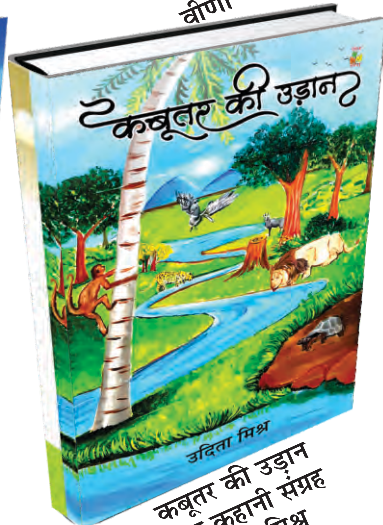

कबूतर की उड़ान
बाल कहानी संग्रह
उदिता मिश्र

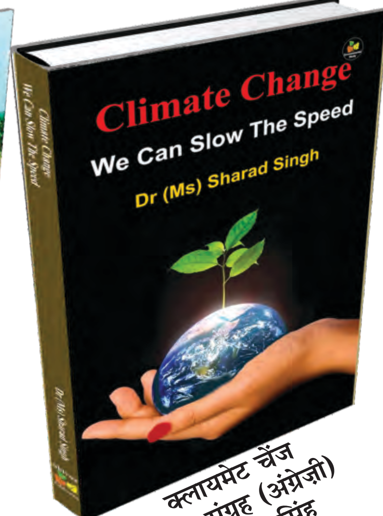

क्लायमेट चेंज
निबंध संग्रह (अंग्रेज़ी)
डॉ. शरद सिंह

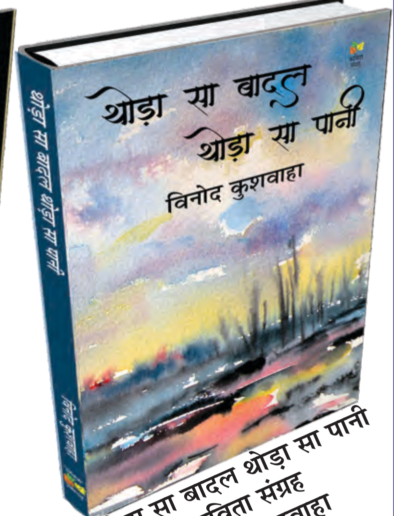

थोड़ा सा बादल थोड़ा सा पानी
कविता संग्रह
विनोद कुशवाहा

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
WhatsApp +91-8819806162
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक एवं क़ानूनी सलाहकार
शहरयार (एडवोकेट)

सह संपादक
शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 7, अंक : 27, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2022
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण कविता
चंद्रकांत देवताले

आवरण चित्र
शहरयार

इस अंक में

आवरण कविता / चंद्रकांत देवताले
संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4
संस्मरण आलेख
'मलका-ए-मौसीक़ी'-रोशन आरा बेगम
पंकज पराशर / 5
पुस्तक समीक्षा
दो परिंदे और नील कुरिंजी का फूल
हीरालाल नागर / दिनेश द्विवेदी, राजेश चंद्रा / 8
आलोचना
दिनेश कुमार / शैलेश कुमार, डॉ. नीलम सिंह / 12
काला सोना
केतन यादव / रेनू यादव / 17
मेरी चयनित कहानियाँ
डॉ. पंकज साहा / माधव नागदा / 20
वसन्त का उजाड़
गोविंद सेन / प्रकाश कान्त / 23
एक्स वाई का ज़ेड
महेश कुमार / प्रभात रंजन / 26
मन कस्तूरी रे
डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा / अंजू शर्मा / 28
नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर
डॉ. रमाकांत शर्मा / खेमकरण 'सोमन' / 29
कोई ख़ुशबू उदास करती है
सुषमा मुनीन्द्र / नीलिमा शर्मा / 30
एक टुकड़ा आसमान
डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा / विनोद कुशवाहा / 32
अकाल मृत्यु एवं अन्य कहानियाँ
योगेन्द्र शर्मा / डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ / 34
गुनगुनी चाय और स्त्री
मुकेश निर्विकार / कुन्तेष दहलान / 36
कथा-सप्तक
दीपक गिरकर / सूर्यबाला / 38
सफेद तितली
डॉ. गिरिराज शर्मा गुंजन / डॉ. रमाकांत शर्मा / 40
देखा सा मंज़र
प्रकाश कान्त / गोविन्द सेन / 44
इन दिनों जो मैंने पढ़ा / सुधा ओम ढींगरा
दो गज़ ज़मीन / हरि भटनागर / 16
कहानी पर चर्चा
ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे / पंकज सुबीर (वनमाली कथा)
चर्चाकार : वीणा संवाद प्रकल्प / 45
नई पुस्तक
कथा-सप्तक / ममता कालिया / 43
बुद्धिजीवी सम्मेलन / पंकज सुबीर / 64
अपने समय के साक्षी / नंद भारद्वाज / 68
ज़िंदगी की सबसे सर्द रात / कृष्ण बिहारी / 76
पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ / वीणा वत्सल सिंह / 101
गोद-भराई -नानी-नानी बारता / ज्योति जैन / 105
शोध आलेख
मधु कांकरिया के उपन्यासों में स्त्री जीवन
मुनेन्द्र भाटी / 49
हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता और नवलेखन का अन्त: संबंध
मीना शर्मा / 52
स्त्री : अनामिका की नज़र में
भावना शाक्य / 55
काम का अर्थ एवं परिभाषा : उदात्त जीवन के सन्दर्भ में
डॉ. विजय कुमार पटीर / 57
मित्रो मरजानी : स्त्री जैविक अधिकारों का शंखनाद
शबनम भारतीय / 60
नरेन्द्र कोहली की व्यंग्य-चेतना
डॉ. अजय के. पटेल / 63
दलित साहित्यकारों के गद्य में दलितों की अभिव्यक्ति का स्वर
सीताराम खटीक / 65
एक डूबते जहाज की अंतर्कथा में मध्यवर्ग पर चिंतन
ओमवती / 66
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में कामकाजी स्त्री
डॉ.कल्पना आर.पटेल / 69
हिन्दी कविता में वैश्विक नारी का सामाजिक चिंतन
डॉ.परमजीत एस.पनेसर / 71
शेफाली के फूल उपन्यास में अभिव्यक्त स्त्री जागरण के स्वर
सरिता मीना / 74
हिन्दी साहित्य में किन्नर जीवन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
सुमन / 77
श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य चेतना
पटेल कमलेश कुमार / 80
ठीकरे की मंगनी उपन्यास का तात्त्विक विवेचन
डॉ. भरत अ. पटेल / 83
बौद्ध कालीन साहित्य और समाज में नारी जीवन की विवेचना
डॉ. पवन राजपुरोहित / 86
भास के नाटकों में संगीत
डॉ. रीटा एच. पारेख / 89
मानवीय मूल्यों के उद्घोषक : महात्मा गाँधी
डॉ. शीतल ए. अग्रवाल / 91
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वेदकालीन न्यायिक महत्ता
डॉ. बी.बी. चौधरी / 93
समय की सलवटें और 'समय सरगम' : कृष्णा सोबती
डॉ. अनिता भट्ट / 95
मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यासों में नारी संवेदना
डॉ. अर्जुन के. तड़वी / 97
हिंदी आत्मकथा साहित्य में किन्नर जीवन
डॉ. सनोज पी.आर / 99
गाँधी से अमृतकाल तक आधी आबादी: जयप्रकाश चौकसे
सीमा जोधावत / 102
Impact of Globalisation on Employment of Employees
Dr. Love Kumar / 106
Impact of capacity Building to Promoting Human Resource
Rani Pal / 108
Salt trade in the Chittagong Division
Sanjeev Kumar Dey / 112

संपादकीय

उत्सवधर्मी लेखक

साहित्य में इस समय उत्सवों का दौर है। साल के पूरे तीन सौ पैंसठ दिन कहीं न कहीं, कोई न कोई उत्सव आपको चलता हुआ मिलेगा ही। लेखक अपना सामान लिए-लिए एक एयरपोर्ट से दूसरे एयरपोर्ट (जी हाँ अब हिन्दी का लेखक हवा में ही उड़ता है) भागते फिर रहे हैं। उत्सव में जाओ फिर उसके बाद सबसे बड़ी चिंता यह होती है कि फ़ोटो ठीक-ठाक आ जाएँ सोशल मीडिया पर लगाने के लिए। क्योंकि इन दिनों जो उत्सव हो रहे हैं, उनका असल उद्देश्य शायद सोशल मीडिया ही है। लेखक उत्सव में अपना सत्र पूरा कर तुरंत पहुँचता है पाँच अथवा तीन सितारा होटल (अब का हिन्दी लेखक धर्मशाला में नहीं रुकता) के कमरे में, अपने फ़ोटोज़ सोशल मीडिया पर अपलोड करने के लिए। इस अपलोड करने में कहीं न कहीं यह भाव भी होता है- 'देख लो हम फिर एक उत्सव में बुला लिए गए हैं।' कई बार तो ऐसा होता है कि लेखक को एक उत्सव निपटा कर उसी शहर से किसी दूसरे शहर के उत्सव में जाना होता है। उसके पास समय भी नहीं होता है कि वह अपने घर जाकर फिर वहाँ से आगे जा सके। इस तरह का हाल अभी तक मंचीय कवियों का और मुशायरों के शायरों का होता था मगर अब हिन्दी के लेखकों का भी वही हाल हो चुका है। कवि सम्मेलनों तथा मुशायरों में और इन उत्सवों में फ़र्क़ बस इतना है कि वहाँ भरपूर संख्या में श्रोता होते हैं, और यहाँ श्रोता तो नहीं के बराबर होते हैं, बस कुछ लेखक होते हैं, जो श्रोता होने का दायित्व पूरा करते हैं। इसी कारण अक्सर यह होता है कि उत्सवों के जो फ़ोटो सोशल मीडिया पर आते हैं, उनमें केवल मंच के ही फ़ोटो होते हैं, श्रोताओं के फ़ोटो डालने से अक्सर परहेज़ किया जाता है। क्योंकि असल में तो कई बार श्रोता होते ही नहीं हैं। कई ऐसे सेवानिवृत्त लेखक हैं, जो लेखन और सरकारी नौकरी दोनों से सेवानिवृत्त हो चुके हैं, उनको बुलाने पर उत्सव के आयोजक को यह फ़ायदा होता है कि उसे उनके केवल रहने और खाने (पीने) की ही व्यवस्था करनी होती है, बाक़ी आने-जाने का मार्ग-व्यय वे अपना स्वयं ही उठाते हैं। कारण...? उत्सवधर्मिता.... बहुत दिनों तक यदि सोशल मीडिया पर फ़ोटो नहीं डाले तो लोग कहने लगेंगे 'क्या बात है, बहुत दिनों से कहीं गए नहीं क्या आप ? सोशल मीडिया पर कोई नए कार्यक्रम की फ़ोटो नहीं देखी।' यह प्रश्न बड़ा विकट होता है, जिसका उत्तर किसी के पास नहीं होता है। इसी प्रश्न से बचने के लिए यह अपनी पेंशन में से ही अपने मार्ग-व्यय का दायित्व पूरा करते हुए घूमते रहते हैं। एक शहर से दूसरे शहर, दूसरे शहर से तीसरे शहर। पहले तो सीनियर सिटिजन होने के कारण रेल में किराया आधा ही लगता था, लेकिन अब तो सरकार ने वह सुविधा भी बंद कर दी, तो अब तो पूरा टिकट लेकर ही घूमना पड़ता है। इस पूरी चर्चा के अंत में यह प्रश्न ज़रूर उठता है कि आख़िर इन उत्सवों से साहित्य का क्या भला हो रहा है। साहित्य का तो छोड़ ही दीजिए, पहले तो इसी सवाल का उत्तर तलाशा जाए कि इन उत्सवों से उन लेखकों का, या उनके लेखन का ही क्या भला हो रहा है, जो झोला उठाए अनवरत घूमे ही जा रहे हैं। बेशक यात्राएँ करना लेखन की पहली शर्त होती है, यात्राएँ आपको अनुभव देती हैं, नई जगह, नए परिवेश को जानने का अवसर प्रदान करती हैं। लेकिन वह यात्राएँ अलग होती हैं, उन यात्राओं में यात्री ठहर कर, रुक कर देखता है उस नई जगह हो। जानने की कोशिश करता है कि जहाँ वह आया है, वह क्या जगह है। मगर इन उत्सवों में तो लेखक के पास ठहरने का अवसर ही नहीं होता है। सुबह की फ़्लाइट से आए हैं, दोपहर का सत्र है, शाम की फ़्लाइट से वापसी है। जो देखते हैं, उसमें एयरपोर्ट और होटल के अलावा कुछ नहीं। हवा के घोड़े पर सवार होकर आते हैं, और उसी पर सवार लौट जाते हैं। हाँ... एक फ़ायदा ज़रूर होता है और वो यह कि पीआरशिप या जनसंपर्क बहुत अच्छा हो जाता है। अगले कुछ उत्सवों में सीट पक्की हो जाती है। शायद यही मुख्य उद्देश्य भी होता है..। **आपका ही**

शहरयार

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

संस्मरण आलेख

'मलका-ए-मौसीक़ी'-रोशन आरा बेगम

पंकज पराशर

पंकज पराशर
हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ 202002 उप्र
मोबाइल- 9634282886
ईमेल- pkjppster@gmail.com

पाकिस्तान में 'मलका-ए-मौसीक़ी' के तौर जानी जानेवाली, हिंदुस्तान में पैदा हुई और पली-बढ़ी रोशनआरा बेगम को सुनते हुए आज भी किराना घराने के उस्ताद अब्दुल करीम खाँ साकार हो उठते हैं। रोशनआरा ने ख़याल, ठुमरी और ग़ज़ल गायिकी में महारत हासिल करके न सिर्फ अपना एक अलहदा मुक़ाम बनाया, बल्कि बेहद नेक और रहमदिल ख़ातून के अलावा वह एक बड़ी फ़नकारा के तौर पर अपनी पहचान बनाकर इस फ़ानी दुनिया से रुख़्सत हुईं। रोशन आरा का तआल्लुक हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के अज़ीम घरानों में से एक किराना घराने के उस्ताद अब्दुल करीम खाँ से था। संगीत रसिक जानते होंगे के किराना घराने की नींव 11 नवंबर, सन् 1872 को सूबा उत्तर प्रदेश के शामली ज़िले के कैराना नामक कस्बे में पैदा हुए उस्ताद अब्दुल करीम खाँ ने रखी थी। खाँ साहब ने इस घराने के जरिए हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में ख़याल गायकी की परंपरा को आगे बढ़ाया। अब्दुल करीम खाँ साहब के जिन शागिर्दों और उनके शागिर्दों के सिखाए हुए जिन कलाकारों ने किराना घराने की गायकी को ऊँचाई पर पहुँचाया, उनमें पंडित सवाई गंधर्व, पंडित सुरेश बाबू माने, विदुषी हीराबाई बड़ोदकर, विदुषी रोशन आरा बेगम, सरस्वतीबाई मिरजकर, विदुषी गंगूबाई हंगल, डॉ प्रभा अत्रे, माणिक वर्मा और भारत सरकार का सबसे बड़ा सम्मान 'भारत रत्न' पाने वाले पंडित भीमसेन जोशी का नाम बेहद अदब-ओ-एहतराम से लिया जाता है। इसी किराना घराने की गायिका रोशन आरा बेगम भी थीं, जिनके बारे में 'ठुमरी ऑफ क्वीन' के तौर पर मशहूर विदुषी गिरिजा देवी कहती हैं, 'वे जितनी बेहतरीन गायिका थी, उतनी ही खुश-अख़लाक औरत थी। उस ज़माने में रोशन आरा बेगम एक ही पैदा हुई हैं। उनकी जैसी फास्ट तान करने वाला सुरीला कलाकार पूरे हिंदुस्तान भर में कोई और नहीं था।'

कलकत्ता में रहने वाली अपनी ख़ाला अज़मत बेगम नूरी के यहाँ पैदा हुई रोशन आरा बेगम का असली नाम वहीदुन्निसा था। चूँकि उन्हें बचपन में बिल्ली पालने का बड़ा शौक था, इसलिए बिल्ली की आवाज़ म्याऊँ की वज़न पर उनकी माँ चंदा बेगम उन्हें 'माऊवाँ' कहकर बुलाती थीं। उनके आँगन में नीम का एक पुराना और मोटा-सा पेड़ था। जिसके नीचे बचपन में वह खेलती थीं और कभी-कभार गुस्से में जब उनकी माँ उन्हें मारने के लिए दौड़तीं, तो वे अम्मी को उसी पेड़ के चारों तरफ गोल-गोल घुमाना शुरू कर देतीं। चारों तरफ चक्कर लगा-लगा करके जब उनकी माँ चंदा बेगम थककर बैठ जातीं, तो मार से बच जाने की ख़ुशी में बच्ची वहीदुन्निसा खिलखिलाकर भाग जाती थीं। बेगम रोशन आरा की पैदाइश की तारीख़ को लेकर उनकी ख़ाला अज़मत बेगम कहती थीं कि रोशन आरा जब पैदा हुई, तो वह शायद सन् 1915 या

1916 के 12 वफ़ात थी। यानी रबी उल अव्वल को पैदा हुईं। जबकि कई कई लोगों ने सन् 1917 में उनकी पैदाइश बताया है। बच्ची वहीदुन्निसा के रोशन आरा बेगम नाम पाने का क़िस्सा भी ख़ासा दिलचस्प है। बेगम रोशन आरा का तआल्लुक दरअसल लखनऊ के पास देवाशरीफ़ के वारसी ख़ानदान से था। उनके ख़ानदान वाले वहाँ के मुरीद थे। उसी वारसी ख़ानदान के एक फ़क़ीर थे माजा प्यारी साहब। बहुत बड़े अल्लाह वाले, पहुँचे हुए फ़क़ीर। एक बार कलकत्ता अज़मत बेगम के घर तशरीफ़ ले गए। बच्ची वहीदुन्निसा उनके पास आई, तो उन्होंने पूछा, 'बेटा, कुछ सुनाओ।' तब उन्होंने कुरानशरीफ़ से कुछ आयतें सुनाई। उसके बाद उन्होंने कहा, 'कुछ गाते-वाते भी हो?' तो उन्होंने एक नातिया क़लाम गाकर उन्हें सुना दिया। इस पर फ़क़ीर साहब खुश हुए। फिर उन्होंने उनसे नाम पूछा। तो उन्होंने कहा, 'मेरा नाम है जी, माऊवाँ।' ये नाम सुनकर फक़ीर माजा प्यारी साहब मुस्कुराए और कहा, 'ये तो नाम प्यार का नाम है, किताब का नाम क्या है?' तो बच्ची ने कहा, 'जी मुझे वहीदुन्निसा कहते हैं।' फक़ीर ने कहा, 'ये नाम तो है, लेकिन आपका नाम रोशन जहाँ होना चाहिए। ताकि सारे जहाँ में आपका नाम रोशन हो'-ये दुआ देते हुए उस फ़क़ीर ने माऊवाँ उर्फ वहीदुन्निसा का नाम बदलकर रोशन जहाँ रख दिया। फिर उनका नाम रोशन जहाँ से रोशन आरा बेगम कब और कैसे हुआ, इसका क़िस्सा हम आगे बताएँगे।

शुरू से उनकी तबीयत में मौसीक़ी थी। जब वह नौ साल की थीं, तो कलकत्ता के मशहूर सारंगीवादक उस्ताद लड्डन खाँ साहब से उन्होंने मौसीक़ी की तालीम लेनी शुरू की। एक घंटा लड्डन खाँ साहब उन्हें सिखाते और उनके जाने के बाद एक घंटा वे रियाज़ करतीं। यानी कुल दो घंटे उनके सीखने और रियाज़ करने का सिलसिला चलता। उस्ताद लड्डन खाँ से सीखने का सिलसिला तकरीबन चार बरस तक चला। लड्डन खाँ साहब के एक दोस्त थे बहादुर खाँ। वह एक दिन लड्डन खां साहब के साथ रोशन जहाँ के घर आए, तो कहा, मैं अभी बंबई में एक गवैये अब्दुल करीम खाँ साहब को सुनकर आया हूँ। वे गाते नहीं, रुलाते हैं। ख़ुदा ने उनके गले में ऐसी तासीर दी है कि वे जब गाते हैं, तो उनके गाने को सुनकर लोग रोने लगते हैं। यह सुनकर रोशन जहाँ ने अपनी वालिदा से कहा कि मैं ऐसा ही गाना चाहती हूँ, इसलिए अगर आप मुझे बंबई लेकर जाएँ, तो मैं अब्दुल करीम खाँ साहब से तालीम हासिल कर सकती हूँ। रोशन जहाँ अपनी अम्मी चंदा बेगम की अकेली औलाद थीं, न कोई और बहन, न कोई भाई, इस वज़ह से घर में सबकी बहुत लाडली थी। फर्नीचर कारोबारी उनके वालिद अब्दुल हलीम साहब की मौसीक़ी में कोई दिलचस्पी नहीं थी। ख़ैर, उनकी माँ चंदा बेगम ने बेटी की बात मान ली और बंबई में रहनेवाली अपनी बहन को ख़त लिखा कि वे रोशन जहाँ को लेकर बंबई आ रही हैं। उनकी ख़ाला अज़मत बेगम नूरी को भी मौसीक़ी का शौक़ था और वे बड़े-बड़े गवैयों से सीखती थीं। बंबई पहुँचकर कुछ दिनों तक ख़ाला के घर रहने के बाद बेटी को उस्ताद अब्दुल करीम खाँ साहब से तालीम दिलवाने के लिए उनकी माँ ने एक फ्लैट किराये पर ले लिया और बंबई में रहने लगीं। उन दिनों पार्श्व गायन की किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। उन्हीं लोगों को फिल्म में काम मिलता था, जो अच्छा गा भी सके। रोशन आरा को फिल्म 'नूर-ए-इस्लाम' में बतौर हीरोइन और रामानंद को हीरो चुना गया। यही फिल्म करते समय डायरेक्टर ने उनका नाम बदलकर रोशन जहाँ से रोशनआरा बेगम कर दिया।

बंबई में अपने करियर का आग़ाज उन्होंने गायिका के तौर पर किया। ऑल इंडिया रेडियो पर उनके गाने बजने लगे थे। सन् 1936 में सोहराब मोदी की फिल्म 'पुकार' में उन्होंने पार्श्वगायन की शुरुआत की। 'जुगनू' फिल्म में फ़िरोज़ निज़ामी की बनाई धुन पर 'देश की पुरक़ैफ रंगी-सी फिजाओं में कहीं' गाया, जिसमें मलिका-ए-तरन्नुम मैडम नूरजहाँ ने एक्टिंग की थी। उनकी ज़िंदगी में यही वह मोड़ है, जहाँ उस्ताद अब्दुल करीम खाँ ने उन्हें आगे किसी फिल्म में गाने से मना करते हुए क्लासिकल मौसीक़ी पर ध्यान देने को कहा। खाँ साहब से सीखने का सिलसिला चार सालों तक चला। एक बार हैदराबाद दकन में वह गा रही थीं। उनकी आवाज़ वह जादू पैदा करने में कामयाब रही कि वहाँ बैठे लोगों की आँखों में आँसू आ गए-जैसे बहादुर खाँ साहब बंबई में उस्ताद अब्दुल करीम खाँ को सुनकर रोने लगे थे। बंबई में एक पुलिस के आला ऑफिसर थे चौधरी अहमद खाँ। सूबा पंजाब के रहने वाले थे। मौसीक़ी के बहोत बड़े रसिया। उन्होंने कई जगह रोशन आरा बेगम को सुना था और वे उनकी आवाज़ के वे दीवाने थे। उन्होंने बेगम साहिबा की अम्मी चंदा बेगम के पास रोशन आरा का हाथ माँगने के लिए अपना पैगाम भिजवाया। उनकी अम्मी ने चौधरी साहब के सामने शर्त रखी कि ये शादी तभी होगी जब आप मेरी बेटी के गाने पर कोई रोक-टोक नहीं करेंगे। चौधरी अहमद खाँ ने यह शर्त मंज़ूर कर ली और सन् 1944 में बेगम रोशन आरा के साथ उनका निक़ाह हो गया। अगस्त सन् 1947 में जब पाकिस्तान बना, तो उस वक़्त उनकी ख़ाला अज़मत बेगम नूरी कलकत्ते के हॉस्पीटल में भर्ती थीं, जहाँ उनका ऑपरेशन हुआ था। बेगम रोशन आरा और चौधरी अहमद खाँ साहब उस वक़्त कलकत्ते में थे। हिंदुस्तान के बँटवारे के आठ महीने के बाद बेगम रोशन आरा और उनके शौहर अप्रैल 1948 में नए बने मुल्क पाकिस्तान के सूबा पंजाब में गुज़रात और झेलम के बीच छोटे से शहर लालामूसा चले गए, जहाँ चौधरी साहब का घर और ज़मीन थी।

लालामूसा जाने के डेढ़ साल तक रोशन आरा बेगम ने नहीं गाया, क्योंकि उनके ससुर और सास को बहू का गाना-बजाना पसंद नहीं था। जब बंबई के क़द्रदानों को पता चला कि बेगम रोशन आरा अब पाकिस्तान में हैं, तो उन लोगों ने अपने पाकिस्तानी दोस्तों से कहलवाया। फिर पाकिस्तान में उनके चाहने वालों और लाहौर के रेडिया पाकिस्तान के आला हाकिमों ने चौधरी साहब से बारहा इल्तजा की, तब उन्हें फिर से गाने की इजाजत मिली। पाकिस्तान में उनका पहला प्रोग्राम एक बड़े म्यूजिक कॉन्फ्रेंस में था, जहाँ उस्ताद

बड़े गुलाम अली ख़ाँ भी गाने के लिए आए थे। बड़े गुलाम अली खां साहब तब तक पाकिस्तान छोड़कर हिंदुस्तान के बंबई में नहीं बसे थे। उनके आलोचक कहते हैं कि पाकिस्तान में मलका- ए- मौसीक़ी और हिंदुस्तान में देवी सरस्वती कहलाने वाली रोशन आरा बेगम बेहद सादगीपसंद और सादादिल थीं। उनकी खुश- अख़लाकी, ईमानदारी और शराफत ने कलाकार के तौर पर उनके क़द को और बड़ा बना दिया। दीन-ओ-मजहब को पक्के तौर पर मानने वाली बेगम रोशन आरा फज्र का नमाज़ पढ़कर रियाज़ में मसरूफ हो जाती थीं। चूँकि उनकी कोई औलाद नहीं थी, इसलिए उन्होंने एक लड़के और लड़की को गोद लिया, जिनके ऊपर उन्होंने ख़ूब माँ का प्यार लुटाया। इसके अलावा उनको पालतू जानवरों से इतनी मोहब्बत थी कि उनके घर में कई बिल्लियाँ, कुत्ते, कबूतर के अलावा कई भैंस और भैसों का चारा ढोकर लाने के लिए घोड़े भी थे।

एक गायिका के तौर पर उनकी सबसे बड़ी ख़ासियत थी ऊँचे सुर में गाते हुए भी आवाज़ की मधुरता पर नियंत्रण। ख़याल गाते वक़्त राग की शुद्धता और उसे पूरी बारीकी के साथ उसे निभाना। सन् 1954 में बंबई में एक बड़ा संगीत सम्मेलन था, जहाँ राग झिंझौटी और राग भैरवी में गायी उनकी ठुमरी को आज तक आख़िरी इंटरप्रेटर माना जाता है, जहाँ हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तमाम बड़े उस्ताद जमा हुए थे और उन सबको बेगम रोशन आरा ने दाँतों तले ऊँगली दबाने को मजबूर कर दिया था। मुझे नहीं पता कि उनकी ख़याल गायकी में ये चीज़ें किराना घराने से जुड़े होने की वज़ह से था या यह उनकी अपनी व्यक्तिगत विशेषता थी, लेकिन उनकी यह शैली थी क़ाबिले-तारीफ़। उनके गाये रागों में मेरा सदाबहार राग है-राग आनंदी। इस राग का द्रुत तीन ताल में निबद्ध है, जिसके बोल हैं, 'अजहुँ न आए बालम बहुत दिन बीते'। उस्ताद गुलाम हैदर ख़ाँ ने एक अख़बार वाले से बात करते हुए कहा था कि बेगम रोशन आरा की गायकी का कंपेरिजन अगर उनके वक़्त के किसी सिंगर से की जा सकती है, तो वे एक ही हैं उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ।

सन् 1950 की बात है। रेडियो लाहौर ने सात दिनों तक चलने वाले सालाना जलसे 'जश्ने-बहाराँ' में बेगम रोशन आरा बेगम और उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ को गाने के लिए निमंत्रिय किया गया। इसमें पहले दिन उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ ने अपना पसंदीदा राग मालकौंस पूरे जोश और ताकत के साथ पेश किया और उसके बाद बेगम रोशन आरा ने अपना पसंदीदा राग शंकरा पूरे जोश और पूरी ताक़त के साथ पेश किया। दोनों कलाकारों को सुनकर लाहौर के लोग यह तय नहीं कर पाए आख़िर किस कलाकार ने बेहतर गाया। अगली शाम को बेगम रोशन आरा को पहले गाना था और उन्होंने राग बसंत गाना शुरू किया। मार्च का महीना था और लाहौर बसंत की खुशबू और रंगों से सराबोर था। रोशन आरा बेगम ने ऐसा समाँ बाँधा कि कुछ लोग खुशी से नाचने लगे, तो कुछ लोग सुध-बुध खोकर उनके ऊपर फूल बरसाने लगे। उनके गाने के बाद आए उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ। उन्होंने अपनी गायकी पर पूरी महारत और राग पर गहरी पकड़ के साथ राग काफी कान्हड़ा गाना शुरू किया। लेकिन उनसे पहले गाकर गईं बेगम रोशन आरा ने जो समाँ बाँधा था, उसे उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ तोड़ नहीं पाए। आख़िर में उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ साहब ने दर्शकों के सामने रोशन आरा बेगम बेगम की बेहद तारीफ़ की और कहा कि वह अल्लाह से दुआ करेंगे कि बेगम इसी तरह बेहतर से बेहतरीन गाती रहें।

रोशन आरा बेगम को पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल अय्यूब खान ने सन् 1960 में 'सितारा-ए-इम्तियाज' देकर सम्मानित किया। रोशनआरा बेगम यह एज़ाज पाने वाली पाकिस्तान की पहली महिला गायिका थीं। 06 दिसंबर, 1982 को दिल का दौरा पड़ने की वज़ह से उनका इंतकाल हो गया। उनके गुज़र जाने के बाद पाकिस्तान में 'किराना घराना' पूरी तरह ख़त्म हो गया, हालाँकि हिंदुस्तान में किराना घराना के कलाकार आज भी पूरे दम-खम के साथ गा रहे हैं।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(संस्मरण)

दो परिंदे और नील कुरिंजी का फूल

समीक्षक : हीरालाल नागर

लेखक : दिनेश द्विवेदी, राजेश चंद्रा

प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन, नई दिल्ली

नील कुरिंजी के फूल को न आपने देखा और न मैंने। यहाँ इसको देखने वाले और समझने वाले दो लोग हैं- कवि दिनेश द्विवेदी और लेखक राजेश चन्द्रा। जो लेखक द्वय हैं- 'दो परिन्दे और नील कुरिंजी का फूल' नामक किताब के।

अमृता प्रीतम हिन्दी और पंजाबी भाषा की विश्व विख्यात लेखिका हैं। साहित्य अकादमी, भारतीय ज्ञानपीठ आदि प्रतिष्ठित पुरस्कार से सम्मानित अमृता प्रीतम को सन् 1969 में भारत सरकार ने 'पद्मश्री' से भी नवाज़ा। 1980 में वे राज्यसभा के लिए भी चुनी गई थीं। इसके अलावा उनको 11 जुलाई सन् 2000 में 'शताब्दी-सम्मान' भी मिला।

अमृता प्रीतम को उनकी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' से सबसे पहले जाना-पहचाना गया। बाद में पंजाबी पत्रिका 'नागमणि' और उनकी अनेक पंजाबी और पंजाबी से हिन्दी में अनूदित पुस्तकों ने उनके यश को आसमान तक पहुँचाया और लोगों से आगे बहुत दूर निकल गईं।

कवि-लेखक और 'पुनश्च' पत्रिका के संपादक दिनेश द्विवेदी और पूर्व राजपत्रित अधिकारी राजेश चंद्रा कब और कैसे अमृता प्रीतम के सम्पर्क में आए, इसकी मुख़्तसर जानकारी इस पुस्तक में दर्ज है। यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। जितना कि अमृता प्रीतम के सम्पर्क में आने के बाद का जीवन। अमृता प्रीतम और दिनेश द्विवेदी के बीच मैत्री सम्बंधों की गहराई का हिन्दी साहित्य की दुनिया को पता तब चला, जब दिनेश जी ने अपनी पत्रिका 'पुनश्च' का अमृता प्रीतम पर विशेषांक निकाला। 'अमृता प्रीतम पर ध्यानस्थ' पुनश्च विशेषांक का हिन्दी साहित्य में भरपूर स्वागत हुआ। लोगों ने पहली बार अमृता प्रीतम और दिनेश द्विवेदी के परस्पर अंतरंग संबंधों को समझा। 'दो परिंदे और नीलकुरिंजी का फूल' पुस्तक कवि व लेखक दिनेश द्विवेदी की ही कल्पना है, जिसमें उन्होंने अमृता प्रीतम के लेखकीय व्यक्तित्व में समाहित 'इश्क़ हकीकी' और 'इश्क़ मजाजी' के स्वरूप को बाहर लाने का काम किया। यह उनके अमृता प्रीतम के लेखन और उनके सूक्ष्म रूहानी व्यक्तित्व का ही प्रभाव है, जिसमें डूबते-उतराते हुए दिनेश द्विवेदी ने अमृता प्रीतम के जीवन के सार-तत्व को बाहर लाने का अथक प्रयास किया। इसमें दिनेश द्विवेदी के अगाध प्रेम, समर्पण और मंगलोद्दीप्त भाव का अद्भुत मिश्रण दिखाई देता है। इस पुस्तक के दूसरे लेखक राजेश चंद्रा हैं, जिन्होंने दिनेश द्विवेदी की निकटता, आत्मीयता और लगाव की चरम अवस्था को देखा तथा समझा है- और उन्होंने ही 'दोस्ती की जुगलबंदी : अमृता प्रीतम और दिनेश द्विवेदी' शीर्षक देकर अमृता प्रीतम के साथ दिनेश द्विवेदी की अंतरंगता को सामने रखा है। इस शीर्षक के तले दिनेश द्विवेदी के अमृता प्रीतम तथा इमरोज़ से लिए गए साक्षात्कार हैं और अमृता प्रीतम पर आलेख हैं, जो उन्होंने समय-समय पर लिखे।

अमृता प्रीतम के लेखन और उनके जीवन को एक साथ समझने का यह दिनेश द्विवेदी द्वारा अप्रतिम प्रयास है। इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन आलेखों में कहीं भी अमृता प्रीतम की मूर्ति खंडित नहीं होती। उनका (अमृता प्रीतम का) व्यक्तित्व बड़ा और बड़ा होता चला जाता है और दिनेश द्विवेदी का व्यक्तित्व शिशुवत हो जाता है। वे (दिनेश द्विवेदी) लेखक नहीं रह जाते। वे एक ऐसे माध्यम बन जाते हैं जो अमृता प्रीतम के जीवन के अलौकिक, इश्क़ और मोहब्बत के अदृश्य संसार की खोज में साक्षीभाव में निरंतर सलग्न नज़र आते हैं।

हीरालाल नागर
बी 174/41 सी, सादतपुर विस्तार,
गली नं.-2, जीवन ज्योति स्कूल
के पास (करावल नगर रोड)
दिल्ली-110094
मोबाइल- 9582623368

'इश्क़ का साया' (अमृता जी के साक्षात्कार) में दिनेश द्विवेदी उन सवालों से रू-ब-रू हैं, जिनके जवाब में अमृता प्रीतम को 'सच' के सिवा कुछ नहीं कहना होता। साहित्य, कहानी और कविता को परिभाषित करने का जोखिम कभी न कभी बड़े रचनाकार को उठाना पड़ता ही है। 'अदब और अदीब पर आपकी सोच...' सवाल पर अमृता प्रीतम के इस जवाब पर किंचित ग़ौर कीजिए- 'साहित्य को एक काया मानकर कहना चाहती हूँ कि जब किसी के आने से उस काया का अंग-अंग खिलने लगा, तो आने वाले का नाम कहानीकार हुआ। और जब किसी के आने से उस काया के साँस बौराने लगे, तो आने वाले का नाम कवि हुआ। और जब किसी के आने से उस काया के प्राण दीपक से जलने लगे, तो उस आने वाले का नाम ऋषि हुआ। और जब इन सबसे तरंगित उस काया की आँखों में प्रेम और प्रार्थना का एक आँसू भर आया, तो उस आँसू का नाम रजनीश हुआ- आशी।' (पृष्ठ-18)

कहानी को लेकर उनके विचार हैं- 'कहानी एक बहुत बड़ी कला है, जो अपने लोगों की वेदना को आकारमय करती है। एक-एक कण यथार्थ से लेती है। और फिर कला के तल पर एक नए यथार्थ की ज़मीन पर उस कण-कण को सँजोती है। कुछ इस तरह कि उन किरदारों के लिए पाठक के संग-संग चलने लगते हैं।' (पृष्ठ-18)

अमृता प्रीतम पंजाबी भाषा की अद्वितीय कवि हैं- उनके सोच और भाव की गहराई को समझना आसान नहीं। कविता की बातों में उनका ख़याल बिल्कुल जुदा हैं- कुछ विशिष्ट और अतीन्द्रिय- 'कविता के अहसास की शिद्दत एक दूसरा कोण हैं, जहाँ एक टुकड़ा पाताल और एक टुकड़ा आकाश उसके अक्षरों में उतर जाते हैं। और यही चेतना जब प्राणों में खिलती है तो अक्षर-अक्षर ऋषि-वाक् करता चला जाता है।' (पृष्ठ-18-19)

अमृता प्रीतम एक अबूझ व्यक्तित्व है- इस भारतीय मनीषा का, जिसकी पूरी सोच भारतीय दर्शन, सूफी दर्शन, बौद्ध तथा जैन दर्शन की प्रतिभूत विचार शृंखला से प्रभावित है।

अमृता प्रीतम हिन्दी साहित्य की ही नहीं- विश्व साहित्य तथा समाज की जीवित किंवदंती की तरह थीं। साहिर लुधियानवी उनके पहले प्रेमी थे मगर अलग धर्म और सम्प्रदाय ने उन्हें अलग रहने को विवश किया। इमरोज़-उनके आख़िरी साँस तक साथ रहे। राजेश चंद्रा और दिनेश द्विवेदी उनके अत्यंत करीबी लेखक और साहित्यकार रहे। दिनेश द्विवेदी ने इमरोज़ का साक्षात्कार लेने में सफलता हासिल की- 'ख़ुदा का पता'। दिनेश द्विवेदी का यह दूसरा साक्षात्कार है, जो इमरोज़ और अमृता प्रीतम के रिश्ते को समझने का माध्यम बनता है। दिनेश द्विवेदी का इमरोज़ से एक सवाल है, 'अमृता जी के परिवार में आपने अपनी पहचान किन अर्थों में और किस तरह तलाश ली?' यह ऐसा सवाल है जो इमरोज़ तथा अमृता प्रीतम के परस्पर मौन रिश्ते को शब्द देता है। सवाल का जवाब देखें- 'जब मेरा और उसका लफ़्ज़ों का अंतर मिट गया, तो उसका परिवार सिर्फ उसका कैसे रहेगा?' उसके लफ़्ज की कथा में जब मेरा लफ़्ज प्राणी की तरह धड़कने लगा अलग से अपने लिए जगह बनाने का सवाल ही मिट गया। जगह तो वहाँ पहले से थी, उसमें सिर्फ प्राणों की तरह बसना था।' (पृष्ठ-24)

अमृता तथा इमरोज़ के साथ साक्षात्कार में दिनेश द्विवेदी ने उन सवालों को फ्रेम किया, जिनका संबंध उनके लेखन तथा रूहानी तबियत के ज़्यादा निकट है।

अमृता प्रीतम का पद्य और गद्य दोनों गहरी संवेदना से ओत-प्रोत है। प्रेम और करुणा से भीगा हुआ संसार उनके लेखन के केन्द्र में है। अपने एक आलेख 'अमृता होने के मायने' में लेखक दिनेश द्विवेदी यह सिद्ध करते हैं कि अमृता प्रीतम का लेखन 'समाधि भाव' का द्योतक है। 'जहाँ लेखक का कौशल, किरदार और पाठक की कल्पना का साधारणीकरण एकमेव हो उठे, इसे ही क्लासीकल भाषा में 'समाधि भाव' कहते हैं।' लेकिन यह निर्विवाद रूप से मान्य है कि अमृता प्रीतम के उपन्यास और कविता संग्रह आदि ने पंजाबी ही नहीं- विश्व भाषा के लेखकों तथा पाठकों को उद्वेलित किया है। 'पिंजर' अमृता प्रीतम का चर्चित उपन्यास है, जिस पर फिल्म निर्माण भी हुआ है। दिनेश द्विवेदी ने अपने इस 'पिंजर' आलेख में अमृता के लेखन की बेबाक गहरी पड़ताल की है। इसमें अमृता जी तथा दिनेश द्विवेदी के अंतरंग संबंधों की शिनाख़्त भी हो जाती है, जब अमृता जी दिनेश द्विवेदी के लिए एक नज़्म लिखती है- 'प्रेम के चरम पर / जैसे मीरा समा गई थी / अपने कृष्ण में / वैसे ही मैं भी / समा जाऊँगी एक दिन तुम में।' (पृष्ठ-30)

कुछ लेखकों और कवियों ने अमृता प्रीतम की किताबों पर समीक्षा ज़रूर लिखी होगी। उनका इस किताब में ज़िक्र नहीं है, मगर अमृता जी की किताब पर दिनेश द्विवेदी की समीक्षा यहाँ प्रस्तुत की गई है। दिनेश द्विवेदी ने अमृता जी के कविता संग्रह 'एक मुट्ठी अक्षर' पर समीक्षा लिखी है। संग्रह की कुछ रुचिकर कविताएँ यहाँ पर दी गई हैं।

अमृता प्रतीम की शायरी को लोग इश्क़ हकीकी और इश्क मजाज़ी का पैमाना मानते हैं। अमृता प्रीतम एक जगह कहती हैं- 'तेरे हरक के हाथ छूट गई / और ज़िंदगी की हंडिया टूट गई / इतिहास का मेहमान भूखा उठ गया।' एक दर्द था / जो सिगरेट की तरह मैंने चुपचाप पिया है / सिर्फ कुछ नज़्में हैं जो सिगरेट से मैंने राख की तरह झाड़ी है।'

प्रेम के लौकिक तथा अलौकिक आनंद की अनुभूति तो सिर्फ प्रेम करने वाले के अंदर ही होती है। 'मेरी सेज हाजिर है / पर जूते और कमीज़ की तरह / तू अपना बदन भी उतार दे / उधर मूढ़े पर रख दे / कोई ख़ास बात नहीं, वह अपने-अपने देश का रिवाज है।'(पृष्ठ-37)

कवि दिनेश द्विवेदी अमृता प्रीतम के साहित्य व लेखन के अधिकृत पाठक हैं। उन्होंने उन पर लिखे साहित्य को इश्क़ के नज़रिए से परखने का कार्य किया है। द्विवेदी ने 'अमृतोषनिषद्' में बिल्कुल अलग तथा भिन्न रुख़ अख्तियार किया है- द्विवेदी जी ने। इस आलेख में दिनेश द्विवेदी ने अमृता को बौद्ध स्वरूप माना है और दिनेश द्विवेदी ख़ुद को उनके शिष्य आनंद की तरह देखते हैं।

दिनेश जी अपने तमाम प्रश्नों तथा सवालों को लेकर जब भी शंकाग्रस्त होते हैं वे अपने गुरु के पास जाते हैं और समाधान पूछते हैं। साई काका उनके स्वप्नों से उपजे समाधान करते हैं। इस लेख में लेखक ने उन स्थितियों और परिस्थितियों का उल्लेख किया है, जिनमें यह सिद्ध होता है कि अमृता प्रीतम से उनका रिश्ता जन्म-जन्मांतर का है।

अपने इस आलेख में दिनेश द्विवेदी यह सिद्ध करते हैं कि अमृता प्रीतम का संपूर्ण व्यक्तित्व- ऋषि परम्परा की चेतना से आंदोलित है। दिनेश द्विवेदी ने उन सभी सपनों का उल्लेख किया है, जिनमें अमृता प्रीतम की असाधारण रूप से अतीन्द्रिय दुनिया दिखाई देती है।

कवि दिनेश द्विवेदी के कविता संग्रह 'देह के उपसर्ग हैं कुछ' की भूमिका अमृता प्रीतम ने लिखी थी। संग्रह की कविताओं के माध्यम से कवि व लेखक दिनेश द्विवेदी भी देह और आत्मा के बीच के तत्व को पहचानने का उपक्रम करते हैं। अमृता प्रीतम ने क्या महसूस किया संग्रह की कविताओं को पढ़कर, वह भूमिका के रूप में दर्ज है, दिनेश द्विवेदी ने 'अक्षरावतार' शीर्षक से जो लेख लिखा है, उसमें अमृता प्रीतम के साथ-पहली मुलाकात की विस्तृत चर्चा है। सन् 1982 में दिनेश द्विवेदी अमृता प्रीतम के घर हौजख़ास पहुँचे थे। फिर क्या-क्या अनुभव किया दिनेश द्विवेदी ने इसकी एक विशद, रोचक, रोमांचकारी किन्तु मर्मस्पर्शी कथा है-इसमें।

दिनेश द्विवेदी मानते हैं कि अमृता प्रीतम का सम्पूर्ण लेखन और उनका समूचा व्यक्तित्व प्रेम का पर्याय था। बचपन से लेकर यौवन और फिर यौवन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की घटनाओं तथा उनके क्रियाकलापों में प्रेम का अप्रतिम रूप नज़र आता है। 'मुझे प्यार करो'- एक लम्बी नज़्म है-अमृता प्रीतम की जो हृदय की गहराइयों को स्पर्श ही नहीं करती- पाठक को बेचैन और आंदोलित भी करती है। उनकी इस लम्बी नज़्म की कुछ पंक्तियाँ आप गुनगुना सकते हैं-

'साई तू अपनी चिलम से / थोड़ी-सी आग दे दे / मैं तेरी अगरबत्ती हूँ / और तेरी दरगाह पर मैंने / एक घड़ी जलना है...यह तेरी मुहब्बत की / जो कायामय हुई / जब काया सुलग जाएगी / तो एक धुँआ-सा उठेगा / धुएँ का बदन लरज जाएगा / आहिस्ता से कहेगा... ।' इन पंक्तियों में एक रूहानी स्वर है जो अपने परवरदिगार के लिए मचल रहा है। यहाँ एक पीर, फ़कीर और हीर की आत्मा का संगीत सुनाई देता है।

'स्पर्श' शीर्षक से दिनेश द्विवेदी की कविता है, उनके कविता संग्रह- 'देह के उपसर्ग हैं कुछ' में इस कविता को पढ़कर ही अमृता जी ने संग्रह की भूमिका लिखी थी। (पृष्ठ-61-63) अमृता प्रीतम के कुछेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ पत्र-व्यवहार भी रहे हैं। दिनेश द्विवेदी ने अमृता जी को पत्र लिखे और अमृता जी ने दिनेश द्विवेदी को। उन पत्रों की आत्मीय भाषा और ज़िंदगी के साथ उनकी संबंधों की चिन्गारी इतनी जीवित है कि वे आज भी मन और हृदय की दुनिया के लिए एक अजूबा हैं। पत्रों की अपनी मानसिक दुनिया होती है। हमें सचमुच में दिनेश द्विवेदी उस दुनिया में ले जाते हैं।

किताब के पृष्ठ-69 पर दिनेश द्विवेदी से सुधांशु मिश्र की अनौपचारिक बातचीत है। दरअसल, यह एक आईना है जो दिनेश द्विवेदी तथा अमृता प्रीतम के बीच पनपे प्रेम, स्नेह, दुलार का एक भावोच्छ्वास भरा स्पष्टीकरण है- जिसमें जज़्बात के रेशे-रेशे को उधेड़ने की कोशिश की गई है। शीर्षक- 'वह अब तक मेरी रूह में मौजूद है' -से ही समझा जा सकता है कि यह एक ऐसी आत्मीय कथा का सृजनात्मक पहलू है जिसे उजागर करना एक चुनौती है। मगर दिनेश द्विवेदी इस चुनौती को स्वीकार करते है और उसी में फ़ना हो जाते हैं।

'इश्क़ ज़रूर करना' -यह एक ऐसा मुहावरा है जिसका सही जवाब 'इश्क़नवाज़' ही दे सकते हैं। आत्मीय दिनेश द्विवेदी के समक्ष अमृता प्रीतम अपनी इश्क़ की गिरह खोल देती हैं- 'ख़ुदा ने आपको हुस्न दे रखा है, क्या आपके ऊपर कभी कोई आशिक़ नहीं हुई या आपने कभी किसी से इश्क़ नहीं किया?'

'चलिए, मान लेती हूँ कि आप पर कोई आशिक़ नहीं हुई, न आपने किसी से इश्क़ किया, परन्तु मैं फिर भी कहूँगी कि आप शादी भले ही ना करें, पर इश्क़ ज़रूर करें। जिस उम्र से आप गुज़र रहे हैं, उसी उम्र में मेरी ज़िंदगी में इमरोज़ आए... इस उम्र का इश्क़ परिपक्व और स्थाई होता है। इसलिए, इश्क़ ज़रूर करना...?' (पृष्ठ-79)

बहरहाल, 188 पृष्ठ की किताब में आधे पन्ने पूरे अधिकार के साथ उनके साथी राजेश चन्द्रा ने लिए हैं, जिसमें उनके आलेख हैं।

यह सच है कि अमृता प्रीतम स्वनामधन्य लेखिका हैं- उनका आत्मदर्शन, जीवन-दर्शन और अध्यात्म सब मिलाकर एक नई ऊर्जा का संचार करते हैं। राजेश चन्द्रा अमृता प्रीतम इस विलक्षण ऊर्जा से आंदोलित व्यक्तित्व हैं। जो बुरी तरह सम्मोहित हैं।

राजेश चंद्रा सरकारी नौकरी में रहते हुए भी अमृता प्रीतम के निजी सचिव की तरह काम करते हैं। उन्होंने करीब-करीब सभी पुस्तकों का पंजाबी से हिन्दी में अनुवाद किया है। 'वात्सल्य की जुगलबंदी अमृत प्रीतम, इमरोज़, राजेश चन्द्रा' यह उस खंड का नाम है जो राजेश चन्द्रा द्वारा विरचित है। राजेश चन्द्रा लेखक नहीं हैं, मगर अमृता प्रीतम की पुस्तकों का अनुवाद करते-करते लेखक वाली भावना तथा सोच का दरिया प्रवाहित होने लगता है उनके भीतर, जिसमें वे 'वारिस शाह की वारिस', 'एक रहस्य', 'आयामों के परे', 'गॉड मदर' जैसे महत्त्वपूर्ण लेख लिखने में सफल होते हैं। इन आलेखों में राजेश चन्द्रा का नज़रिया बिल्कुल भिन्न है। मानवीय से अति मानवीय होने की कथा है। वे अमृता प्रीतम की अतीन्द्रिय प्रतिभा का उल्लेख बार-बार तो करते हैं, मगर यह नहीं भूलते कि अन्ततः वे मनुष्य ही हैं। मनुष्य, जो एक प्रज्ञावान प्राणी है। उसकी बौद्धिक एवं आध्यात्मिक क्षमताएँ अपूर्व हैं। अमृता प्रीतम ने प्रेम के द्वेत को अद्वेत में समाहित कर दिया है। 'इश्क़' को ईश्वर, ख़ुदा और 'परमात्मा' में विलीन कर दिया है, इसके बावजूद राजेश चंद्रा इस तथ्य को भूलते नहीं कि अमृताजी के व्यक्तित्व की रचना पंजाबी और हिन्दी साहित्य ने की है। 'साहित्यिक तीर्थ'-आलेख

इसका उदाहरण है, जिसमें अमृता प्रीतम का सफ़र हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं से शुरू होकर घर-घर तक पहुँचता है। कमलेश्वर, मोहन राकेश, खुशवंत सिंह, दुष्यंत कुमार, मोहन भंडारी, सुखबीर, बशीरबद्र, राजेन्द्र माथुर, मनोहर श्याम जोशी, राही मासूम रज़ा, राजेन्द्र बेदी, विमल मित्र, कमलादास, मुद्राराक्षस आदि उनके प्रसंशक रहे हैं।

अमृता प्रीतम अपने तक सीमित होकर रह जाने वाली लेखिका नहीं थीं। उन्हें विश्व की घटनाएँ भी बेहद विचलित करती थीं। नेपाल में जब शाही परिवार के बीच भयंकर खून ख़राबा हुआ, तो अमृता प्रीतम ने 'आवाज़ें' नाम से एक ऐसा कविता संग्रह तैयार किया, जिसमें संसार के प्रमुख युद्ध विरोधी कवितयों की रचनाएँ थीं। वे दुनिया में होने वाली हिंसा, उन्माद, वहशियत, नफ़रत के ख़िलाफ़ खड़े होकर अपनी आवाज़ को लोगों तक पहुँचाती हैं। उन्होंने उर्दू के मशहूर शायर मज़हर-उल-इस्लाम की नज़्म की आवाज़ दुआ के रूप में घर-घर तक पहुँचाने का कार्य किया। दुआओं से लैस मज़हर-उल-इस्लाम की लंबी कविता को पहले अपनी पंजाबी पत्रिका 'नागमणि' में छापा फिर उसका हिन्दी तर्जुमा आकाशवाणी में पढ़ा। राजेश चन्द्रा ने अमृता प्रीतम की सम्पूर्ण रचनाधर्मिता को प्रमुख तीन सोपानों में विभाजित किया है -रक्त कमल, नील कमल और श्वेत कमल। लाहौर से दिल्ली का समय -रक्त कमल। मध्यकाल की रचनाओं में नीली आभा है- इसलिए वे नील कमल की श्रेणी में है। बाद के दौर की रचनाओं में धवल आभा है, अतएव, राजेश चन्द्रा अमृता प्रीतम की इन रचनाओं के श्वेत कमल का सोपान में गिनते हैं।

अमृता प्रीतम जी का उत्तरार्द्ध बहुत तकलीफ़ में बीता। गिर जाने से उनके कूल्हे की हड्डी फैक्चर हो गई थी और बिस्तर पकड़ लिया था। ऑपरेशन के बाद भी वे ठीक न हुईं। लिखती भी थी तो लेटे-लेटे। उस समय की एक नज़्म है- 'जाने कौन-सी राहों में होती / और कब की चली / मैं उन वनों में पहुँची / जहाँ फूलों से भरे पड़े थे / और इतनी महक थी / कि साँसों में ही महक आती थी / अचानक कहीं पेड़ों के बीच / एक सरोवर को देखा / जिसका नीला और शफ़्फ़ाफ़ पानी / दूर तक दिख रहा / मैं किनारे पर खड़ी तो मन हुआ / इसे सरोवर में नहा लूँ...' यह एक लंबी कविता है तो स्थूल से सूक्ष्म की ओर मुड़ जाती है।

अमृता प्रीतम की रचनाओं का सूफ़ियाना अंदाज़, रूहानी स्वर और उदास नश्वरता का बोध कराती उनकी कविताओं का लोगों पर गहरा असर है। इसलिए, वे अपने समय की बेधक साहसी रचनाकार के रूप में जानी गईं। भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से नवाज़ा। राज्य सभा की सदस्यता देकर सम्मान दिया। यहाँ तक कि शताब्दी का सम्मान भी उन्हें मिला। राजेश चंद्रा ने इस सभी बातों की तरतीबवार जानकारी अपने लेखों में दी है, इसलिए इनका महत्त्व कम नहीं है, बेशक लेख छोटे हैं। 'बाँसुरी की कराह', 'आत्मकथा और जीवनी', 'शिखर पर बैठा पंछी', 'दरख़्त बीज हो गया' आदि आलेख अमृता जी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को एक ऐसी लय में बदल देते हैं कि उनके सिवा कोई सामने नहीं दिखाई देता। अमृता प्रीतम के बगैर इमरोज़ अधूरे हैं और इमरोज़ की चर्चा के बिना अमृता प्रीतम को नहीं समझा जा सकता। इस बात का राजेश चन्द्रा पूरा ख़याल रखते हैं।

राजेश चंद्रा ने अमृता प्रीतम के जीवन को जिया है- तब लिखना साकार किया है। अमृता प्रीतम- उनका ऐसा ही आलेख है। उन्होंने इमरोज़ और अमृता प्रीतम पर लम्बी कविता लिखी है- दो फूल। जिसमें कवि राजेश चन्द्रा ने इमरोज़ और अमृता प्रीतम के जीवन को 'एक फूल' में परिवर्तित कर दिया है। इसमें अमृता जी की सभी किताबों के नाम भी आ गए हैं। राजेश चंद्रा की यह कविता अत्यंत प्रभावी है, जो सभी के लिए ज़रूरी पाठ की तरह लगती है।

राजेश चंद्रा की कृतज्ञता इतनी महत्त्वपूर्ण है जिसका हम अनादर नहीं कर सकते। वे इतने सहृदय, लगनशील, समर्पित व्यक्तित्व न होते तो अमृता जी के नज़दीक पहुँच भी न पाते। अमृता प्रीतम ने भी उन पर अपना अपार स्नेह लुटाया है-एक माँ की तरह। राजेश चंद्रा, माँ कहते थे-अमृता जी को। 'ऋणानुबंध' राजेश चन्द्रा का वह आलेख है जिसमें अमृता जी तक पहुँचने का ज़िक्र है और फिर स्थायी रूप से उनका बन जाने की मार्मिक कथा है। यह पुस्तक अपने आप में उस मोहब्बत और सम्मान का आईना है, जिसमें अमृता प्रीतम, राजेश चंद्रा और दिनेश द्विवेदी के परस्पर जीवन-दर्शन को देखा जा सकता है। अब आते हैं- इस पुस्तक के नाम पर। जिसमें 'नील कुरिंजी के फूल' की सुगंध बस गई है। सामान्य आदमी के लिए नील कुरिंजी का पौधा आकाश कुसुम है। वह दुनिया के सभी पेड़-पौधों को खोजकर ला सकता है-मगर नील कुरिंजी के पौधे को नहीं- फूल तो दीगर बात है। वह साधारण आदमी को तो गूलर का फूल हुआ जा रहा है। 'नील कुरिंजी' के बारे में लेखक का कहना है- नील कुरिंजी एक दुर्लभ फूल होता है, जो भारत के दक्षिणी प्रांतों में तथा तमिलनाडु, कर्नाटक के वन में खिलता है। वैसे इसकी बहुतायत केरल में है, लेकिन फूल दुर्लभ है, बारह साल में एक बार खिलता है।

इसके आगे लेखक द्वय ने इस फूल की खोज और समर्थन में वनस्पति विज्ञान का सहारा लेते हैं। कहते हैं- केरल की मुथुवन जन जाति के लोग इस फूल को रोमांस और प्रेम का प्रतीक मानते हैं। इसके आगे कुरिंजी के फूल को लेकर एक छोटी कथा भी सुनाते हैं-सम्पादक द्वय।

मेरे ख्याल में यहाँ इश्क़, मोहब्बत, प्रेम, रोमांस को 'नील कुरिंजी के फूल' की उपमा की ज़रूरत नहीं थी। यह ऐसा पौधा है, जो सभी के दिलों में खिलता है और सभी दिलों में बसता है। अमृता प्रीतम अगर राजेश चंद्रा और दिनेश द्विवेदी के लिए दुर्लभ और अप्राप्य 'नील कुरिंजी का फूल' हैं क्योंकि अमृता प्रीतम मोहब्बत का दुर्लभ फूल है- नील कुरिंजी फूल की तरह दुर्लभ बन जाती हैं, तो यह लेखक द्वय ने इसे अपने प्रेम की बदौलत हासिल किया है- इसके लिए हम लेखक द्वय को बहुत बधाई और शुभकामनाएँ अर्पित करते हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

(आलोचना)

आलोचना

समीक्षक : दिनेश कुमार

संपादक : शैलेश कुमार

डॉ. नीलम सिंह

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

दिनेश कुमार
सहायक प्राध्यापक- हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद 211002 उप्र
मोबाइल- 9717575908

हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं के इतिहास में सबसे लंबे दौर तक और सबसे चर्चित नाम के रुप में 'आलोचना' का नाम लिया जा सकता है। राजकमल प्रकाशन समूह ने वर्ष 2019 में इसमें प्रकाशित आलेखों - (जिसमें निबंध, समीक्षा; वाद-विवाद संवाद से लेकर साहित्यक गोष्ठियाँ एवं कविताएँ भी शामिल है) की एक अनुक्रमणिका प्रकाशित की जिसका संकलन-संपादन शैलेश कुमार तथा डॉ. नीलम सिंह ने किया। इस पुस्तक में हिन्दी साहित्य के स्वतंत्र्योत्तर इतिहास के सत्तर वर्ष की यात्रा की एक ऐसी झलक दिखाई देती है जिसे अन्यत्र खोजना दुलर्भ है। यह किताब शोध की दृष्टि से कार्य करने वालों के लिए तो महत्त्व रखती ही , हिन्दी साहित्य के पिछले सत्तर वर्षों के विकास क्रम को जानने समझने के संकेत सूत्र भी प्रदान करती है। इस दृष्टि से इस किताब की चर्चा आवश्यक है। एक साहित्यिक पत्रिका के रूप में 'आलोचना' ने किस प्रकार तत्कालीन साहित्यक परिदृश्य को देखा और किस प्रकार साहित्यिक परिदृश्य को प्रभावित किया इसकी भी एक झलक इस लेख में दिखाई देगी। चूँकि 'आलोचना' का काल खंड एवं इसके लेखों, समीक्षाओं एवं अन्य रचनाओं की संख्या इतनी अधिक है कि इसे एक या दो लेखों में समेटना संभव नहीं है। अतएव इस सीमा को देखते हुए यह आलेख आलोचना के पहले दशक यानी 1951 से 1960 तक के अंकों तक ही केंद्रित है।

आलोचना का पहला अंक अक्टूबर 1951 का अंक है। इस अंक की संक्षिप्त चर्चा इस पुस्तक के आलेख 'आलोचना का इतिहास और इतिहास की आलोचना' में इस प्रकार की गई है- 'आलोचना के पहले संपादक थे-शिवदानसिंह चौहान। 'आलोचना' की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए चौहान जी ने अपना पहला संपादकीय 'आलोचना क्यों? लिखा। यह सम्पादकीय ऐसा प्रासंगिक था कि सन 2000 के बाद जब 'आलोचना' पुन: छपनी प्रारम्भ हुई तो नामवर जी ने शिवदानसिंह चौहान के योगदान को याद करते हुए 'सहस्त्राब्दी अंक-3' में इस सम्पादकीय को पुन: छापा। 'आलोचना' के प्रथम अंक के लेखों पर नज़र डाले तो स्पष्ट दिखता है कि यह समान्य साहित्यिक पत्रिकाओं से भिन्न थी। इसके प्रथम अंक में केवल साहित्यिक कृतियों की आलोचना या समीक्षा ही नहीं थी बल्कि 'भारतीय समाज का ऐतहासिक विशलेषण' (दि.के. बेडेकर), 'शूद्रों की खोज' (डॉ. महादेव साहा), 'प्राचीन भारतीय वेशभूषा' (डॉ रांगेय राघव) जैसे समाजशास्त्रीय विषयों पर भी उत्कृष्ट सामग्री थी। इस अंक के आलेखों में पर्याप्त विविधता थी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा' पर लिखा था तो प्रकाश चन्द्र गुप्त ने 'गोस्वामी तुलसीदास' पर। डॉ. देवराज ने 'समाजशास्त्रीय आलोचना' की रुपरेखा बनाई थी तो बाबू गुलाब राय ने 'भारतीय आलोचना-पद्धति' की विशेषताओं को रेखांकित किया था, तो वहीं हिन्दी-उर्दू की साझी साहित्यिक विरासत को एहतेशाम हुसैन ने 'उर्दू भाषा की उत्पत्ति और उसका प्रारम्भिक विकास' में चिह्नित किया था।

उल्लेखनीय है कि प्रथम अंक में जिन कृतियों की समीक्षा की गई थी, वे हिन्दी साहित्य के पाठकों की पसन्द की जानेवाली पुस्तकें प्रमाणित हुई। डॉ. रघुवंश ने पन्त जी की 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण-धूलि' और 'उत्तरा' की समीक्षा की थी तो नामवर जी की पहली समीक्षा परशुराम चतुर्वेदी

द्वारा लिखित आलोचनात्मक पुस्तक 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा' पर थी। अन्य कृति-समीक्षकों में विश्वम्भर 'मानव', ठाकुर प्रसाद सिंह, डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, डॉ. सत्येन्द्र, त्रिलोचन शास्त्री आदि थे। काव्य संग्रह, उपन्यास, नाटक, कहानी संग्रह, आलोचना एवं स्फुट विधाओं से संबंधित पुस्तकों की समीक्षा पहले अंक में छपी थी। स्फुट विधाओं में प्रभाकर माचवे का 'आधुनिक साहित्य और चित्रकला' उल्लेखनीय निबन्ध था। पहले अंक में ही 'आलोचना' ने विमर्श की वह शृंखला आरम्भ की, जो बाद में इसकी प्रखर पहचान बनी। इसे नाम दिया गया 'प्रस्तुत प्रश्न'। पहले अंक का 'प्रस्तुत प्रश्न' स्वयं शिवदान जी ने 'साहित्य में संयुक्त मोर्चा' नाम से लिखा था।

पहले अंक की थोड़ी व्यापक चर्चा इसलिए कि शिवदान जी ने 'आलोचना' पत्रिका के जो प्रतिमान तय किए थे, वे बाद में भी इसके आदर्श के रूप में कार्यरत रहे। 'आलोचना' विशुद्ध 'साहित्यिक पत्रिका' के दायरे में कभी क़ैद नहीं रही वरन् वृहत्तर सामाजिक - सांस्कृतिक सरोकारों को ध्यान में रखकर चलती रही। हिन्दी समाज को एक बड़े साहित्यिक, परिदृश्य से परिचित कराने में इस पत्रिका ने प्रारम्भ से ही ऐतिहासिक भूमिका निभाई।'

हिन्दी लेखकों की बात

जहाँ तक उस दौर में छपने वाले लेखकों की बात हैं; आलोचना के पहले दशक (1951-1960) के लेखकों की सूची देखें तो ऐसा लगता है कि हिन्दी साहित्य का शायद ही कोई ऐसा बड़ा नाम हो जो इसमें न छपा हो। पहले अंक के लेखकों की चर्चा हो चुकी है। दूसरे अंक में जो नए बड़े नाम दिखाई देते है उनमें डॉ. नगेन्द्र, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, नरेश कुमार मेहता, भगवत शरण उपाध्याय, उपेन्द्र नाथ अश्क तथा डॉ. भगीरथ मिश्र प्रमुख हैं। तीसरे अंक में नेमिचंद्र जैन, इलाचंद्र जोशी, डॉ. हरदेव बाहरी, देवेन्द्र सत्यार्थी, धर्मवीर भारती, ठाकुर प्रसाद सिंह, हंस कुमार तिवारी, विजय शंकर मल्ल, मुक्तिबोध तथा क्षेमचंद्र सुमन के नाम पहली बार आलोचना मे दिखे। यह शृंखला निरंतर बढ़ती गई। चौथे अंक में नंद दुलारे बाजपेयी, सुमित्रानंदन पंत, यशपाल, रामधारी सिंह दिनकर, रामविलास शर्मा, नलिन विलोचन शर्मा, जगदीश गुप्त, मन्मथ नाथ गुप्त, परशुराम चतुर्वेदी और बच्चन सिंह दिखे। छठे अंक में महापंडित रहुल सांस्कृत्यायन का लेख छपा। सातवे अंक में डॉ. बिजयदेवनारायण साही, ब्रजेश्वर शर्मा, लक्ष्मी नारायण लाल, उदय नारायण तिवारी, माता प्रसाद गुप्त तथा आठवे अंक में शंभुनाथ सिंह, राम सिंह तोमर, धीरेन्द्र वर्मा, इन्द्रनाथ मदान दिखाई दिए। नवें अंक में पहली बार अज्ञेय दिखे और रामस्वरूप चतुर्वेदी भी। एक और नाम राजनारायण बिसारिया का दिखा जो बाद में बी.बी.सी. चले गए। दसवें अंक में लक्ष्मी सागर वार्णेय, मार्कण्डेय, लक्ष्मीनारायण लाल तथा कमलेश्वर की इंट्री हुई। ग्यारहवे अंक में बलदेव उपाध्याय, माता बदल जयसवाल एवं रामचंद्र तिवारी के साथ दो बड़े नाम राजेन्द्र यादव तथा मोहन राकेश के थे। बारहवें अंक में गिरिजाकुमार माथुर, अगरचंद नहाटा, अजीत कुमार, भारतभूषण अग्रवाल और बी.बी.सी वाले ओंकारनाथ श्रीवास्तव दिखे तो तेरहवें अंक में डॉ. संपूर्णानंद। चौदहवें अंक में प्रसिद्ध भाषाविद् सुनीति कुमार चाटर्ज्या का लेख छपा। पंद्रहवें में सिद्धनाथ कुमार, सोलहवें अंक में विद्यानिवास मिश्र तथा हरिवंश राय बच्चन, सतरहवें अंक में फादर कामिल बुल्के तथा शिव प्रसाद सिंह के नए नाम दिखे। बीसवें में भोलानाथ तिवारी, बाइसवें में रमेश कुंतल मेघ और चौबीसवें में फणीश्वर नाथ रेणु के लेख छपे। पचीसवाँ अंक जो पहले दशक का आख़िरी अंक था उसमें विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा भोलाशंकर व्यास दिखे। यानी पचास से साठ के बीच हिन्दी साहित्य का शायद ही कोई बड़ा नाम था जिसने आलोचना में नहीं लिखा। कई ने तो कई-कई बार लिखा। इन बड़े नामों के अलावा कई आलेख ऐसे लेखकों के हैं जो भले ही बाद में उतने प्रसिद्धि नहीं पा सके परन्तु उस दौर में इतने बड़े-बड़े लेखकों के साथ उनका छपना अपने आप में उनके स्तर का परिचायक है। ऐसे लेखकों के आलेख विशेष रूप से देखे जाने योग्य हैं क्योकि वे प्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं की तरह उपलब्ध भी नहीं है एवं केवल आलोचना के पन्नों में ही खोजे जा सकते है।

हिन्दीतर भाषाओं से जुड़ी सामग्री-

आलोचना के लेखों में प्रारंभ से ही अन्य भाषाओं एवं विश्व साहित्य से भी जुड़ाव दिखाई देता है। पहले अंक में प्रसिद्ध लेखक अमृतराय ने कोन्स्तान्तिन फेदीन की रचना 'लेखक और उसकी कला' का अनुवाद प्रस्तुत किया था। सातवें अंक में प्रसिद्ध मनोविज्ञानी से.जी. युंग की रचना 'साहित्य और मनोविज्ञान' का अनुवाद; आठवें अंक में आई.ए. एक्स्ट्रास के लेख 'समकालीन विश्व साहित्य पर एक दृष्टि;' पंद्रहवें अंक में के.दोई. का जापानी साहित्य; सतरहवें अंक में पेत्रोविच का लेख 'यूगोस्लावियन साहित्य की वर्तमान समस्या' तथा पच्चीसवें अंक में एण्ड्रे पाडाक्स का लेख आधुनिक 'फ्रांसीसी कविता;' डॉ. फिलिप यंग का लेख 'बीसवीं सदी की अमरीकी कविता' तथा डॉ. अमरेश दत्त का 'आधुनिक अंग्रेज़ी कविता'- विश्व साहित्य से हिन्दी पाठकों को परिचित कराने के कुछ प्रमुख उदाहरण है। इसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं से परिचित कराने वाले लेखों में पहले अंक में एहतेशाम हुसैन का 'उर्दू भाषा की उत्पति और उसका प्रारंभिक विकास;' दूसरे अंक में गोपाल हलधर का 'समसामयिक बंगला साहित्य में आलोचना;' सातवें अंक में 'अंग्रेज़ी काव्य धारा-बीसवी शताब्दी;' 'मराठी नव काव्य और रस विचार' पर ए.आर. देशपांडे का लेख; उसी अंक में ति. शेशाद्रि का 'तमिल भाषा और साहित्य' की समस्याएँ;' आठवें अंक में एजाज हुसैन का 'उर्दू कविता में राष्ट्रीयता भावना' तथा हेमलता जनस्वामी का 'तेलगू प्रदेश की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक समस्याएँ;' ग्यारहवें अंक में प्रभाकर माचवे का 'मराठी रस भीमांसा नई दिशाएँ;' बारहवें अंक में मसीहुज्जमा का 'उर्दू आलोचना का विकास' तथा ति. शेषाद्रि का 'भारतीय साहित्य का परिचय;' चौदहवें अंक में बालशौरि रेड्डी का

'तेलगू साहित्य का इतिहास;' सोलहवें अंक में 'बांग्ला और उसका साहित्य;' उन्नीसवें अंक के 'बांग्ला साहित्य के नाट्य और रंगमंच' तथा 'प्रादेशिक भाषाओं के नाट्य और मंच' नामक आलेख इसके कुछ उदाहरण है। छब्बीसवें अंक जो 1959 में प्रकाशित हुआ था में तेलगू काव्य, बांग्ला काव्य, एवं मराठी कविता पर सम्यक लेख प्रकाशित हुए थे। इस प्रकार पहले दशक की आलोचना ने उस दौर में जब इन्टरनेट जैसे सर्वसुलभ माध्यम की उपलब्धता नहीं थी- हिन्दी पाठकों को कूपमंडूक होने से बचाया तथा देश-विदेश के साहित्य से जोड़े रखा।

व्यवहारिक समीक्षा

आलोचना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष था प्रकाशित पुस्तकों की व्यवहारिक समीक्षा। इस दिशा में 'मूल्यांकन' नाम से किताबों की समीक्षा छपती थी। आज जब सत्तर साल बाद हम उन पन्नों की ओर लौटते हैं तो कई ऐसी किताबों सूची मिलती है जो समय की धार में कहीं किनारे लग गईं। परन्तु कई ऐसी हैं जिनकी चर्चा आज भी होती है। जिन प्रसिद्ध रचनाओं की समीक्षा आलोचना में छपी उनमें पहले अंक में वृन्दावन लाल वर्मा की मृगनयनी, तथा बी.आर. अम्बेडकर की शूद्रों की खोज; दूसरे अंक में अज्ञेय का 'दूसरा सप्तक' तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'नाथ सम्प्रदाय;' तीसरे अंक में जगदीश चंद्र माथुर का 'कोणार्क', हंसराज रहबर की 'प्रेमचंद जीवन और कृतित्व' भदंत आनंद कौशल्यायन का 'रेल का टिकट;' तीसरे अंक में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा;' नामवर सिंह की रचना 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' तथा रामवृक्ष बेनीपुरी का 'गेहुँ और गुलाब' सातवें अंक में आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' तथा परशुराम चतुर्वेदी का 'मध्यकालीन प्रेम साधना;' आठवें अंक में नामवर सिंह की तथा पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी की सम्पादित किताब 'पृथ्वीराज रासो की भाषा;' दसवें अंक में जैनेन्द्र कुमार की 'सुखदा;' ग्यारहवें अंक में डॉ. बाबू राम सक्सेना की 'दखिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास,' तथा परशुराम चतुर्वेदी का 'संत काव्य'; बारहवें अंक में राजेन्द्र यादव की 'प्रेत बोलते हैं;' चौदहवें अंक में अज्ञेय का 'बावरा अहेरी;' पंद्रहवें अंक में नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' तथा रेणु के 'मैला आँचल;' सोलहवें अंक में दशरथ ओझा के 'हिन्दी नाटक', गिरिजा कुमार माथुर के 'धूप के धान' तथा विद्यानिवास मिश्र के 'छितवन की छाँह;' सतरहवें अंक में नंद दुलारे बाजपेयी की किताब 'नया साहित्य-नए प्रश्न;' अठारहवें अंक में इलाचंद्र जोशी के 'जहाज़ का पक्षी;' डी.डी. कोशाम्बी के 'भगवान् बुद्ध;' बीसवें अंक में अमृतलाल नागर की 'बूँद और समुद्र' नामवर सिंह की सम्पादित-अनुवादित-'पुरानी राजस्थानी;' धर्मवीर भारती की 'अंधा युग;' इक्कीसवें अंक में राजेन्द्र यादव की 'उखड़े' हुए लोग', भवानी प्रसाद मिश्र की 'गीत फरोस,' तेइसवें अंक में महादेवी वर्मा के 'पथ के साथी,' बलदेव उपाध्याय की 'संस्कृत आलोचना' कमलेश्वर के 'राजा निरबंसिया;' चौबीसवें अंक में राहुल सांकृत्यायन के 'मध्य एशिया का इतिहास' तथा नागार्जुन के दुखमोचन की समीक्षाएँ छपीं। ये समीक्षाएँ इस बात की साक्ष्य हैं कि 'आलोचना' ने अपने वक्त की सही नब्ज़ पकड़ी। इसके अतिरिक्त इन आलोचनाओं ने इस किताबों की विशेषताओं को पाठकों के समक्ष इस प्रकार रखा कि पाठक वर्ग भी इन्हें पढ़ने को प्रेरित हुआ।

उल्लेखनीय है कि तत्कालीन साहित्य के अतिरिक्त आलोचना ने प्राचीन एवं मध्यकालीन एवं आधुनिक साहित्य के कालजयी साहित्य की पुनर्पहचान का भी रास्ता दिखाया। इस दृष्टि से पहला महत्त्वपूर्ण प्रयास पाँचवें अंक में हुआ जिसमें पृथ्वीराज रासो, सूर सागर, रामचरित मानस, बिहारी सतसई, कामायनी एवं गोदान जैसी कालजयी कृतियों की समीक्षा पेश की गई। बाद में सातवें अंक में 'बीसलदेव रासो;' आठवें अंक में 'शिशुपाल बध;' बारहवें अंक में 'पद्‌मावत' 'गोरा बादल की कथा' तथा 'आइने अकबरी;' तथा चौदहवें अंक में 'कान्हड़ डे प्रबंध' का केंद्र में रखकर लेख या समीक्षाएँ प्रकाशित हुईं। इस प्रकार आलोचना ने परंपरा एवं नवीनता के बीच एक सुंदर साहचर्य बनाए रखा।

पुस्तकों की समीक्षा में जहाँ आलोचना में आरंभ में किसी एक पुस्तक को केंद्र में रखकर समीक्षाएँ छपती थीं, सातवें अंक से विषय केंद्रित समीक्षाएँ भी प्रारंभ हुई तथा लेखक केंद्रित समीक्षाएँ भी। जैसे सातवें अंक में 'रवीन्द्र साहित्य में रहस्य चेतना' को केंद्र में रखकर उनकी पाँच किताबों-मेरा बचपन, चतुरंग, दो बहनें, फुलवाड़ी तथा नारी की पूजा की चर्चा की गई। उसी अंक में 'हिन्दी की गीत परंपरा' को ध्यान में रखकर बच्चन जी की 'सोपान', गिरिधर गोपाल की 'अग्निमा', रामानाथ अवस्थी की 'आग और पराग', श्रीपाल सिंह क्षेम की 'जीवन तरी' तथा शान्ति एम.ए. की 'चाणक्य' की समीक्षा की गई। यह संश्लिष्ट समीक्षा पद्धति आठवें अंक में 'प्रेमचंद की परंपरा में नए हस्ताक्षर' तथा 'प्रेमचंद की परंपरा के दावेदार'; ग्यारहवें अंक में आधुनिक हिन्दी काव्य का एक विशिष्ट अध्यात्मिक स्वर; बारहवें अंक में संस्कृति और सभ्यता के रूप, पलायनवाद, व्यक्ति परिवार और समाज; चौदहवें अंक में तीन नए काव्य संग्रह; 'पंद्रहवें अंक में हिन्दी साहित्य के नए यात्री, तीन लघु उपन्यास तथा दिनकर की नई काव्य कृतियाँ; अठारहवें अंक में हिन्दी साहित्य में रामकथा का अध्ययन, साहित्य वर्ता और आलोचना के सिद्धांत; 'इक्कीसवे अंक में काव्य निर्णय और आचार्य भिखारीदास; चौबीसवें अंक में दो ऐतिहासिक उपन्यास में भी दिखाई देती है। इन सभी आलेखों/समीक्षाओं में एकाधिक लेखकों या रचनाओं को सामने रखकर तुलनात्मक दृष्टि से विवेचना का प्रयास हिन्दी पुस्तक समीक्षा एवं व्यवहारिक समीक्षा को दिशा देने वाला सिद्ध हुआ।

रचनाओं/या लेखकों को केंद्र में रखकर प्रकाशित समीक्षाएँ

आलोचना के पहले दशक में रचनाकारों को केंद्र में रखकर कई निबंध लिखे गए। इनमे पहले अंक में गोस्वामी तुलसीदास एवं सुमित्रा नंदन पंत, चौथे अंक में प्रेमचंद; नौवें अंक में

आ. रामचंद्र शुक्ल; बीसवें अंक में गोर्की; बाइसवें अंक में नागार्जुन तथा तेइसवें अंक में चेखव केंद्रित लेखों की गणना की जा सकती है। इस दृष्टि से सबसे समृद्ध अंक 25 तथा 26 थे जिसमें एक साथ वाल्मिकी, कालीदास, सूरदास, तुलसीदास, वर्डसवर्थ, शैली, गेटे, रविन्द्रनाथ, जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, बच्चन, दिनकर, अंचल तथा अज्ञेय को केन्द्र में रखकर 'काव्यालोचन' किया गया।

आलोचना के विशेषांक

अब एक नज़र आलोचना के विशेषांकों पर। पहले दशक की आलोचना का पहला विशेषांक अंक 5 था जो 'इतिहास विशेषांक' था। इसका दूसरा अंक 6 भी इतिहास विशेषांक था। कहा जाता है कि तब के नवोदित आलोचक एवं बाद के आलोचना के इतिहास पुरुष के रूप में ख्यात नामवर सिंह ने इन दोनो अंको की सामग्री जुटाने में अथक परिश्रम किया था। आलोचना का नौवाँ अंक 'आलोचना विशेषांक' था जिसमें भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा पद्धतियों एवं आलोचकों पर कुल 31 आलेख थे। इसमें एक ओर भरत मुनि थे तो दूसरे छोर पर टी.एस. इलिएट। इसी अंक में विजयदेव नारायण साही का प्रसिद्ध आलेख 'मार्क्सवादी समीक्षा और उसकी कम्युनिस्ट परिणति' छपा था। अगला विशेषांक अंक 13 था जो 'उपन्यास' केंद्रित था जिसमें न केवल भारतीय बल्कि विश्व उपन्यास भी चर्चा थी। अगले दो विशेषांक 18 तथा 19 'नाटक' केंद्रित थे जिसमें नाटक के सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक- भारतीय तथा पाश्चात्य दोनो रूपों की विशद चर्चा थी। अगले दो विशेषांक अंक 25-26 थे जो 'काव्यालोचन' पर केंद्रित थे एवं अपनी परंपरा के अनुरूप आलोचना ने न केवल हिन्दी एवं प्रमुख भारतीय भाषाओं के साहित्य को छुआ था बल्कि फ्रांसीसी, अमरीकी तथा अंग्रेज़ी साहित्य को भी परखा था।

आलोचना के पहली दशक की यात्रा इस प्रकार अत्यंत विविधता पूर्ण रही। न, केवल अपनी समीक्षाओं, लेखों एवं विश्लेषणों की दृष्टि से बल्कि अपनी संपादकीय उठापटक की दृष्टि से भी आलोचना का यह काल खंड अत्यंत घटना पूर्ण रहा। इसका उल्लेख अनुक्रमणिका के इतिहास वर्णन के क्रम में कुछ इस प्रकार हुआ है-

'आलोचना के प्रारम्भिक छ: अंकों के बाद पत्रिका की बागडोर नए हाथों में दी गई। इस बदलाव की पृष्ठभूमि में 'आलोचना' के प्रबन्धक एवं तत्कालीन सम्पादक चौहान जी के बीच किन्हीं मुद्दों को लेकर गहरे मतभेद थे। जनवरी, 1953 में राजकमल प्रकाशन की एक शाखा इलाहाबाद के सिविल लाइंस में स्थापित हुई। इसी शाखा में बहुत बाद में लोकभारती प्रकाशन स्थापित हुआ। ओम प्रकाश जी उस समय ज़्यादातर इलाहाबाद में ही रहते थे। इसी कारण उन्होंने 'आलोचना' के सम्पादक के रूप में इलाहाबाद के चार लेखकों का चुनाव किया जो 'परिमल' ग्रुप से जुड़े थे। वे लेखक थे- धर्मवीर भारती, रघुवंश, विजयदेवनारायण साही और ब्रजेश्वर वर्मा।

इस नए सम्पादक-मंडल ने अप्रैल, 1953 से जनवरी, 1956 तक अर्थात् अंक-7 से अंक-17 तक 'आलोचना' का सम्पादन किया। नए सम्पादक-मंडल ने नए तेवर के साथ 'आलोचना' को नया रंग देने का प्रयास किया। अपने सम्पादकीय आलेखों में सम्पादक मंडल ने प्रगतिशील वामपंथी साहित्य एवं आलोचना को संकुचित दृष्टि से प्रेरित बताते हुए प्रयोगवादी - कलावादी साहित्य की वकालत की।

उस दौर की 'आलोचना' ने तत्कालीन साहित्यिक विमर्श को कैसे प्रभावित किया, इसकी चर्चा करते हुए भारत यायावर लिखते हैं- 'भारती और साही ने उसे ('आलोचना' को) शीतयुद्ध की विचारधारा को वहन करनेवाला पत्र या मंच बनाया। 'मार्क्सवादी समीक्षा की कम्युनिस्ट परिणति' से चिन्तित इन सम्पादकों ने 'आलोचना' को उस विचारधारा का प्रतिनिधि बनाया जिसे कृत्रिम, गूढ़, पश्चिमोन्मुख आधुनिकता या आधुनिकतावाद कह सकते हैं। नामवर सिंह की आरम्भिक पुस्तक 'इतिहास और आलोचना' की टिप्पणियाँ उसी समय की 'आलोचना' की सम्पादकीय दृष्टि या विचारधारा से संघर्ष का परिणाम हैं।'

इस सम्पादक-मंडल ने अक्टूबर, 1953 में 'आलोचना विशेषांक' तथा अक्टूबर, 1954 में 'उपन्यास विशेषांक' निकाले जिनमें उपरोक्त विधाओं पर विविधतापूर्ण सामग्री पाठकों को उपलब्ध हुई। इस विकास-यात्रा में-अप्रैल, 1953 से जुलाई, 1954 तक के अंकों में-क्षेमचन्द्र 'सुमन' सहकारी सम्पादक के रूप में वापस 'आलोचना' से जुड़े।

अप्रैल, 1956 में 'आलोचना' के सम्पादकीय विभाग में पुन: बदलाव आया। ऐसा प्रतीत होता है कि वाम एवं दक्षिणपंथी लेखकों की उठा-पटक ने सबको साथ लेकर चलनेवाले उदारवादी छवि के साहित्यकार आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी को सम्पादक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। अपनी उदारवादी छवि के अनुरूप वाजपेयी जी ने 'समीक्षा संबंधी सन्तुलित प्रतिमान और समन्वित दृष्टि' की वकालत की और 'आलोचना' को वाम अथवा दक्षिणपंथी अतिवादों से सतर्कतापूर्वक बचाने का आग्रह किया। लगभग तीन बरसों के अपने कार्यकाल में उन्होंने 'आलोचना' में प्रगतिशील और प्रयोगवादी, दोनों खेमों को जगह दी। उनके सम्पादकत्व में, अप्रैल एवं जुलाई, 1956 में, 'नाटक' के दो विशेषांक तथा जनवरी, 1959 एवं अप्रैल, 1959 में 'काव्यालोचन' के दो विशेषांक निकले, जिनमें उपरोक्त विषयों पर वैविध्यपूर्ण सामग्री दी गई। किन्तु वाजपेयी जी के सम्पादन-काल में 'आलोचना' का स्वरूप थोड़ा संकुचित हुआ और उन पर इसे 'विश्वविद्यालय की पत्रिका' बनाने का आरोप भी लगा।

इस प्रकार पहले दशक की यात्रा यही समाप्त होती है। 'आलोचना' पत्रिका की पहले दशक की यह यात्रा हिन्दी साहित्य के इतिहास-विशेषत: स्वतंत्रता के बाद हिन्दी साहित्य में आ रहे बदलाव को जानने समझने की एक चाभी प्रदान करती है। न केवल शोधार्थियों के लिए बल्कि हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा में रुचि रखने वाले सभी सुधी जनों के लिए यह एक अनूठा संकलन है।

000

इन दिनों जो मैंने पढ़ा

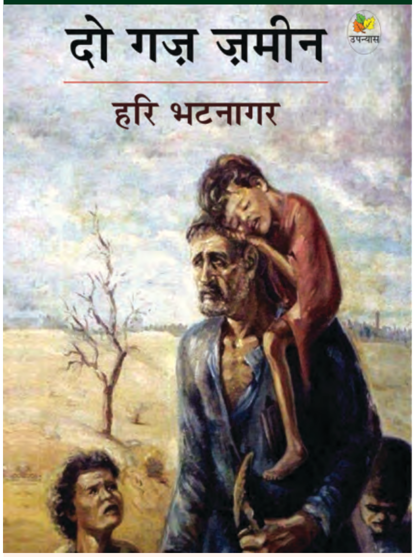

इन दिनों जो मैंने पढ़ा

दो गज़ ज़मीन

समीक्षक : सुधा ओम ढींगरा
लेखक : हरि भटनागर
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

हरि भटनागर का उपन्यास 'दो गज़ ज़मीन' पढ़ने का मौका मिला। उपन्यास पढ़ते-पढ़ते उनकी कई कहानियाँ मस्तिष्क में घूम गईं। 'सेवड़ी रोटियाँ और जले आलू' मेरी पसंदीदा कहानियों में से एक है। मज़दूर और कामगारों के जीवन पर उनकी लेखनी बेधड़क और बेख़ौफ़ चलती है। इन वर्गों की समस्याओं, विसंगतियों, पीड़ा और दर्द को लेखनी में उतारना भी लेखक के लिए एक चुनौती है। ऐसा महसूस होता है, हरि भटनागर हर समय यह चुनौती स्वीकार करने के लिए तैनात रहते हैं।

'दो गज़ ज़मीन' आमजन का उपन्यास है, छोटे-मोटे काम करके गुज़र बसर करने वालों की कथा-व्यथा है। उनका रोज़मर्रा का संघर्ष और उससे जुड़ीं दिक्कतें, बदलते जीवन मूल्यों से बिखरती मान्यताएँ, आधुनिकता की होड़ में टूटती परम्पराएँ और बढ़ती परेशानियों का बख़ूबी चित्रण है। समय का परिवर्तन रिश्तों में जो विघटन लाया है, पैसे की चमक-दमक से युवा पीढ़ी की सोच में जो बदलाव आया है, लेखक ने उसे बहुत मेहनत से उकेरा है। लेखक ने उपन्यास का ताना-बाना कुछ इस तरह से बुना है, छोटे कहे जाने वाले लोगों में मानव मूल्य और इंसानियत दोनों बड़ी सजगता से जीवित नज़र आते हैं।

'दो गज़ ज़मीन' उपन्यास का कथा नायक लाला एक सीधा-साधा कामकाजी इंसान है। उसका अपना जीवन दर्शन है। इंसानियत से भरपूर संवेदनाएँ हैं और वह अपनी ही सोच के दायरे में जीता है। अनगिनत विशिष्ट गुणों से भरपूर है पर वह स्वयं भी अपनी शक्ति और गुणों को पहचानता नहीं है। उसके इर्द-गिर्द के कामकाजी साधारण से कहे जाने वाले लोग भी उसी तरह के हैं। लाला अपनी अच्छाइयों में ही जीवन के कई निजी और व्यावसायिक मोर्चों में हार जाता है। 'लाला' पात्र के माध्यम से लेखक ने यह बताने की कोशिश की है कि समाज की सोच में कितना भी परिवर्तन आ जाए; लेकिन लाला और उसके आस-पास के लोगों की बदौलत ही मानवता ज़िंदा रहती है।

दूसरा प्रमुख पात्र मंगल उस युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है, जो बाज़ारवाद की चकाचौंध से प्रभावित होकर पूँजीवादी सोच के दबाव में बड़ी जल्दी आ जाती है। प्रभाव और दबाव में वह रिश्तों तक को भूल जाते हैं और स्वार्थ पूर्ति के लिए छोटे कहे जाने वाले लोगों को भी रौंद डालते हैं। मंगल युवा पीढ़ी के उस वर्ग का भी प्रतिनिधित्व करता है जो जल्द ही अमीर हो जाना चाहते हैं। लक्ष्य पूर्ति के लिए कुछ भी कर लेते हैं।

लाला की पीढ़ी के लोग स्वयं को कुर्बान कर भी अपने मूल्यों की रक्षा करते हैं। बेटे मंगल ने उन्हें भावनात्मक और व्यावसायिक चोट पहुँचाई, पर उन्होंने उफ़ तक नहीं की। मुंशी गिरधर की बूढ़ी माँ को खाना खिलाते रहे हालाँकि उसी की वजह से उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा।

उपन्यास में लेखक ने समाज में फैली विसंगतियों पर बड़े सलीके से चोट की है-

मलऊ हलवाई है, रामखेलावन पान बेचते हैं, नाटे अपने काम से ज़िंदा हैं, इसलिए उसका काम छोटा नहीं। हलवाई या पनवाड़ी भी उतना ही बड़ा है जितने कि तुम! किसी के काम को ही हेच निगाह से मत देखो। इससे वह छोटा नहीं होगा, तुम छोटे होगे! तुम अपने को ठाकुर मानते हो, पृथ्वीराज चौहान का वंशज! यहाँ सभी को अपने से नीचे मानते हो! पृथ्वीराज चौहान बड़े थे तो ठाकुर या राजपूत होने से बड़े नहीं थे -वे बड़े थे क्योंकि उन्होंने अपने वतन की रक्षा के लिए जान दी। तुम ठाकुर हो इसी तुफ़ैल में रहो, कौन पूछेगा तुम्हें। जब समाज हित में तुम खड़े होगे तो तुम इज़्ज़त पाओगे- लोग तुम्हें अपना मानेंगे। तब तुम ठाकुर कहलाओगे! ठाकुर वही है जो समाज सेवा करे- भलाई करे- अपने को समाज हित में मिटा दे-

उपन्यास में सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था के उथलेपन को कई जगह उजागर किया गया है। बड़ी सुघड़ता से चोट भी की गई है। उपन्यास की भाषा बहुत सहज और शिल्प बहुत सशक्त है। यथार्थपरक उपन्यास है पर रोचक है। एक पठनीय उपन्यास के लिए हरि भटनागर और शिवना प्रकाशन को बहुत-बहुत बधाई! उपन्यास अमेज़ॉन पर उपलब्ध है।

000

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

काला सोना

समीक्षक : केतन यादव

लेखक : रेनू यादव

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

केतन यादव
(शोध छात्र)
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
मोबाइल- 8959361111
ईमेल- yadavketan61@gmail.com

'काला सोना' अपने समय की वह काली सच्चाई है जिसको बयाँ करने में प्राय: प्राण थरथराने लगते हैं। 'काला सोना' कहानी-संग्रह की कथानायिकाएँ लोकजीवन की संघर्षरत, कर्तव्यपरायण, स्वतंत्रता की महत्वाकांक्षी और अपनी पहचान के लिए छटपटाती क्रांतिकारी हैं। इस कहानी संग्रह के पात्र किसी कल्पना लोक के लुभावन सपनों को नहीं बाँच रहे अपितु अपनी आपबीती अपना भोगा हुआ जटिल यथार्थ कह रहे हैं वह यथार्थ जो थोपा गया नहीं, बल्कि जिया गया है।

वैसे तो कथालेखिका डॉ. रेनू यादव से जुड़े थोड़ा समय ही हुआ है परंतु उनकी कहानियों के माध्यम से उनके रचनात्मक संसार में प्रवेश किया तो लगा उनके बचपन से लेकर अब तक की संवेदनात्मक विकासक्रम को देख रहा हूँ; जी रहा हूँ। व्यक्तित्व से बहुत उदार और विचारों से अत्यंत सरल और सहज रेनू गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय नोएडा के भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग (हिंदी) में फैकल्टी एसोसिएट हैं। वे उत्तर प्रदेश के गोरखपुर के छोटे से गाँव तिलौली से निकलकर देश के कर्नाटक एवं हैदराबाद में पढ़ाई के लिए भी आयीं और अपनी अलग पहचान भी बनायीं। इस प्रकार हम देखते हैं वो स्वयं एक जुझारू संघर्षशील स्त्री हैं जिन्होंने उत्तर से दक्षिण तक की दूरी ज्ञान के लिए नापी हैं तथा अपनी पहचान के लिए नापी हैं। वो स्वयं अपनी कहानियों की तरह एक प्रेरणादायी पात्र हैं जिनके जीवनसंघर्ष पर कई कहानियाँ और उपन्यास लिखे जा सकते हैं। तिलौली से यहाँ तक का सफर आसान नहीं था। ग्रामीण संस्कृति में स्त्रियों के लिए शिक्षा लेना और रोज़गार करना आज भी टेढ़ी खीर है। आपको बता दें कि रेनू जी अपने गाँव की इतनी पढ़ी-लिखी पहली महिला हैं जिन्होंने पीएँच.डी किया है और उच्च शिक्षा में अध्यापन कार्य कर रही हैं। उन्होंने पूरे गाँव की लड़कियों के लिए सपनों की दुनिया का दरवाज़ा खोल दिया जहाँ स्वावलंबन और स्वाभिमान से प्रवेश किया जाता है। वे रास्ते में आए

कठिनाइयों से लड़ती रहीं। उन्हें जिस गाँव समाज से लगातार चुनौतियाँ मिलीं वे उस पर निरंतर प्रेम लुटाती रहती हैं। इस कहानी-संग्रह को भी उन्होंने अपने गाँव को समर्पित किया है। ये उसी तरह है कि जिससे चोट खाया उसी पर मोहवश प्रेम न्यौछावर किया। दरअसल चाहे कुछ भी हो जैसी भी परिस्थितियाँ हों, पर उनके व्यक्तित्व का बीजवपन तो तिलौली में ही हुआ न और वे बराबर से अपने गाँव और समाज के प्रति अपना ऋण उतारते चल रही हैं। जैसे-जैसे जीवन में संकट आया वे उनका सामना करते हुए और परिपक्व होती गयीं और काले खदान में से 'काला सोना' बनकर निकलीं। मुझे प्रिय कवयित्री अनामिका जी की कविता याद आ रही है कि -

"मैं एक दरवाज़ा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतना ही खुलती गई"

वास्तव में रेनू यादव ऐसी ही हैं। जितनी मुसीबतें आयीं वे उसमें अपना रास्ता बनाती गयीं। अब बात करते हैं 'काला सोना' की।

इस कहानी संग्रह में कुल बारह कहानियाँ हैं, यथा - नचनिया, काला सोना, वसुधा, मुखाग्नि, छोछक, कोपभवन, टोनहिन, अमरपाली, चऊकवँ राँड़, डर, खुखड़ी, मुँहझौंसी। ये कहानियाँ अपने आप में एक इतिहास भी है और वर्तमान भी। काला सोना नई सदी में पुराना दर्द है। पुराना कुछ कुछ इसलिए क्योंकि मानों स्त्री की परिस्थितियाँ कभी बदली ही नहीं। पर ऐसा नहीं है कि बदलते ज़माने के साथ नई चुनौतियाँ नहीं हैं। इस कहानी में उन चुनौतियों पर खुल के चर्चा की गई है। वर्तमान समय के जटिल यथार्थ को बहुत ही सुगठित तरीके से दिखाया गया है। ये कहानियाँ अपने समय की अनबोली स्त्रियों का बोलता हुआ दर्द है। बात शुरू करते हैं 'काला सोना' की भाषा की। रेनू की कहानियाँ कोई आसमानी कल्पना से नहीं उतरी हैं, वो हमारे आस-पास की घटनाओं का समुच्चय हैं। आस-पास की औरतों की ज़बान में उन्हें सलीक़े से उकेरा गया है। कहानी में भोजपुरी पूर्वांचल समाज खुल कर सामने आया है। लोकभाषा साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी का अतिक्रमण भी कर रही है और उसके साथ हाथ पकड़कर बैठ भी रही है, मानों अपनी बहन से अपनी ज़बान में अपना दर्द बाँट रही हो। इतना सुन्दर भाषिक संसार है, इतनी काव्यात्मकता है, इतना लय है कि मन मुग्ध हो उठता है। 'वसुधा' नामक कहानी में लेखिका इतनी ख़ूबसूरती से वसुधा और सूरज के मिलन की संधिभूमि को रचती हैं कि पैराग्राफ ख़त्म होने पर एक तरफ आगे जानने की उत्सुकता तो होती है पर इस भाषायी सम्मोहन का लय टूटने का दर्द भी होता है। वे लिखती हैं -'सुबह की पलकों पर जब सूरज की सुनहरी रश्मियाँ वसुधा पर धीरे-धीरे अपने कोमल कदम रखती हैं, तब अंधकार अपनी बाँहें फैलाए उन रश्मियों का स्वागत करता है। अंधकार के पूर्ण समर्पण के पश्चात् अर्थात् रश्मियों में पूरी तरह विलीन हो जाने पर प्रात: काल में धरती पूर्णत: सुनहरे रंगों में रंग जाती है।'

'मुखाग्नि' नामक कहानी की भाषा में इतनी वेदना दिखती है कि लोकनायिका राधिका मानों अपनी ही वेदना हो जाती है - 'धुरियाए, मटियाए, कचड़ियाये, शीतियाए हज़ारों पैरों के बीच राधिका मुँह के बल पट्ट गिरी पड़ती है, उसके मुँह से साँय-साँय और खरखराती नाक से निकलती हवा शीतियाए धूर पर पड़ते ही धूर फुर्र-फुर्र करके वहीं बैठ जा रही हैं जैसे कि आज वो किसी भी हाल में राधिका के साथ ही रहना चाहती हों और उसके अंतर्मन की व्यथा को ख़ुद में सोख लेना चाहती हों।'

ये धुरियाए, मटियाए, कचड़ियाए, शीतियाए कोई अनुप्रास का चमत्कार नहीं है बल्कि गौर से देखने पर पता चलेगा कि ग्रामीण स्त्री का श्रृंगार है जिसे वो जीवन भर उतार नहीं पाती न सुहागन के वेष में न विधवा के। 'अमरपाली' कहानी में भाषा का रसीला सौंदर्य देखिए और सोनवा का अमरपाली होना भी -'पके आम पर ललायी लिए गाल जिसमें सींक चुभो दो तो रस टपक जाए, लट ऐसे छितराये पड़े हैं कि जैसे दो दिन से ककही से बाल झारा ही न हो पर तपती धूप में छतरी का काम भी तो कर रहे हैं। बालों में पल्लो हाथ में पल्लो और पल्लो के ही बैल बनाकर खेलती सोनवा को देखकर अनायास ही दीनानाथ के मुँह से निकल गया - 'अमरपाली'।

इन कहानियों में लोकभाषा की वो मिठास है जिसके लिए अपना भोजपुरी समाज जाना जाता है। नामवर सिंह ने कहा था कि भोजपुरी प्रदेश के लोग बोलते नहीं हैं गाते हैं। वो भाषा 'खुखड़ी' कहानी में 'जेवनार की तरह मीठ-मीठ सोंधी-सोंधी' है। इसी कहानी में लेखिका एक पंक्ति में कहती हैं 'बचपन का बियाह जवानी में रास न आया तो पहली मेहरारू को छोड़ दिए।' हमारे यहाँ औरत पतोह भी होती है और मेहरारू भी। ये पतोह और मेहरारू केवल संज्ञा नहीं हैं अपितु भोजपुरी समाज का विशेषण भी हैं। 'मुँहझौसी' कहानी में ऐसे ही संज्ञा विशेषण का मिलाप होता है - 'सच है कि न तो कुमकुम को अपने जीवन में कुमकुम का सौभाग्य हासिल होने वाला है और न ही रातरानी के जीवन में कभी दिन का उजाला।'

'मुँहझौसी' कहानी को पढ़ कर बिंब में 'सत्यम शिवम सुंदरम्' फिल्म की रूपा की छवि उभरती है, भले ही दोनों का कथानक भिन्न-भिन्न है। 'काला सोना' कहानी-संग्रह के पात्र रूपा, मलकायिन, नीलम, सोनवा, रामलखन और हरिया, मनोहरी देवी, राधिका, वसुधा, टोनहिन, चिकन बहुत सजीव हैं। कहानी में पात्र- योजना लोकसंस्कृति से निकली हुई है। वहाँ के समाज में ऐसे ही नाम होते हैं। सभी पात्र मूक पीड़ा की वेदना को प्रकट कर रहे हैं। 'काला सोना' की संवाद-योजना भी बहुत सुन्दर है, संवाद अत्यंत छोटे चुस्त और गतिशील हैं। बहुत सधा हुआ संवाद है कहीं पर भी बोरियत या बोझिलपन नहीं है। हर पात्र अपनी बात बहुत सहजता से कह रहे हैं। कथानक का कसाव इतना है कि पाठक अंत तक बँधा रहे, कहानी आख़िरी शब्द तक पाठक का हाथ पकड़े हुए है और पढ़ने के बाद दिमाग़ पकड़े हुए। वातावरण के विषय में बीच-बीच में कई जगह उल्लेख कर चुका हूँ कि ये कहानियाँ अपने समाज की काली सच्चाई के वातावरण को चीर कर निकलती हैं।

'काला सोना' कहानी संग्रह में विविधता

के अनगिनत रूप हैं पर कोई एक चीज़ जो सबको आपस में जोड़ती है वो है स्त्री का आत्मसंघर्ष, समाज को ख़ुद का महत्त्व समझाने की छटपटाहट।

'वसुधा' कहानी गोरखपुर कुशीनगर के परिवेश से उपजी है। एक पूर्वांचली युवती किस तरह घर में अनेकों संघर्षों से गुज़रते हुए शहर तक पहुचती है और वहाँ ख़ुद को ढालती है। वसुधा लेडी श्रीराम कॉलेज में पोस्ट ग्रेजुएशन से हिन्दी विभाग में प्रवेश लेती है और तब हॉस्टल में प्रवेश करती है तो दंग रह जाती है - 'हॉस्टल ! एक दूसरी दुनिया की शुरुआत ... ख़ासकर हम जैसे गाँव से जाने वालों के लिए। जहाँ हम लोग चौबीसों घंटे दुपट्टे से ख़ुद को ढँके रहते थे और दुपट्टा हटने पर नंगे हो जाने के एहसास से सहमकर छाती पर हाथ रख लेते थे वहीं हॉस्टल में आधी खुली छाती और नंगी टाँगों वाली शार्ट ड्रेस में लड़कियों का घूमना देखकर मेरा मुँह खुला का खुला रह जाता था। अब तक तो सब ठीक ठाक था लेकिन जब रात में मेरी रूममेट ब्रा और पैंटी पहन कर सोई... पहली रात ही मेरी नींद उड़ गई। हनुमान चालीसा, शिव चालीसा, दुर्गा चालीसा सब पढ़ डाली...।'

यूपी बिहार की कोई लड़की जब पहली बार बड़े शहरों की ओर देखती है तो एक पल को वह उस चकाचौंध की दुनिया से सहमती भी है पर उस आकर्षण में ख़ुद को ढालने और आधुनिकता के रंग में रंगने को तैयार भी हो जाती है - 'धीरे धीरे समय के साथ-साथ आश्चर्य कम होने लगा। जिन चीज़ों को देखकर आँखें फटी की फटी रह जाती थीं अब वे नार्मल लगने लगीं। मैं भी दिल्ली के रंग में रँगने को तैयार थी।'

लेखिका आगे बढ़ती हैं तो जीवन की कटु सच्चाइयों से सामना कराती है वह सच्चाइयाँ जिनकी हमने कल्पना नहीं की होती हैं। वसुधा पूरी तरह से सूरज की प्रेममय किरणों को ओढ़ लेती है पर सूरज शाम में धीरे-धीरे अपनी किरणें बटोरने लगता है और वसुधा को घने अंधकार से सनी रातों के हवाले छोड़ कर चला जाता है। गाँव की निश्छल सीधी वसुधा की सपनों की मीनार सूरज एक झटके में तोड़ देता है - 'सुबह से शाम और शाम से रात हो गई। आगरा के होटल में सूरज पूरी तरह से मुझमें और मैं सूरज में समा गई। इस बात से अंजान कि सूरज दूर से वसुधा को अपनी बाहों में भरता है और फिर चला जाता है।'

'मुखाग्नि' नामक कहानी भी एक अलग विषय वस्तु पर आधारित है। एक फौजी के न रहने पर उसकी स्त्री का संघर्ष कितना बढ़ जाता है, इस कहानी में देखा जा सकता है। कथा के अंत में एक बड़ा ही करुण प्रसंग है जिसमें राधिका अपने पति के अंतिम संस्कार को ख़ुद बेटी के हाथों कराने की लड़ाई लड़ती है -'पीछे से कोई और औरत चिल्लाई, 'अरे कवनों रोको उसे, मेहरारू कंधा नाहीं देतीं, मेहरारू समशान नाहीं जातीं।' राधिका का पैर लड़खड़ाया, पिंकू को कलेजे से चिपकाये साधना झट से उसे छोड़ ताबूत पर अपना कंधा लगा देती है और राधिका को सँभाल लेती है। राधिका की आँखें सखी का सम्बल पाकर कह उठीं, 'अब तक तो साथ नाहीं मिला, कम से कम आख़िरी समय में साथ चलने दो। हमहूँ श्मशान जाएँगे...।' रिंकू इनके कलेजे का टुकड़ा है, मुखाग्नि वही देगी...।'

'कोपभवन' नामक कहानी तो अपने आप में बहुत क्रांतिकारी है। यह कहानी इक्कीसवीं सदी के एक और लैंगिक स्वतंत्रता की ओर बढ़ते भारतीय समाज की सोच पर आधारित है। जी हाँ, ये कहानी समलैंगिक विमर्श पर आधारित है। ये कहानी बताती है कि वे भी इंसान हैं, संभव है दो समान लिंगियों को प्रेम हो जाए। वे भी समाज में एक दूसरे का हाथ पकड़ कर साथ रहना चाहते हैं। पर समाज में यह संघर्ष आसान नहीं -'यहाँ इंसान के दिल इतने काठ-कोरो हैं कि इन्हें पता चल जाए तो हमारा मज़ाक उड़ाएँगे, हमें मार ही डालेंगे। ऑनर किलिंग से कम घातक सज़ा नहीं मिलेगी ! बच गए तो जीते-जी ज़बरदस्ती किसी औरत के पल्लू से बाँध दिया जाएगा जिसमें वो भी मरेगी और हम लोग भी...।'

'काला सोना' कहानी में कदम-कदम पर भारतीय ग्रामीण स्त्रियों की करुण-गाथा है। किस प्रकार एक स्त्री समाज की बाध्यताओं को अपनि नियति समझ लेती है और उसे एहसास भी नहीं होता कि इससे आगे भी उसका कोई जीवन है। भारतीय ग्रामीण स्त्री की नियति को 'चउकवँ राड़' नामक कहानी में दिखाया गया है -'माँग में सेनूर पड़ते ही हमने उनको अपना पति-परमेश्वर मान लिया, मन ही मन उनके ऊपर सब कुछ निछावर कर दिया।'

और आगे एक पंक्ति में विदा होती ग्रामीण स्त्री की मनोदशा का चित्रण देखिए -'माई से बिछुड़ने का दुख और उनसे मिलने की खुशी एक साथ मेरे मन में हिलोरे लेने लगी। जैसे नदी पहाड़ की गोद से निकलकर सागर में समाने जा रही हो।'

'डर' नामक कहानी अपने समय का जीवंत इतिहास है या यूँ कहें कि अब भी कभी भी वर्तमान हो सकता है। ये कहानी कोरोना काल की त्रासदी को रेखांकित करती है, भय के वातावरण को रेखांकित करती है - 'सुबह नौ बजे न्यूज़ चैनल लॉकडाउन की अपनी-अपनी ख़बर कह रहे होते हैं, रंजना न्यूज़ चैनल पर नज़र गड़ाये सुधीर के सामने प्लेट रखती है, सुधीर रंजना की ओर बिना देखे ही कह उठता है, न जाने कब लॉकडाउन खुलेगा, घर में बैठे-बैठे भूख नहीं लग रही।'

'मुँहझौसी' किताब की आख़िरी कहानी है। इसमें केवल एसिड अटैक झेली हुई रूपा की त्रासदी ही नहीं अपितु पूरे गाँव भर की स्त्रियों की वह छिपी हुई दास्ताँ है जिसे पितृसत्तात्मक समाज के पुरुष इंच-भर भी बाहर नहीं आने देना चाहते। तथाकथिक नैतिकता के सामाजिक पाखंडों, झूठी आदर्शों पर नंगी चोट है ये कहानी। रूपा की त्रासदी को दो पंक्तियों में देख सकते हैं - 'वैसे तो ईंट को भी हर रोज़ झौंसा जाय तो वह एक दिन पत्थर बन जाता है। उसी प्रकार मुँहझौसी को भी हर रोज़ इतना झौंसा गया कि वह चट्टान बन गई, पहाड़ बन गई।'

पूर्वांचली ग्रामीण समाज को समझने के लिए कहानी संग्रह मील का पत्थर है। इसकी भाषा, शैली, बुनावट सब कुछ लोक से उपजा है। इसमें लोक का सुंदर पक्ष और असुंदर पक्ष दोनों ही देखने को मिलता है।

000

पुस्तक समीक्षा

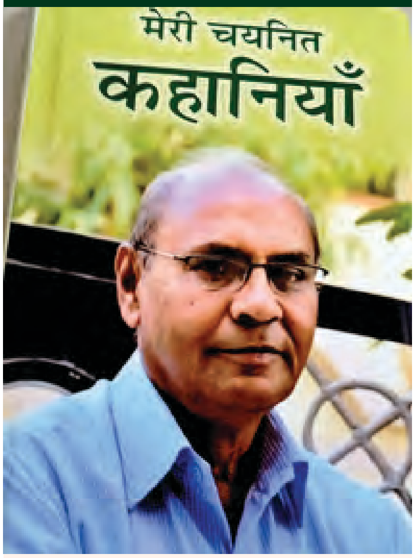

(कहानी संग्रह)

मेरी चयनित कहानियाँ

समीक्षक : डॉ. पंकज साहा

लेखक : माधव नागदा

प्रकाशक : श्रीसाहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली

डॉ. पंकज साहा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज,
खड़गपुर-721305 (प. बंगाल)
मोबाइल- 9434894190

माधव नागदा को सिर्फ राजस्थान के लोग ही नहीं, शेष भारत के लोग भी जानते हैं एवं उनकी लेखनी का लोहा मानते हैं। रसायन विज्ञान से मास्टर डिग्री प्राप्त नागदा के हिन्दी-प्रेम ने उन्हें सफल कहानीकार, लघुकथाकार, कवि, आलोचक एवं डायरीकार बना दिया। अनेक बड़े पुरस्कारों से सम्मानित नागदा संप्रति राजस्थान के एक छोटे से गाँव लालमादड़ी (नाथद्वारा) में रहकर साहित्य-सृजन में सक्रिय हैं।

'मेरी चयनित कहानियाँ' में उनकी पंद्रह चुनी हुई कहानियाँ संकलित हैं। पुस्तक के फ्लैप पर उनके प्रति डा. लक्ष्मीकांत शर्मा का जो कथन है, वह उनके कहानीकार का परिचायक है। उदाहरणार्थ एक उद्धरण, 'इस कथाकार का जीवनानुभव वैविध्यपूर्ण और विशाल है। मेवाड़ अंचल के अनेक आकर्षक और लोमहर्षक प्रसंग और प्रकरण उनकी कहानी-कला में अनुस्यूत हैं। लोक-संपृक्ति और क्रांतिकारी दृष्टिकोण उनकी कहानियों को धार देते हैं।'

'जहरकाँटा' संग्रह की पहली कहानी है। हमारा देश विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है, परंतु इस देश में आज़ादी के पहले ही सांप्रदायिक ज़हर का बीज बो दिया गया था, जिसके काँटे आज सर्वत्र फैल गए हैं। एक विद्वान के अनुसार, 'सांप्रदायिकता उस भावना का नाम है, जो मनुष्य को धर्म या जाति के नाम पर संगठित कर विधर्मी या विजातीय के प्रति द्वेष, घृणा या हिंसा के लिए उत्प्रेरित करती है।' 'जहरकाँटा' में इसी सत्य का उद्‌घाटन किया गया है।

गाँव का एक भोला-भाला व्यक्ति रामा किसी शहर में काम-धंधे की तलाश में आता है। गाँव के एक व्यक्ति पन्ना ने उससे कहा था, 'उस शहर में जो लोग केवल लोटा-डोर लेकर गए थे, वे कुछ बरसों में लखपति होकर लौटे। वह सबकी माँ है। वहाँ जाने के बाद चाहे आदमी भूखा उठ जाए मगर भूखा सोता नहीं है। वहाँ हर आदमी के लायक कोई-न-कोई काम है। ईमानदार के लिए ईमानदारी का धंधा है, तो बेईमान के लिए बेईमानी का। मेहनतकशों के लिए मज़दूरी है, तो

हिम्मत वालों के लिए गले में कीमती हार। लोग वहाँ रातों- रात लखपति बन जाते हैं।'(पृ.21)

रामा उस शहर में लखपति बनने नहीं, कुछ रोज़गार की आशा में जाता है। वह अपनी पत्नी को सेठ के कामुक शिकंजे से छुड़ाना चाहता है, वह अपने बीमार पिता का इलाज कराना चाहता है, परंतु शहर आते ही उसका पहला परिचय पुलिस की असंवेदनशीलता एवं क्रूरता से होता है। किसी तरह पुलिस के चंगुल से छूटने के बाद वह उस शहर में भटकता फिरता है। 'सड़क-सड़क, गली-गली, घर-घर। तेज़ धूप, पसीने से तर-बतर।'(पृ. 20) शहर में सांप्रदायिक दंगा हो गया था। लोग डरे हुए थे। दुकानें जली हुई थीं। जगह-जगह धुँआ उठ रहा था। सड़कें वीरान थीं। लोग उसकी बात सुनना नहीं चाहते और पुलिस भाग जाने को कहती नहीं तो गोली मारने की धमकी देती। एक गली में कुछ लोगों को देख वह उनसे काम माँगता है। काम के नाम पर उन लोगों ने उसे किरासन तेल का एक केन दिया और एक मोहल्ले में आग लगाने को कहा, परंतु रामा ने ऐसा दुष्कृत्य करने से मना कर दिया। रात के अँधेरे में पाँच-सात लोगों के एक दल ने उसे घेर लिया। उनकी दाढ़ियाँ बढ़ी हुई थीं। उन लोगों ने हिंदू समझकर उसकी हत्या करनी चाही तभी पुलिस की सीटी की आवाज़ सुनकर वे भागने लगे, लेकिन जाते-जाते वे उसे घायल कर गए। एक अस्पताल में उसे होश आया। लेकिन वह अपना नाम एवं अपनी पहचान खो बैठा था। लोगों ने उसका नाम रखा-गोरख। वह खोया-खोया-सा सड़कों पर डोलता रहता। कभी-कभी किसी राहगीर को रोककर पूछता, 'बाबू जी आपको मेरी जात देखनी है?'(पृ.25) और वह अपना कुर्ता ऊपर तक उठा देता। लोग उससे पीछा छुड़ाने के लिए कुछ पैसे उसकी हथेली पर रख देते। गोरख की ऐसी हरकतों पर लोग लड़ना भूल जाते और तालियाँ बजाते। लेखक के शब्दों में, 'धीरे-धीरे गोरख इस शहर में अमन-चैन का प्रतीक बन गया। लेकिन किस कीमत पर यह कोई गोरख से ही पूछे।'(पृ. 25)

यह कहानी आज़ाद भारत की स्थितियों पर जहाँ अनेक सवाल खड़ी करती है, वहाँ एक संदेश भी देती है कि जिस देश के सामने ग़रीबी, अकाल और बाह्य आक्रमणों का ख़तरा हो, वहाँ के लिए सांप्रदायिकता ज़हर से भी अधिक ज़हरीली चीज़ है।

दूसरी कहानी 'उधार की ज़िंदगी' डायरी-शिल्प में लिखी एक अद्‌भुत प्रेमकथा है। इसमें जातिवाद का ज़हर दो प्रेमियों को एक होने नहीं देता। एक सफाईकर्मी की बेटी हेतल से एक सवर्ण युवक अनिमेष प्यार कर बैठता है और उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता है, परंतु जात की मोटी दीवार उनके बीच खड़ी हो जाती है। होम्योपैथी की डाक्टरी पढ़नेवाला अनिमेष अपनी सेवा-सुश्रुषा द्वारा दिन-रात एक करके हेतल के बीमार पिता को ठीक कर देता है तो हेतल उससे लिपटकर कहती है, 'मेरे पापा को मौत के मुँह से खींचकर लाये हो। तुम्हारा यह ऋण कैसे चुकाऊँगी?'(पृ.32) इस पर अनिमेष मज़ाक में कहता है, 'तुम भी मुझे मौत के मुँह से निकाल लेना।'(पृ.32) मज़ाक में कही हुई यह बात सच हो जाती है। अनिमेष को जब स्वाइन फ्लू हो जाता है, तब उसके परिवार के लोग उससे दूरी बनाकर मिलते हैं, परंतु हेतल उसके पास बैठती है, उसके गाल थपथपाकर अपने कोमल स्पर्श का अहसास कराती है। जब वह उसके मुरझाए होंठ पर अपने होंठ रख देती है, तब अनिमेष अपने कमज़ोर हाथों से उसे दूर धकेलने की कोशिश करता हुआ कहता है, 'यह स्वाइन फ्लू है, कोई मामूली बीमारी नहीं।' इस पर हेतल कहती है, 'अनिमेष, जो ख़तरे नहीं उठा सकते, उन्हें प्यार करने का कोई हक़ नहीं है।'(पृ.27)

समुचित इलाज के उपरांत अनिमेष तो स्वस्थ हो जाता है, पर हेतल बीमार पड़ जाती है और उसकी मौत हो जाती है। अनिमेष के मन में भावनाओं का तूफ़ान उमड़ पड़ता है, 'मुझे ज़िंदगी देनेवाली स्वयं चली गई। वह मरकर जीत गई। मैं जीकर हार गया। अब इस उधार की ज़िंदगी का क्या करूँ?'(पृ.32) प्रेम की द्विपक्षीय भावनाओं के आवेग के कारण यह कहानी हिन्दी की उच्च कोटि की प्रेम कहानियों में स्थान पाने लायक है।

'परिणति' भी एक बेहतरीन प्रेम कहानी है। इसमें प्रेमी-प्रेमिका का निश्छल प्रेम अत्यंत रोचक ढंग से वर्णित है। उनके प्रेम की परिणति बिछोह में होती है। बिछोह का कारण जाति नहीं बेरोज़गारी है। शिक्षितों की बेरोज़गारी हमारे देश की बहुत बड़ी समस्या है। प्रतिवर्ष लाखों शिक्षित युवक महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों से उत्तीर्ण होकर निकलते हैं, परंतु वे छोटी नौकरी भी प्राप्त नहीं कर पाते। अपने शिक्षा-संस्थाओं के प्रांगणों में देखे गए उनके सपने अधूरे रह जाते हैं। उनकी महत्त्वाकांक्षाओं के रंगीन चित्र धूमिल पड़ने लगते हैं। उन्हें अपने जीवन की व्यर्थता का अहसास होने लगता है। ऐसी ही मनोदशा इस कहानी के मुख्य पात्र पवन उर्फ राहुल की होती है।

'बूढ़ी आँखों के सपने' दो पीढ़ियों की भावनात्मक टकराहट की कहानी है। काफी संघर्ष करके, परिश्रम करके एक पिता अपने बेटे को पढ़ाता-लिखाता एवं योग्य बनाता है, परंतु युग-परिवर्तन की आहट सुनकर भी वह नए युग को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता है। वह मोटरसाइकिल की ज़रूरत को समझकर उसे तो स्वीकार कर लेता है, परंतु टी.वी. को स्वीकार नहीं कर पाता। वह अपने बेटे मदन को कह देता है, 'अगर टी.वी.- फी. वी. लाया तो इस घर में या तो तू रहेगा या मैं।'(पृ.34)

एक समय रामायण एवं महाभारत सीरियल की धूम मची थी। उन दिनों जिसके घर में टी.वी. होती थी, मोहल्ले में उसकी शान बढ़ जाती थी। मदन ने सोचा कि जिस तरह उसके बापू ने मोटरसाइकिल को क़बूल कर लिया उसी तरह टी. वी. को भी क़बूल कर लेंगे और उसने अपने घर में टी.वी. लगवा लिया। पूरे मोहल्ले यह ख़बर आग की तरह फैल गई और महाभारत देखने के लिए लोग उसके घर में जुटने लगे। परंतु बूढ़े रामलाल के भीतर गर्म हवाएँ बहने लगीं और उसने टी.वी. के विरुद्ध महाभारत छेड़ दिया। पूरा परिवार एवं टी.वी. देखने आए लोग एक तरफ और बूढ़ा रामलाल दूसरी तरफ। टी.वी. पर

चित्रहार का रंगारंग कार्यक्रम देखकर रामलाल वैसे ही भड़क गया जैसे साँड लाल कपड़े को देखकर भड़कता है। ग़ुस्से से उसने आसमान सर पर उठा लिया। मदन की पत्नी बड़बड़ाकर बोली, 'इस घर में रहना ही मुहाल हो गया है। सारी दुनिया टी.वी. देखती है और ये सादड़ी के साहूकार बन रहे हैं। चलो जी कहीं दूसरा घर ढूँढ़ते हैं। किराया ही लगेगा। रोज़-रोज़ की किच-किच से तो छुटकारा मिलेगा।'(पृ.40)

यह सुनकर रामलाल के कान खड़े हो जाते हैं। मदन की चुप्पी देख वह अनुमान लगा लेता है कि मदन भी घर छोड़ने के पक्ष में है। इससे व्यथित होकर वह ख़ुद घर छोड़कर जाने लगता है। बड़ी नाटकीय स्थिति उत्पन्न हो जाती है। रामूड़ी चिल्लाकर कहती है, 'बापू मत जाओ।' माँ के सीने में खाँसी का बवंडर उठता है और मुँह से लाल बगूले गिरने लगते हैं। मदन अपने छोटे भाई को वैद्यराज को बुलाने का आदेश देकर पिता का रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है। लेखक के शब्दों में, 'अब दोनों बाप-बेटे दो युगों की तरह आमने-सामने खड़े थे।'(पृ.41)

यह कहानी ज्ञानरंजन की 'पिता' कहानी की याद दिला देती है। 'पिता' कहानी में पिता समूचे परिवार के साथ रहते हुए अपनी रूढ़िवादी सोच एवं ज़िद के कारण अलग-थलग पड़ जाते हैं। दो पीढ़ियों का यह संघर्ष आज भी कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में अवश्य दिखाई देता है। यह हमारे समय एवं समाज का सत्य है, इसलिए कोई लेखक इससे आँखें मूँदे नहीं रह सकता। 'बूढ़ी आँखों के सपने' में लेखक ने भी इस सत्य को उद्घाटित किया है, परंतु ज्ञानरंजन जी के युग एवं उनके युग में अंतर आ गया है और यह अंतर दिखाई भी देता है। दो पीढ़ियों के बीच वैचारिक मतभेद दोनों कहानियों में है, परंतु जहाँ 'पिता' कहानी के पिता पुत्रों को बुलंद दरवाज़े की तरह लगते हैं और उनके समक्ष पुत्र स्वयं को निहायत पिद्दी और दयनीय महसूस करते हैं, वहीं इस कहानी के पिता में न वैसी बुलंदी है न वैसी ज़िद है और न उसके पुत्र मदन में वैसा पिद्दीपन है। आज जहाँ पिता की बुलंदी कम हो रही है, वहाँ पुत्र का पिद्दीपन भी कम होता जा रहा है। नागदा जी ने निश्चित रूप से युगानुरूप ज्ञानरंजन के बाद के पिता-पुत्र के संबंध को एक नए परिप्रेक्ष्य में इस कहानी द्वारा उद्घाटित किया है।

'ज़हरकाँटा', 'धोलो भाटो लीलो रूँख' कहानियों को छोड़ दिया जाय तो इस संग्रह की लगभग सभी कहानियों में नागदा जी के चिंतन का क्षेत्र मध्यवर्ग है। मुक्तिबोध ने अपनी 'ज़िंदगी की कतरन' कहानी में लिखा है, 'मध्यवर्गीय समाज की साँवली गहराइयों की रुँधी हवा की गंध से मैं इस तरह वाक़िफ़ हूँ जैसे मल्लाह समुद्र की नमकीन हवा से।' नागदा जी भी मध्यवर्ग की मानसिकता के, जिजीविषा के, संघर्षों के निकट जानकर हैं। सामान्यत: मध्यवर्गीय व्यक्ति समाज में अपने होने को दर्शाने के लिए नाना पाखंडों एवं बेईमानियों का सहारा लेता है। जो ऐसा नहीं करता है वह समाज एवं परिवार में दयनीय बन जाता है।

'केस नंबर पाँच सौ सोलह' कहानी के देवी प्रसाद कर्म-जीवन में अपनी ईमानदारी के कारण दयनीय एवं देश-दुनिया में हो रही गड़बड़ियों के समाचार पढ़कर अपनी छटपटाहट के कारण मेंटल केस बन गए थे। लेखक ने उनके संबंध में लिखा है, 'कोई पाठक अख़बार को महज समय काटने का साधन न मानकर अपने आस-पास की सच्ची और जीवंत दुनिया की तरह ले तो किसी का भी दिमाग़ फिर सकता है।।' (पृ.71-72)

आम तौर पर हिन्दी के लेखक मध्यवर्ग के ही होते हैं। अपने लेखन में भले वे देश-दुनिया को बदलने का जज़्बा रखते हों, नैतिकता की बातें करते हों, पर वास्तविक ज़िंदगी में वे एक व्यक्ति का भी जीवन सुधार नहीं पाते। उनकी नैतिकता थोथी नैतिकता बनकर रह जाती है। 'ज़ख्मी की डायरी में' कहानी का कथावाचक 'मैं' संवेदनशील कवि है, परंतु ज़ख्मी नामक एक फ़ोटोग्राफर, जो कवि भी है, को उसकी तंगहाली से निकालने के लिए उसके पास सहानुभूति के सिवा कुछ नहीं है। जबकि उसके पास कुछ अतिरिक्त पैसे थे। उससे वह ज़ख्मी की मदद न कर फ्रिज ख़रीद लेता है। यही हिन्दी के लेखकों की वास्तविकता है, जो लेखन में अच्छी-अच्छी बातें करने में माहिर होते हैं, पर अच्छा काम करके दिखाने में नानी मरने लगती है। 'सृजन यात्रा' कहानी का कथावाचक भी लेखक है। वह भी हिन्दी के आम लेखकों जैसा है। अपनी सृजनात्मकता के साथ-साथ वह आई हुई पुस्तकों की समीक्षा अथवा पांडुलिपियों की भूमिका या ब्लर्ब मैटर भी ख़ूब लिखता है, परंतु अपनी सृजन-यात्रा में मददगार अपनी पत्नी की बात पर तब चौंक जाता है, जब वह फर्श पर पोंछा लगाती हुई कहती है, 'मैं आपके आस-पास की दुनिया को सुंदर और रहने लायक बना रही हूँ।'(पृ.146)

वह सोचता है, 'हमारा मिशन भी तो यही है। हम साहित्यकार दुनिया को बदलना चाहते हैं। चाहते हैं कि हमारी रचना पढ़ने के पश्चात् पाठक यह महसूस करे कि अब वह पहले से ज़रा भिन्न है। कि अब वह अधिक जुझारू, अधिक सकारात्मक, अधिक संवेदनशील और अधिक लोकतांत्रिक है। उसे लगे कि अब दुनिया बेहतर और रहने लायक हो रही है।'(पृ.146) लेकिन वास्तव में ऐसा कुछ होता नहीं है, फिर भी लेखक अपनी पत्नी से प्रेरणा पाकर अपनी सृजन-यात्रा जारी रखने का संकल्प लेता है।

'आँसू, ग़ुस्सा और उदासी' तथा 'धुंध से निकलते हुए' परिवार-विमर्श की सशक्त कहानियाँ हैं। अन्य कहानियाँ भी वस्तु एवं कहन में अनोखी हैं। नागदा जी रसायन शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं, इसका परिचय उनकी 'पदावनति' कहानी से मिल जाता है। इसके अलावा उन्हें होम्योपैथिक दवाइयों का भी अच्छा ज्ञान है। 'केस नंबर पाँच सौ सोलह' कहानी इस बात को प्रमाणित करती है।

माधव नागदा का अनुभव-संसार जितना व्यापक है, उनकी कहन- शैली उतनी ही सरस और भाषा उतनी ही सरल है। 'जिस भाषा में हम बोलते हैं' उसी भाषा में लिखकर उन्होंने हिन्दी कहानी जगत् में अपनी उपस्थिति ज़ोरदार ढंग से दर्ज की है। उन्हें बधाई एवं शुभकामनाएँ।

000

पुस्तक समीक्षा

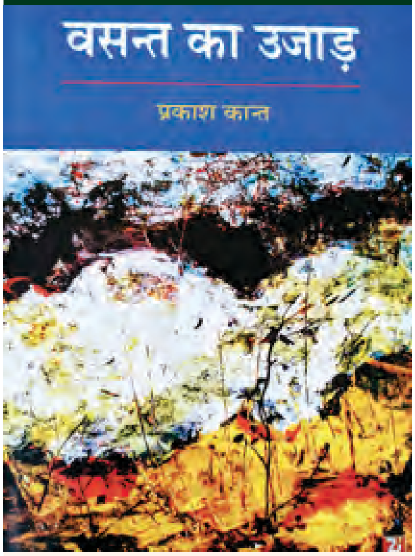

(कहानी संग्रह)

वसन्त का उजाड़

समीक्षक : गोविंद सेन

लेखक : प्रकाश कान्त

प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन, नई दिल्ली

गोविन्द सेन
राधारमण कॉलोनी, मनावर-454446, (धार), म.प्र.
मोबाइल- 9893010439,
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

'वसंत का उजाड़' वरिष्ठ कथाकार प्रकाश कान्त का ताज़ा कहानी संग्रह है। उनके खाते में चार उपन्यास और चार कहानी संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त उनकी कार्ल मार्क्स के जीवन और विचारों, संस्मरण, फिल्म और शिक्षा से जुड़ी चार किताबें भी हैं। इनकी कहानियों का अनुभव संसार गहरा और जनसरोकारों से नियंत्रित है। वे हर तरह की विसंगतियों, विद्रूपताओं और विडम्बनाओं को बहुत कुशलता से चित्रित करते हैं। इन कहानियों में आसपास के विकट स्थितियों में जीते ऐसे पात्र हैं जिन पर लोगों की नज़रें कम ही पड़ती हैं। जिनकी सुध कोई नहीं लेता। उनके जीवन में कोई सनसनी नहीं होती। ये कथाकार का कमाल है कि वे इन अज्ञात लिपियों जैसे लोगों को बख़ूबी पढ़ लेते हैं। आप उनकी कोई भी कहानी उठा लीजिए, उसमें आप आम आदमी की दिक़्क़तों, मुश्किलों और संघर्षों को पाएँगे। वह देर तक आपके मन को मथती रहेगी। विचार करने पर भी मजबूर करेगी।

'एक नदी–समय के बाद' पति-पत्नी और उनकी बेटी के आपसी रिश्तों की मार्मिक कहानी है। पत्नी सरिता के एक सड़क हादसे में गुज़र जाने के बाद नैरेटर की बेटी पिंकी अचानक बड़ी हो जाती है। वह पिता को टूटने से बचाने की कोशिश करती है। कहानी के विवरण बारीक, काव्यात्मक, सांकेतिक और मर्मस्पर्शी हैं। सरिता चाइल्ड सेंटर जाती रही थी। सरिता के न रहने पर पिंकी नेरेटर को चाइल्ड सेंटर से जोड़ने का प्रयास करती है ताकि फिर से उसमें जीने का वही पुराना सिलसिला चल निकले। नेरेटर के भीतर की रुकी हुई नदी फिर बहने लगे।

'मरुस्थलों के विरुद्ध' बुढ़ापे की ओर जाते हुए नैरेटर की दिलचस्प मनोवैज्ञानिक कहानी है। वह ढलती उम्र में पहनने-ओढ़ने के मामले में लापरवाह हो जाता है। कहीं पर भी स्लीपर पहने हुए ही निकल जाता है। पत्नी और बेटे को यह अच्छा नहीं लगता। वे उसे टोकते रहते हैं। वे चाहते हैं कि नैरेटर ज़रा बन-सँवर कर बाहर निकले। बालों में भी डाई करवा ले क्योंकि उसके बाल भले ही सफ़ेद हो गए हैं, पर झड़े नहीं हैं।

'सिड़ली' एक दबंग महिला की कहानी है जिसका आतंक पूरे मोहल्ले पर है। वह शंकालु है। उसे लगता है कि लोग उसे और उसकी लड़कियों के बारे में बुरा सोचते हैं। सभी उससे डरते

हैं क्योंकि वह मर्दाना गालियाँ देती है। बेवजह उनसे उलझ जाती है। ऊपर से भले ही वह दबंग लगे किन्तु भीतर से बहुत डरी हुई महिला है। उसकी दो बदसूरत लड़कियाँ हैं। वह पूजा-पाठ, जाप आदि करती और करवाती रहती है ताकि उसकी लड़कियों की शादी हो जाए। लेकिन कहीं रिश्ता जम नहीं पाता। एक लड़की मंदिर में परिक्रमा करते हुए गिरकर बेहोश हो जाती है और फिर उठ ही नहीं पाती। दूसरी लड़की आत्महत्या कर लेती है। आख़िर बेहद पूजा-पाठ और अंधी आस्था के चलते वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है।

'बिगुल' एक पुलिस कांस्टेबल की कहानी है जिसकी पहचान 'बाबू बिगुलवाला' के नाम से हो गई है। पत्नी की पाँच महीने की एक बच्ची को छोड़कर गुज़र चुकी है। बच्ची भी कुछ समय बाद गुज़र जाती है। अब वह निपट अकेला है। बिगुल ही उसकी ज़िंदगी है। वही उसका एकमात्र सहारा है। वह चाहता है कि उसकी मौत पर भी बिगुल बजाकर 'गार्ड ऑफ़ ऑनर' दिया जाए। दंगे के दौरान वह गुंडों से एक लड़की को बचाने में मारा जाता है। मरने के बाद उसकी इच्छा पूरी होती है। उसे बिगुल बजाकर 'गार्ड ऑफ़ ऑनर' दिया जाता है।

'कोंडवाड़ा' बशीर मियाँ उर्फ़ कोंडवाड़ा बाबू के लिए कोंडवाड़ा ही सब कुछ है। यह दुनिया भी उनके लिए एक कोंडवाड़ा ही है। वे घर में रहें या बाहर उन्हें कोंडवाड़े की चिंता लगी रहती है। घर में पत्नी उन्हें उलाहने देती रहती है। नगरपालिका में भ्रष्ट अकाउंटेंट गोयल बाबू उन्हें सताता रहता है। उनके सीधेपन का फायदा उठता रहता है। अंत में भैसों के कोंडवाड़े से ग़ायब हो जाने के कारण उन्हें मुअत्तिल कर दिया जाता है।

'भीतर-बाहर से बंद इतिहास' संग्रहालय के क्यूरेटर की कहानी है। नगरपालिका के संग्रहालय को सँभालना और देख-रेख करना उनका काम था। परिवार में वे अकेले ही बच जाते हैं। पत्नी गुज़र चुकी है और बेटी पति के साथ न्यूज़ीलैंड चली गई। वे संग्रहालय से इतने बँध गए कि ख़ुद भी इतिहास की वस्तु हो गए। कहानी के बारीक अवलोकन और विवरण मुग्ध करते हैं।

कहानी 'आज़ाद अटालेवाला' में एक ग़रीब मेहनतकश और ईमानदार अटाले वाले की मर्मान्तक पीड़ा है। पुलिस उस निरीह और बेक़सूर अटाले वाले पर चोरी का माल-ख़रीदने बेचने का इल्ज़ाम लगाकर बुरी तरह पीटती है। वह मारपीट से उतना आहत नहीं होता जितना झूठे इल्ज़ाम से। उसे भूखा-प्यासा थाने पर बिठा कर रखा जाता है, पीटा जाता है। पुलिस उसके ठेले को भी ज़ब्त कर लेती है जो उसकी रोज़ी-रोटी है। बेरहम पुलिस की आगे वह एकदम बेबस है। अंत में नैरेटर के सामने लाचार आज़ाद आटाले वाले का रोना विचलित कर देता है।

'अब इस तरह !' नैरेटर के बचपन के दोस्त सलीम के बूढ़े पिता रहमत खाँ की कहानी है जिन्हें अपनी बेटी नूरी का आधार कार्ड बनवाने के लिए बैंक में बार-बार चक्कर लगवाया जा रहा था। नैरेटर बैंककर्मी है जो उस छोटे शहर में एवजी पर आया हुआ है जहाँ उसका बचपन गुज़रा है। वह रहमत खाँ को पहचान जाता है। रहमत खाँ का बेटा सलीम नेरेटर का बचपन का साथी था। साँप के काट लेने से वह गुज़र चुका था। रहमत खाँ की यानी सलीम की बहन नूरी की शादी हुई थी। लेकिन उसका पति उसे छोड़कर दुबई चला गया। अब नूरी उन्हीं के पास है। उसकी दो बच्चियाँ हैं। वह सिलाई करके जैसे-तैसे गुज़र कर रही है। नगरपालिका ने अतिक्रमण बताकर मकान का अगला हिस्सा गिरा दिया गया है।

पहले उसी हिस्से में रहमत खाँ लुहारी का काम किया करते थे। अब बुढ़ापे और जगह न होने के कारण वह छूट गया है। अपनी पीड़ा वे नेरेटर को इन शब्दों में कहते हैं '...इधर हाल यह है कि दिल्ली से लेकर इस शहर के दयाल चौक तक आए दिन हम लोगों को पाकिस्तान भेज देने के फ़तवे सुनाई देते रहते हैं, आख़िर हम इंसान हैं। देख-सुनकर डर तो लगता है ! हम बूढ़े मियाँ-बीबी का तो ठीक, जो होना हो सो हो ! भले ही ताबूत में ज़िन्दा डाल पाकिस्तान भेज दें या समंदर में डुबो दें; फ़िक्र उस बेचारी की है। उसका क्या होगा ? आधार भी नहीं होगा तो बेचारी पता नहीं कहाँ धक्के खाती फिरेगी !'

'वसंत का उजाड़' कहानी ने संग्रह को शीर्षक दिया है। इसमें सचमुच वसंत का उजाड़ साकार कर दिया गया है। पाँच फरवरी वसंत पंचमी पर संगीत का एक छोटा-सा आयोजन है। पंडित रामप्रसाद शास्त्री का गायन है। एसडीएम साहब को भी औपचारिक आमंत्रण दिया गया है। कार्यक्रम में उनकी आने की संभावना नगण्य है। यह अनुमान नहीं लगा पाते कि एसडीएम साहब की गायन में या किसी कला में कोई रुचि होगी। किन्तु आश्चर्य कि वे आ जाते हैं। आयोजकों के लिए यह सुखद आश्चर्य है। उन्हें खेद है कि यदि आने की संभावना होती तो उन्हें मुख्य अतिथि बनाया जाता। यथोचित आदर दिया जाता। पंडित शास्त्री भी सामने जाजम पर बैठे एसडीएम साहब को देख अपने गायन में पूर्ण तन्मय होने की कोशिश करते हैं। अपने फ़न के जरिए वसंत को साकार करने में जुट जाते हैं। सोचते हैं कि पहचान बन जाने के बाद अपने बेटे की नौकरी के लिए उनसे निवेदन करेंगे। समाँ जमा हुआ है। साहब तल्लीनता से सुन रहे रहे हैं। लेकिन तभी अचानक साहब जाने के लिए उठते हैं। उन्हें विदा करने के लिए उनके पीछे लगभग आधे लोग भी उठ जाते हैं। शास्त्री जी की आवाज़ अभी भी हाल में गूँज रही थी लेकिन उनका स्वर उजड़ चुका था।

'लिपियों के तहखाने में' में नैरेटर के आजोबा मतलब नाना की छोटी-मोटी जीवनी है। वे नैरेटर के सगे नाना नहीं थे बल्कि नाना के भाई थे। उनका जीवन ऐसी लिपि की तरह था जिसे कोई पढ़ नहीं पाया। शादी उनकी हुई नहीं थी। अपनी बेतरतीब और उबड़-खाबड़ ज़िंदगी के बावजूद उन्होंने भाई और भाभी के न रहने अपनी इकलौती ज़िम्मेदारी बख़ूबी निभाई। वे अपनी भतीजी यानी नेरेटर की आई (माँ) की शादी कर गए थे। ज़िंदगी भर वे मोड़ी लिपि में एक गढ़ी के बारे में चुपचाप इतिहास और पुरातत्ववेत्ता की तरह लिखते रहे। इसके लिए वे घर से बार-बार अचानक

ग़ायब होते रहे। अपने अंत तक उन्होंने जो मोड़ी में लिखा था, वह किसी के द्वारा भी पढ़ा-समझा न जा सका और सूने मकान के जलने पर यूँ ही नष्ट हो गया। वे मोड़ी लिपि भी नेरेटर को नहीं सिखा पाए।

'आज़ादी का परसाद !' स्कूल के एक बूढ़े मेहनतकश चपरासी की जीवन-कथा है। वह अपनी बीमार पोती को लेकर आज़ादी के जुलूस में आया हुआ है। ऐसे जुलूसों में वह बचपन से ही जुड़ा रहा। उसे स्कूल में भी पढ़ाई के दौरान 15 अगस्त और 26 जनवरी में भी उसकी तैयारी से लेकर कार्यक्रम के होने तक साफ़-सफाई और उठा-धरी के काम में लगा दिया जाता था। जब सारा सामान समेटकर वह लौटता था तो उसे कुछ अधिक परसाद मिल जाता था जिसे बूढ़े की माँ आज़ादी का परसाद कहा करती थी। उसी स्कूल में चपरासी बनने के बाद भी वहाँ का काम वह समर्पित भाव से करता रहा था। रिटायर होने के बाद भी कभी-कभी स्कूल चला जाता और यूँ ही काम कर आता। बेटे को अच्छे-से स्कूल में डाला था। किन्तु उसे काम-चलाऊ नौकरी ही मिल पायी थी। ज़िंदगी भर वह मकान की मरम्मत नहीं करवा पाया था। उसकी तीसरी पीढ़ी यानी पोती भी बीमार थी जिसका वह या उसका बेटा ठीक से इलाज नहीं करवा पा रहा था। उसके लिए यह भी एक तरह का आज़ादी का प्रसाद ही था।

'उजाड़ के उस तरफ़' नगरपालिका के नामालूम सी ज़िंदगी जीते एक क्लर्क की कहानी है जो नेरेटर के पास अख़बार पढ़ने के लिए आता है। अख़बार में उसे केवल अपना भविष्यफल देखना होता था। वैसे उसका कोई भविष्य तो था नहीं। पिता को गठिया की बीमारी थी। बहुत इलाज करवाया गया। बहुत सेवा की गई। किन्तु नहीं बचे। देर से एक परित्यक्ता से शादी हुई। वह पत्नी भी एक अंधी लड़की को छोड़कर गुज़र गई। अब वे उस बच्ची का खाना वगैरह बनाकर और तमाम हिदायतें देकर अपने ऑफिस जाने लगे। हालाँकि उसकी चिंता बनी रहती। एक दिन वही लड़की भी कहीं ग़ायब हो जाती है। ख़ूब तलाशने पर भी नहीं मिलती। कहानी उदास कर देती है।

'सूखते हुए दरख़्त' नैरेटर के मामा की कहानी है जो दरअसल उसके सगे मामा नहीं हैं। माँ का कोई भाई नहीं था। मामा की कोई बहन नहीं थी। मामा माँ से तेरह साल बड़े थे। बस कंडक्टर होने के कारण मामा की उनकी शादी नहीं हो पायी थी। उनके रहने और खाने-पीने का कोई ठिकाना नहीं था। उनके परिवार में सिर्फ नैरेटर की माँ ही थी जिसे वे छोटी बहन से अधिक मानते थे और नैरेटर को अपना भानजा। कहानी में नेरेटर ने मामा के जीवन के एकाकीपन और जद्दोज़हद को पूरी शिद्दत से उतारा है। उनके जीवन का उत्तरार्ध सूखते हुए दरख़्त जैसा हो गया था।

प्रकाश कान्त पात्रों को वैसे ही चित्रित करते हैं जैसे कि वे हैं। उनसे झूठी क्रांति नहीं करवाते। इससे उनके पात्र विश्वसनीय बने रहते हैं। ये कहानियाँ आसपास के हारे-थके, बूढ़े, अकेले पड़ गए, छूटे हुए, साम्प्रदायिकता के शिकार, पीटे और सताए हुए पात्रों का मौन-मातमी जुलूस है जो पाठक को उदासी और आक्रोश से भर देता है। कहानियाँ ज़ेहन में उतरकर उसे धीरे-धीरे कुतरने लगती है। वे सतह पर गहराई नहीं ढूँढ़ते बल्कि पूरी गहराई में उतरते हैं। उसकी तह तक जाते हैं। पात्र और परिवेश की एक-एक चीज़ पर उनकी पैनी नज़र रहती है। हर चीज़ का तफ़सील से विवरण देते हैं। सजीव विवरणों से निर्जीव चीज़ें भी बोलने लगती हैं। वे पात्र की पूरी मानसिकता और बेचारगी को बख़ूबी उभारते हैं। उनका सूक्ष्म अवलोकन कमाल का है। उनकी बोलचाल की भाषा में एक बहाव है जिसमें पाठक बहता चला जाता है। कभी-कभी तो किसी पैरे का एक शब्द ही एक वाक्य से अधिक प्रभाव पैदा कर देता है। मुझे संग्रह की हर कहानी का एक-एक वाक्य पठनीय लगा। भाषा की सादगी में कितना-कुछ कहा गया है, पढ़कर अचरज होता है। बेशक संग्रह की कुल तेरह कहानियों में आम आदमी की दुश्वारियों का ईमानदार अंकन हुआ है। आवरण आकर्षक और शीर्षक के अनुरूप है।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2022

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा

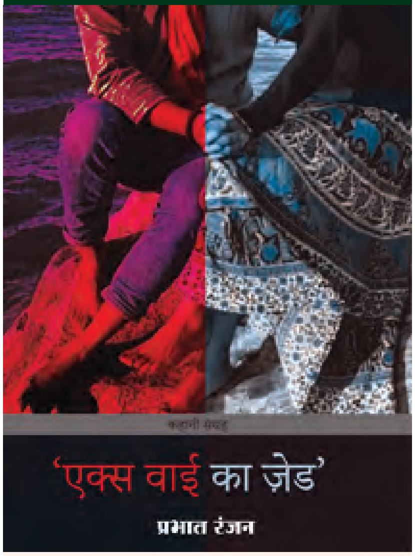

(कहानी संग्रह)

एक्स वाई का ज़ेड

समीक्षक : महेश कुमार

लेखक : प्रभात रंजन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

महेश कुमार
शोधार्थी दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय
राज्य पथ सं-7, गया-पंचानपुर रोड, गाँव-करहरा पो. - फतेहपुर, थाना- टेकारी, जिला- गया (बिहार), पिन- 824236

यह कहानी संग्रह शिवना प्रकाशन से 2022 में प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल ग्यारह कहानियाँ हैं। इन कहानियों में नोस्टाल्जिया, रिश्तों, व्यक्ति और लोकतंत्र के निरर्थकता बोध तथा सोशल मीडिया के व्यक्तिगत रिश्तों पर होने वाले प्रभाव को दर्ज किया गया है।

हाल में आए हिंदी कहानी संग्रहों में शायद यह अकेला संग्रह है जो तकनीक और सोशल मीडिया को हिंदी कहानी के केंद्र में लाया है। 1960 के दशक के बाद हिंदी कहानी में अकेलापन, अवसाद, रिश्तों का बिखरना और व्यक्ति के भावनात्मक द्वंद्व को दर्ज किया जाने लगा। इसका मुख्य कारण शहरीकरण, औद्योगिक विकास और व्यक्तिगत स्पेस को माना गया। मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' उपर्युक्त प्रवृत्तियों की केंद्रीय कहानी है। 21वीं सदी का समय और जटिल है। अब के पूँजीवाद ने तकनीक की मदद से व्यक्ति के व्यक्तिगत अवकाश को भी मुनाफ़े में बदल दिया है। सोशल मीडिया ने हमें अभिव्यक्ति और लोगों से जुड़ने का बहुत बड़ा अवसर दिया। लेकिन, इसने हमारी भावनाओं को भी अनियंत्रित किया है जिसका असर हमारे निजी रिश्तों और मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। इसने रिश्तों में असुरक्षा, तनाव और ग़लतफ़हमी को बढ़ाया है। भारतीय समाज के पितृसत्तात्मक व्यवहार, महत्त्वाकांक्षी नज़रिये और राज्य के जनविरोधी रवैये को कई बार सोशल मीडिया और मजबूत करता हुआ दिखाई देता है। यह कहानी संग्रह इन जटिलताओं का क़िस्सागोई है जिसमें कहीं हास्य है, कहीं नोंक-झोंक और कहीं संवेदनात्मक तनाव।

'समर में डनहिल', 'कभी यूँ भी आ मेरी आँखों में' और 'शार्ट फ़िल्म' नॉस्टैल्जिक प्रेम कहानियाँ हैं। इन कहानियों के शीर्षक फ़िल्मी लगते हैं और कुछ अर्थों में हैं भी। 90 के दशक की प्रेम कहानियों के संस्मरणात्मक विवरण लगने वाली इन प्रेम कहानियों में दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं। पहला, हिंदी गीत-गज़ल की गहरी उपस्थिति और विदेशी गीतों की कॉलेज परिसर में दस्तक। इन प्रेम कहानियों के कहने में लेखक उस समय के दिल्ली स्थित महाविद्यालयों के पूरे माहौल में ले जाता है। दूसरा, इन प्रेम कहानियों का अंत बेहतर कॅरियर, नौकरी और स्वाभाविक मजबूरियों के तहत होता है। यह स्वाभाविक मजबूरी इतनी स्वाभाविक है कि इसमें शिकायत दर्ज करने का मौका तक नहीं है। एक बार बिछड़े तो पता नहीं कब मिलेंगे और जब मिलना होता था तब तक जिंदगी किसी और पड़ाव पर आ गयी होती थी। कॉलेज कैंपस की प्रेम कहानियाँ जिस तरह अचानक ख़त्म हो जाया करती थीं, ठीक इसी तरह ये कहानियाँ भी अपनी बात कहते-कहते अचानक रुक जाती हैं और पाठक वहीं ठिठककर रह जाता है। दरअसल इन कहानियों में 'समय के चक्रीय और रेखिक' दोनों तरह के सिद्धांतों का अप्रत्यक्ष निषेध है। व्यक्ति एक साथ 1990 के दशक और 21वीं सदी के दूसरे दशक में लगातार आवाजाही कर रहा है। कुछ व्यक्ति इतने नॉस्टैल्जिक होते हैं कि वे रहते वर्तमान में हैं पर उनका समय अतीत में ही कहीं

रुका रहता है। इन प्रेम कहानियों में समय का ऐसा ठहराव तो नहीं है पर 'अतीत' यहाँ अनिवार्य हिस्सा है। बिना नॉस्टाल्जिया के व्यक्ति जी ही नहीं सकता।

'धूप की गंध मृत्यु की गंध होती है' यह वाक्य 'धूप की पवित्रता' को 'अवसाद और टूटन' का प्रतीक बना देता है। भाषा का यह प्रयोग लेखक पॉलिमिक्स की तरह कर रहा है। जीवन की निरर्थकता की बेजोड़ कहानी है यह। बचपन की स्मृतियों, अनुभव, स्वाद और गंध हमारे जीवन को आजीवन प्रभावित करते हैं। हमारे समय की यांत्रिकता इसे और इंटेंस बना रही है। यह यांत्रिकता रिश्ते की जीवंतता की उम्र घटाकर इतना कम कर दे रही है कि कब कौन किससे ऊब जाए इसका अंदाज़ा हो पाना मुश्किल है। जीवंतता का अंत मृत्यु ही तो है। आधुनिक मेट्रोपोलिस दिनचर्या में ही 'धूप की गंध' व्याप्त है जिसकी गंध एक जीवन से दूसरे जीवन तक फैलती हुई उसे 'मृत्यु की गंध' में तब्दील करते जा रही है।

एकरसता हमारे जीवन का अब स्थायी भाव है। यह आता है अति महत्त्वाकांक्षी होने से। हम जिस समय में हैं वहाँ हमारा प्रतिस्पर्धी होना चुनाव से ज्यादा मजबूरी का मामला हो गया है। ख़ुद की पहचान बनाना हर मनुष्य के स्वभाव में होता है। लेकिन, इस पहचान को स्थापित करने में जो जल्दबाज़ी हम करते हैं और बिना ठहराव के मैगीनुमा निर्णय लेते चले जाते हैं, वह हमें कई तरह से तोड़ देता है। इतना होने के बाद अगर वह पहचान बन भी गई, तो उसकी सार्थकता का आनंद हमें नहीं हो पाता। 'शार्ट' फ़िल्म इसी 'सेल्फ़ डाउट' और 'सेल्फ़ एस्टीम' के बीच के यात्रा की कहानी है।

तकनीक ने व्यक्तिगत रिश्तों में विश्वास के विचार को ख़ूब प्रभावित किया है। 'वो हमसफ़र था मगर उससे हमनवाई न थी' और 'एक्स वाई का ज़ेड' इसको ठीक चिह्नित करती है। शहरी जीवन की दिनचर्या में आपसी रिश्तों में ज़िंदादिली वैसे कुछ सालों में ख़त्म हो जाती है। भारतीय समाज में जिस तरह दो लोग के वैवाहिक रिश्ते बनते हैं उसमें आपसी सहमति और वैचारिक समानता तो लगभग गौण हैं। पितृसत्ता और आधुनिक आवश्यकताओं के दवाब और अन्य रूढ़ियों में बँधा जीवन और घुटन पैदा करता है। ऐसे में दो लोग दो तरह की ज़िंदगी जीते हुए एक दूसरे पर शक करते हुए ग़लतफ़हमी की लंबी सूची बनाते रहते हैं। एक दूसरे के सोशल मीडिया हैक करना, पासवर्ड रखना, प्रोफाइल चेक करना और फिर झगड़ते हुए रिश्ते ख़त्म करना, मतलब मतलब आभासी दुनिया वास्तविक दुनिया को तबाह कर देती है। यहाँ व्यक्तिगत समझदारी से ही रिश्ते बचा सकते हैं।

दो कहानियाँ यहाँ गाँव के छौंक के साथ हैं। 'पत्र लेखक, साहित्य और खिड़की' तथा 'किस्सा छकौरी पहलवान और चौतरा हनुमान का'। पहली कहानी आप चिट्ठी अर्थात, स्मृतियों और लिखित दस्तावेज़ के महत्त्व की बात तो करता है साथ में 'विचार और सत्ता' के संघर्ष को भी रखता है। कमलेश जो बदमाश समझा जाता है वह लाइब्रेरी तोड़कर बन रहे थाने से किताबें चुराकर लोगों में बाँटता है। 'गणमान्य' लोग थाना बनवाने का समर्थन करते हैं। कहानी का पूरा व्यंग्य इसी 'गणमान्य' की ध्वनि में निहित है, ठीक उसी तरह जैसे 'सवा सेर गेहूँ' में विप्र 'जी' में निहित है।

ओम साईं सीरियल जब आया तब हर छोटे बड़े शहरों में साईं बाबा का मंदिर बनने लगा और भारी मात्रा में हर गुरुवार को भीड़ जुटने लगी। इसी तरह शनि देव पर सीरियल बना और बिहार के गया जैसे शहर से लेकर मेट्रोपोलिटन तक शनिदेव अपने प्रकोप और कष्ट निवारण के साथ जनता के दिलो-दिमाग़ पर छा गए। हर शनिवार मंदिर सरसोंमय होने लगा। कहने का मतलब है ईश्वर को भी प्रचार अर्थात समाज में सफल भक्त की ज़रूरत पड़ती है। याद कीजिए पटना हनुमान मंदिर की भव्यता के क़िस्से। एसपी कुणाल ने उस मंदिर में मन्नत माँगी और मनोकामना पूर्ण होने पर उसे भव्य बनाया। यह भव्यता बढ़ता ही गई और आज तक बरकरार है। छकौरी पहलवान और चौतरा हनुमान का मामला भी यही है। भक्त के अवसान के साथ ही भगवान के यश का भी अवसान हुआ। मतलब अब कहीं और कोई दूसरा भक्त (प्रचारतंत्र) तैयार हो रहा है और कोई नए भगवान् (सत्ता) केंद्र में आएगी। यह बाज़ारवाद पर लिखी गयी महत्त्वपूर्ण कहानी है।

राजनीतिक परिस्थितियों पर दो कहानियाँ हैं और दोनों लोक और तंत्र के बीच के अंतर्विरोध और संघर्ष को साहित्यिक मापदंड पर परखते हैं। पहली कहानी है 'देश की बात और देस का क़िस्सा'। यहाँ 'देश' राष्ट्र-राज्य के रूप में बुर्जुआ लोकतंत्र के अर्थ में है तो 'देस' सर्वहारा का ग्रामीण लोक समाज है। दिल्ली का वह बुर्जुआ 'देश' इतना प्रभावशाली है कि जो उसे आज़ाद कराने जाता है वही उसका मालिक बन बैठता है। लोक(देस) के 'सबोर्डिनेशन' की यह एक ज़रूरी कहानी है जिसे बार-बार पढ़ना चाहिए।

दूसरी कहानी है 'अनुवाद की ग़लती'। इस संग्रह की यह सबसे मज़बूत कहानी है। ऐसा कहने के पीछे का कारण हैं, भाषा के एक शब्द के बदलने से 'रूप' और 'अंतर्वस्तु' पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे राज्य सत्ता कैसे इस्तेमाल करती है उसको क्रूर और त्रासद व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत करती है यह कहानी। ओमप्रकाश उर्फ विभूति जो पत्रकार है उसने 'मेय'(may) का अनुवाद 'मई' कर दिया और वह एक आम नागरिक से नक्सली हो गया। नेपाल से उसके संबंध जोड़ दिए गए,चीन से फंडिंग के सबूत भी मिलने लगे, नक्सलवादी साहित्य भी मिले और नेपाल में भव्य मकान भी मिल गए। यहाँ एक वाक्य से पूरे राज्य सत्ता की अंतर्वस्तु बदल गयी। पत्रकार मारा गया। आज देश के टीवी चैनलों के शीर्षक और नेताओं के बयानों के बाद जिस तरह देश में दंगा की स्थिति बनी हुई है उससे तो लगता है कि देश ही अब 'फॉर्म और कंटेंट' का युद्धस्थल है। कहानीकार ने इस क्रूर राजनीतिक त्रासद कथा में 'रूप और अंतर्वस्तु' को साहित्य के परिधि से बाहर हिंसक राजनीतिक युद्धस्थल में लाकर देख पा रहे हैं इसलिए यह कहानी अद्‌भुत है।

000

पुस्तक समीक्षा

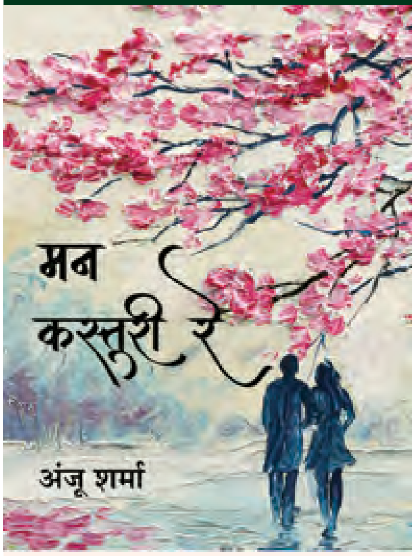

(उपन्यास)

मन कस्तूरी रे

समीक्षक : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

लेखक : अंजू शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश-1,
नई दिल्ली- 110048,
मोबाइल- 9868182835

'मन कस्तूरी रे' अंजू शर्मा का नया उपन्यास है। इससे पहले भी वे कहानी, कविता और उपन्यास लेखन में अपनी पहचान बना चुकी हैं। यह उपन्यास आज की युवा पीढ़ी को लेकर रचा गया है, जहाँ महानगरों में नौकरी करते हुए अपने मनपसंद मित्र के साथ 'लिव इन' में रहना। ज़िंदगी को भरपूर तरीके से जीना, जिसे अक्सर आज की भाषा में 'इन्जॉय' करना कहा जाता है। इस छोटे से उपन्यास में लेखिका ने दो पीढ़ियों का समावेश किया। हर पीढ़ी का अपना तौर-तरीका है।

कथानक उलझा हुआ नहीं, साफ स्पष्ट है, बस उपन्यास की केंद्रीय पात्र स्वस्ति कुछ मानसिक उलझनों में उलझी हुई है। पच्चीस वर्ष की युवा आयु में वह कुछ अधिक गंभीर प्रवृत्ति की है। इसका कारण यह है कि उसकी माँ वृंदा ने उसे अकेले ही पाल-पोस कर बड़ा नहीं किया, स्वयं भी जीवन की लगातार कठिनाइयों से जूझते हुए प्रिंसिपल के उच्च पद पर पहुँची। दो वर्ष के विवाहित जीवन में एक्सीडेंट में हुई पति की असमय मृत्यु और मायके-सुसराल में कोई भी साथ व सहायता न देने पर भी उस स्त्री ने हिम्मत नहीं हारी। इस पुरुष प्रधान समाज व दिल्ली जैसे महानगर में अपनी मददगार सहेली सुनंदा के साथ इस मुकाम पर पहुँची। उसी ने बचपन में स्वस्ति का अकेलापन दूर करने के लिए उसे किताबों से जोड़ दिया। ये किताबें ही स्वस्ति का सहारा बन गई और इनके प्रभाव अधीन वह स्वभाव से भी धीर-गंभीर हो गई। उसे अपने हमउम्र बालसखा कार्तिक का खिलदंड़ापन भी कई बार उसे रास नहीं आता, जबकि कार्तिक उससे प्रेम करता है। अपने स्वभाव और किताबों से जुड़े होने पर अपने से बीस बरस बड़े प्रो. शेखर के प्रति आकर्षित हो गई, जो बेहद गंभीर प्रवृत्ति के विद्वान पुरुष थे।

इस त्रिकोण में उलझी केवल स्वस्ति हुई है क्योंकि वह जिस स्थान पर है, वहाँ से वह अपनी गंभीरता के कारण कार्तिक से दस बरस आगे और शेखर से दस बरस पीछे खड़ी है। जहाँ कार्तिक के लिए उसकी खुशी से बढ़ कर कुछ नहीं, वहाँ वह शेखर से उसका साथ चाहती है। हालाँकि उसके इस रिश्ते को लेकर माँ बिल्कुल भी खुश नहीं। वह आने-बहाने उसे कई बार समझा चुकी है, ऐसे रिश्ते लंबे समय तक नहीं चल पाते परन्तु स्वस्ति अभी स्वप्नलोक में विचरण करते हुए, कार्तिक को कई बार झिड़क देती है और माँ से नाराज़गी मोल ले चुकी है। ऐसे में जब स्वस्ति ने अपनी प्रिय सखी रोशेल से उसके लिव इन के प्रेम-प्रसंग सुने तो कहीं न कहीं वह भी मानने लगी कि शेखर के साथ उसका भी ऐसा ही संबंध हो, जहाँ वे दोनों तन-मन से एक हो जाएँ। कई बार एकांत में ऐसी स्थिति आने पर जब वह शेखर के कंधे पर अपना सिर टिका देती तो शेखर उसका गाल प्यार से थपथपा देता या बढ़ कर उसका माथा चूम लेता। स्वस्ति इस में भी खुश थी, संतुष्ट थी।

रोशेल ने उसे अपने अनुभव से समझाया कि देह की भी एक भाषा है, चाह है, जो प्राकृतिक है। यह चाह किताबों पर चर्चा कर लेने से पूरी नहीं हो सकती। हालाँकि स्वस्ति के शेखर के साथ संबंध की बात जानते हुए भी कार्तिक ने अभी भी हिम्मत नहीं हारी थी। उसकी माँ सुनंदा को भी लगता था, ये दोनों ही एक-दूसरे के लिए बने हैं। देर-सवेर इनका मेल होगा ही। यही बात उसने वृंदा को भी समझाई कि वह चिंता न करें और सब कुछ वक्त पर छोड़ दे।

लेखिका ने उपन्यास द्वारा सरलता से यह बात बताने की कोशिश की है कि स्वप्न और वास्तविकता में अंतर होता है। जीवन केवल फिलासफी, गंभीरता और संयम ही नहीं, प्राकृतिक तौर पर हर शरीर की दैहिक आवश्यकताएँ होती हैं, जिनकी पूर्ति होना आवश्यक है। इनके बिना भी मनुष्य अधूरा है। जीवन के यथार्थ को और दूर तक इसके परिणामों जैसी बातें अक्सर समझाने पर समझने वाले के पल्ले नहीं पड़ती। ऐसा ही स्वस्ति के साथ हुआ। वृंदा, रोशेल और कार्तिक के समझाने पर भी जो उसे समझ में नहीं आ रही थी, वही बात शेखर के व्यवहार व बातों से एकदम समझ में आ गई।

शेखर उम्र के जिस पड़ाव पर खड़ा है, वहाँ उसकी प्राथमिकताएँ बदल चुकी है। अब उसका सारा ध्यान अपने साहित्य-सृजन और उसकी प्राप्ति को ग्रहण करने में लगा है। अपनी

विद्वता और गंभीरता के कारण भी उसका व्यवहार उस मुताबिक उचित प्रतीत होता है। अपनी उम्र के लिहाज से वह युवाओं-सा बचकानापन व खिलदंडापन नहीं दिखाता। परन्तु यह भी सच है कि उसके जीवन का केंद्र स्वस्ति कहीं भी नहीं है। स्वस्ति उसका साथ चाहती है, शेखर नहीं। यह बात समझ में आते ही स्वस्ति ने शेखर से दूरी बना ली।

मन के इस उलझाव का असर तन पर हुआ और तेज़ बुखार में कार्तिक और सुनंदा ने उसकी जिस प्रकार से देखभाल की, वह समझ गई कि कार्तिक उसका सच्चा मित्र ही नहीं, ऐसा साथी भी है, जिसके जीवन में वह कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। उम्र के हर पड़ाव पर अपने हमउम्र की ज़रूरत रहती है, युवावस्था में और भी अधिक, जहाँ दो युवा शरीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से एक-दूसरे के स्तर पर आपस में जुड़ सकते हैं।

यदि स्वस्ति के साथ इस बात को लेकर माँ व कार्तिक द्वारा ज़बरदस्ती की जाती तो स्वस्ति सारी उम्र कार्तिक के साथ के रिश्ते को स्वीकार न कर पाती। उसे यही महसूस होता कि उसके साथ माँ या कार्तिक द्वारा ज़्यादती की गई है परन्तु जब उसके अपने अनुभव ने उसे यह दिखाया कि शेखर के जीवन में उसकी कोई अहमियत नहीं, तब उसने स्वयं उससे किनारा कर लिया और खुले दिल से कार्तिक को स्वीकार कर लिया। उसे समझ में आ गया कि कार्तिक जैसा दोस्त और जीवनसाथी किस्मत वालों को ही मिलते हैं, जो अपने से बढ़ कर अपने प्यार को चाहते हैं।

उपन्यास बहुत ही सरल, स्पष्ट और पारंपरिक है। इसमें वक्ता के तौर पर लेखिका की भूमिका अधिक है और पात्रों की कम है। बहुत सारे लेखकों व उनके प्रसिद्ध उद्धरणों द्वारा लेखिका ने मनस्थिति को प्रकट किया है। मन और देह की भाषा अलग- अलग है....परन्तु मन को समझना-समझाना बहुत मुश्किल होता है, ठोकर लगने पर जो बात समझ में आती है, वह लाख समझाने पर भी समझ नहीं आती है...यह एक सच्चाई है।

000

पुस्तक समीक्षा

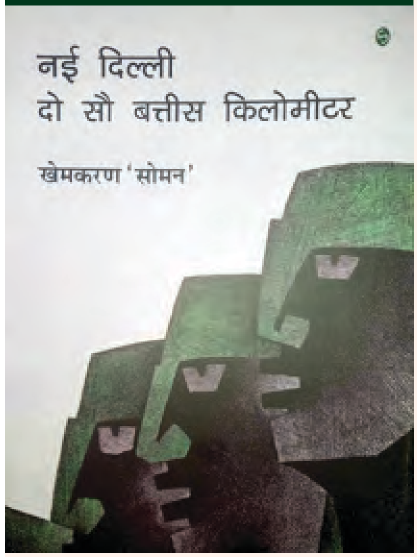

(कविता संग्रह)

नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर

समीक्षक : डॉ. रमाकांत शर्मा

लेखक : खेमकरण 'सोमन'

प्रकाशक : समय साक्ष्य, देहरादून

युवा कवि खेमकरण 'सोमन' का हाल ही में कविता का एकदम नया संग्रह 'नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर' नाम से प्रकाशित हुआ है। जब मैं इस संग्रह की तमाम कविताओं से गुज़रा तो पाया कि ये कविताएँ समकालीन कविता के एक जस उबाऊ मुहावरे के लोक में ताज़ा हवा के झोंके की मानिंद है।

कवि खेमकरण 'सोमन' रूद्रपुर, उत्तराखण्ड से आते हैं और अपने साथ लाते हैं दिल-दिमाग़ को झंकृत कर देने वाली एक से बढ़ कर कविता और उसका रचाव। जब मैं 'कृति ओर' और 'प्रतिश्रुति' जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादक था उस समय भी खेमकरण 'सोमन' की कविताएँ प्रकशित करने में मुझे बेशक, संतोष का विशेष अनुभव हुआ करता था।

'नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर' संग्रह में शीर्षक कविता के अलावा ८३ कविताएँ संगृहीत हैं। कवि यह बताना चाहता है कि उत्तराखण्ड के लोक-जीवन से वहाँ के पेड़ पहाड़, नदियाँ आदि गहरे स्तर पर जुड़े हैं, इसलिए यहाँ कि प्रकृति अपने जीवंत रूप में 'कृतज्ञता की तख्ती लेकर' अपने मनोभावों को व्यक्त करती है- 'पेड़ खड़े हैं कृतज्ञ भाव से... / नदी बही जा रही है कृतज्ञता से... / पहाड़ भी पढ़ रहे हैं कृतज्ञता के पाठ।' और स्वयं कवि कृतज्ञ है इन सब के प्रति। यहाँ प्रकृति और लोक जीवन का परस्पर कृतज्ञ होने का भाव मन को छू लेता है।

इस संग्रह की एक महत्त्वपूर्ण कविता है -'पिताजी बहुत हँसते रहते हैं" यह कविता हमारी सुप्त चेतना पर गहरा असर करती है और लोगों के काइँयेपन पर तीखा प्रहार करती है- 'कहते हैं बेटे / इधर हम खुश हैं / उधर वृद्धाश्रम में पिताजी / पिताजी बहुत हँसते रहते हैं'

इधर दूसरी तरफ संग्रह की शीर्षक कविता में सड़क किनारे खड़ा पत्थर बोल रहा था - नई दिल्ली दो सौ छत्तीस किलोमीटर। / दूसरा, तीसरा और चौथा पत्थर / एक एक किलोमीटर दूरी कम बता रहे थे। / मुद्दे की बात यह है कि- / पत्थर जानते हैं / जिस दिन वे निकाल लेंगे मिट्टी से अपने पाँव / वे गिर जाएँगें हमेशा के लिए। इस संग्रह की अंतिम कविता 'चौराहा और पुस्तकालय' है। संकेत में ही यह कविता कहती है कि 'आदमी चौराहे पर खड़ा का खड़ा ही रह जाता है, लेकिन पुस्तकालय में खड़ा आदमी / खड़े- खड़े ही पहुँच गया देश-दुनिया के कोने-कोने में। फिर भी देश में सब से अधिक हैं चौराहे ही। ' काव्य भाषा, शिल्प और संवेदना की दृष्टि से खेमकरण 'सोमन' की कविताएँ अनूठी और अन्य कवियों से सर्वथा भिन्न है।

000

डॉ. रमाकांत शर्मा, फ्लैट नं.339, टाउन जिन्निया, गौर सौंदर्यम सोसाइटी, सेक्टर- 4, टेकजोन, अपोजिट गौर सिटी मॉल, नोएडा- 201306, मोबाइल- 94144 10367

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

कोई ख़ुशबू उदास करती है

समीक्षक : सुषमा मुनीन्द्र

लेखक : नीलिमा शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

सुषमा मुनीन्द्र
द्वारा श्री एम. के. मिश्र, एडवोकेट, जीवन विहार अपार्टमेन्ट्स, द्वितीय तल, फ्लैट नं. 7, महेश्वरी स्वीट्स के पीछे, रीवा रोड, सतना (म.प्र.)-485001
मोबाइल- 8269895950

कोई ख़ुशबू उदास करती है' साहित्य जगत् में अपनी जगह बना रही नीलिमा शर्मा का पहला कथा संग्रह है। पत्र – पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ पढ़ती रही हूँ। इस संग्रह की कहानियों को एक साथ निरंतरता में पढ़ते हुये लेखिका के रचना कर्म को एक हद तक समग्रता में समझने का अवसर मिला। टटकापन या अनोखापन लाने के मोह या दबाव से मुक्त एकदम सहज भाव में पूरे मन से कहानियाँ लिखी गई हैं। कहानियों में ट्राइड एण्ड टेस्टेड फार्म्यूला या फैंटेसी बिल्कुल नहीं है बल्कि जन, जीवन, जगत्, जागरूकता पर ज़ोर देते हुये कहानी प्रबल प्रवाह की तरह अपना मार्ग ढूँढ़ते हुये ऐसे अंत पर पहुँचती है जहाँ पारिवारिक – सामाजिक संरचना को मज़बूती देने वाला एक निर्णय प्रतीक्षा में है।

संग्रह में ग्यारह कहानियाँ हैं। कुछ कहानियाँ ऐसी परिपक्व और व्यवस्थित हैं कि लगता नहीं नीलिमा शर्मा का यह पहला कथा संग्रह है। कहानी 'टुकड़ा-टुकड़ा ज़िंदगी' को ही लें। कोरोना काल के दु:ख, पीड़ा, अभाव, असहायता, भ्रष्टाचार पर कई कहानियाँ पढ़ने को मिलीं पर यह कहानी नितांत अलग भाव की है। उर्वशी जब एक सप्ताह दुबई में रह कर भारत लौटी लॉक डाउन लग चुका था। उसे चौदह दिन आइसोलेशन में रखने के लिये एयर पोर्ट से ही क्वारेन्टीन सेंटर ले जाया गया। इधर मेड नसरीन खाली घर में अकेले वक्त कैसे बितायेगी जैसी चिंता न कर अपनी लम्बित पड़ी इच्छाओं को पूरा करते हुये महाराजा स्टाइल में रहने लगती है। उर्वशी के सुंदर परिधान पहनते, कीमती बर्तनों में पौष्टिक नाश्ता, खाना खाते, संगीत पर थिरकते हुये चौदह दिन सम्पूर्णता में बिताती है। होटल के कमरे में रह रही उर्वशी उसकी गतिविधियों को घर

के वाई फाई से जुड़े कैमरे से देखते हुये क्रोधित नहीं होती बल्कि 'इन मुश्किल अकेले दिनों में मैंने अहसास किया कि ये महँगे कपड़े, पैसे किसी काम के नहीं हैं.... दुनिया में अपनों का होना सबसे ज़रूरी है (पृष्ठ संख्या 25)।' जैसे भगिनीवाद की ज़रूरत का बोध करती है। क्वारेन्टीन पूरा कर घर लौटी उर्वशी नसरीन को अपने वस्त्र आभार स्वरूप देती है। यह भगिनीवाद का भाव कई स्त्री पात्रों में देखने को मिलता है। जैसे कहानी 'मायका' की निशा उसके पास रहने आई विवाहित ननद रेखा, जो पति प्रताड़ना से जूझ रही है से कहती है जब तक चाहे रहे, यह घर जितना सुनील (निशा का पति) का है उतना ही रेखा का भी है। जैसे 'कोई ख़ुशबू उदास करती है, की रेनू अपने पति शेखर की डायरी से जान लेती है शेखर का फर्स्ट लव इशिता है पर संयोगवश मिली इशिता से डाह या प्रतिद्वंद्विता नहीं मैत्रीपूर्ण व्यवहार करती है। 'कोई रिश्ता न होगा' की सुमन की पहली पुत्री को सास, पति किसी तरह से स्वीकार कर लेते हैं पर दूसरी बार जाँच कराते हुये कन्या भ्रूण को ख़त्म करा देते हैं। व्याथित सुमन ऐसा कोई उपाय चाहती है उसकी कोख़ बंजर हो जाए ताकि सास और पति की पुत्रेष्णा पर तो विराम लगे ही, कन्या भ्रूण का ऐसा शापित अंत न हो। भगिनीवाद के लिये कहानियों में स्त्री विमर्श नहीं गढ़ा गया है बल्कि कहानी में कड़ियाँ इस तरह जुड़ती जाती हैं कि स्त्री सशक्तीकरण का संकल्प मज़बूत होता जान पड़ता है।

इत्ती सी खुशी, कोई ख़ुशबू उदास करती है, आख़िर तुम हो कौन ?, उधार प्रेम की कैंची है आदि प्रेम कहानियाँ हैं जिनमें 80-90 के दशक के प्रेम के उस स्वरूप का पता मिलता है जब प्रेम अधिकतर अधूरा रह जाता था। प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे का भयादोहन न कर अधूरे छूट गए प्रेम के बोध को पूरे आदर से अपने भीतर जीवित रखते थे। इसे आजकल प्लेटोनिक लव कहते हैं। 'इत्ती सी खुशी' की गृहस्थिन मीनू किसी मौके पर अपने पुराने आकर्षण सुधांशु से बरसों बाद हुई छोटी सी मुलाकात से ऐसी ऊर्जा पा लेती है कि उसके स्वभाव, विचार, कार्य व्यवहार में आ गया ठहराव और सुस्ति, गतिशीलता और स्फूर्ति में बदल जाता है। 'कोई ख़ुश्बू उदास करती है' की इशिता के लिये यह प्राण वायु की तरह है कि वह शेखर की स्मृति से अलोप नहीं हुई है। 'उधार प्रेम की कैंची है' के शीरी और फ़हीम के लिये प्रेम वह अनमोल रत्न है जिसे पहना नहीं जा सका पर दिल के प्रकोष्ठों में सहेज कर रखा गया है। इन कहानियों के पात्र प्रेम के अहसास को समझते हैं साथ ही दाम्पत्य की गम्भीरता और महत्ता को समझते हैं। सच कहें तो दाम्पत्य अपने आप में जटिल प्रमेय की तरह है। बचपन में तितली की तरह उड़ने, चिड़िया की तरह फुदकने वाली लड़कियाँ विवाह के बाद 'मीनू को अपनी ज़िंदगी शतरंज की बिसात लगने लगी थी। जहाँ का काला-सफेद मोहरा, घोड़ा, हाथी, रानी वही थी। जब जिसे जिस तरह की ज़रूरत होती उसे उतने कदम चला दिया जाता था (कहानी इत्ती सी खुशी)।' मीनू की तरह कोष्टक में सिमट जाती हैं और 'आम भारतीय परिवारों में एक नारी कितना भी कर ले पर उसकी कोई कदर नहीं होती (कहानी – मायका)।' जैसे अवमूल्यन से गुज़रते हुये उदासीनता की ओर बढ़ जाती हैं। अधिकतर पति, पत्नी की अरुचि और बेरुख़ी को नहीं समझना चाहते लेकिन नीलिमा सकारात्मक भाव पर ज़ोर देती हैं इसलिये मीनू के पति गुप्ता जी संबंधों में पुलक और प्रसन्नता भरने का प्रयास करते हैं। 'अंतिम यात्रा और अंतर्यात्रा' की शारदा का पति शारदा की मृत्यु पर उसके प्रति किये गए अपने विद्रूप व्यवहार का पश्चाताप करता है। ये कहानियाँ संदेश देती हैं मनुष्य जीवन बार-बार नहीं मिलता अत: संबंधों में संतुलन बनाते हुए जीवन को व्यवस्थित रखना चाहिए वरना ख़ता करने वालों के साथ उन्हें भी दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं जिन्होंने ख़ता नहीं की है। जैसे 'लमहों ने ख़ता की' में सरोज और उसके जेठ मनोज के अवैध संबंध के कारण सरोज की बेटी व मनोज आत्म हत्या कर लेते हैं। जैसे- 'मन का कोना' की सुर जिसे उसके छोटे भाई पर पूर्णत: केन्द्रित माता-पिता उपेक्षित – तिरस्कृत करते हैं, विवाह न करने का फैसला करती है कि उसे अपने जीवन में एक और लड़का (पति) नहीं चाहिए। जैसे – 'उत्सव' की शीना के साथ खजूर अंकल कुत्साकरण का प्रयास करते हैं लेकिन शीना के परिजन अंकल पर इतना विश्वास करते हैं कि शीना की अड़चन कोई सुनना-समझना नहीं चाहता। परिणामत: शीना दाम्पत्य जीवन में सहज नहीं रह पाती।

संग्रह की कहानियों में स्त्री मन की परतों को समझदारी से खोला गया है। ये पात्र अभाव और त्रास में भी ताक़त नहीं खोते। चीत्कार न करें पर विरोध दर्ज कराते हैं। कहानियाँ बड़ा फ़लक नहीं बनातीं पर इधर के पिछले दशकों में हुए व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, पारम्परिक बदलाव को चिह्नित करती हैं। दम्पति आपस में प्रेम करें, न करें एक-दूसरे की फ़िक्र करते हैं इसलिये तमाम उठा-पटक के बावजूद सब कुछ ठीक हो जाता है। यह ठीक हो जाना संदेश देता है उत्तर आधुनिकता की कितनी ही बयार बहे परिवार आज भी अर्थ रखते हैं। मुझे आशा है कहानियों में हर वर्ग के पाठकों को कोई ऐसा सूत्र मिलेगा जो उनके जीवन से जुड़ता है।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

(उपन्यास)

एक टुकड़ा आसमान

समीक्षक : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

लेखक : विनोद कुशवाहा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश-1,
नई दिल्ली- 110048,
मोबाइल- 9868182835

अनेक विधाओं के लेखक विनोद कुशवाहा की नवीनतम रचना उनका उपन्यास 'एक टुकड़ा आसमान' है। इस उपन्यास में लेखक ने विराग नामक पात्र के रूप में एक ऐसे नौजवान को प्रस्तुत किया, जो अति आधुनिक दौर में रहते हुए, अपने अतीत की घटनाओं, पुरानी यादों से हर समय बँधा रहता है। उसे अपने अतीत से इतना प्यार है कि जब उसे अपना पुश्तैनी घर छोड़ना पड़ा तो उसने सड़क पार एक कालोनी में इसलिए घर किराए पर ले लिया ताकि वह वहाँ की बाल्कनी में बैठ कर अपने पुराने घर, गलियों व पुरानी स्मृतियों को सँजोता रह सके, हालाँकि इतने वर्षों बाद कुछ भी पुराने जैसा नहीं रह गया था।

ऐसा नहीं कि विराग का बचपन और युवावस्था के दिन बहुत खुशहाल और संपन्न जीवन से भरे थे कि वह उन्हें भूल नहीं सकता था। वास्तव में ऐसा कुछ नहीं था, पिता के बाद माँ अपने मायके के मकान में आकर रहने लगी, जहाँ नाना से उसे पिता का प्यार व मार्गदर्शन मिला। बस किसी प्रकार गुज़र-बसर करने वाली ही स्थिति रही। जिसमें नाना, दूसरी नानी, बड़ा भाई अभय, छोटी बहन इच्छा के बीमारी से मर जाने के बाद, माँ ही उसके जीवन का सहारा रही। आख़िर माँ भी चल बसी। उसके बाद विराग का जीवन बिखर सा गया। फिर वह कभी भी खुश नहीं रह पाया। हालाँकि राज्य प्रशासनिक सेवा की अच्छी-ख़ासी नौकरी में, उसने अलग-अलग शहरों में कई जगहों पर कार्य किया। नौकरी में उसे मान-सम्मान मिला, अच्छी-ख़ासी तनख्वाह रही, कहीं आने-जाने के लिए गाड़ी-ड्राइवर भी मुहैया रहे, इस सब के बावजूद विराग सारी उम्र 'एक

टुकड़ा आसमान' की तलाश करता रहा, जो अंत तक नसीब नहीं हुआ। जब जीवन की दौड़-धूप के बाद स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद विराग ने उसी मकान में रहना चाहा, तब तक मामा ने वो मकान बेच दिया था। उन्हीं स्मृतियों के कारण उसने सामने की कालोनी में मकान किराए पर ले लिया। इस मकान की बाल्कनी में बैठ कर ही, अक्सर विराग अपने जीवन की भूली-बिसरी यादों को सँजोता रहता और उदास व मायूस होता रहता।

विराग ने विवाह नहीं किया परन्तु उसके जीवन में कई लड़कियाँ आई, कुछ के साथ उसकी अत्यन्त निकटता भी रही, जैसे अनादि और नीरा के साथ, उसने बहुत समय बिताया। नीरा उसके साथ उसके घर में रही जबकि अनादि के साथ भी उसका इतना निकट संबंध अवश्य रहा कि जहाँ दोनों एक साथ कई जगहों पर घूमने गए, मनाली में कुछ दिन रहे और विराग कई दिनों तक अनादि के घर पर रहा और अनादि भी बेधड़क विराग के यहाँ आकर घर को सहेजती- सँभालती रही। समय-समय पर उसने जीवन में विवाहित-अविवाहित अनेक स्त्रियों के प्रति निकटता को महसूस किया परन्तु लंबे समय तक कोई भी साथ नहीं निभा पाई।

कालेज के समय में नित्या ने उसका, उसकी माँ का बहुत ध्यान रखा, परन्तु परिवारों की आर्थिक स्थिति में काफी अंतर होने के कारण विराग ने उससे दूरी बना ली। वैसे भी उस समय उसके जीवन का लक्ष्य जीवन में कुछ बनना था। उसके पड़ोस में रहने वाली मनीषा बहुत सुंदर थी, एक-दो बार वह उसके घर भी गया परन्तु उसके पति और बच्चे के कारण विराग ने दूरी बना ली।

नौकरी दौरान ऑफ़िस में उसे ज्योतिका, मुक्ता, रूमा, आशिमा मिली। अनुष्का, निम्मी, अचला, उसके किसी न किसी मित्र की बहनें रही। अमीषा और अवंतिका से उसका परिचय लेखक होने की वजह से कहीं न कहीं हो गया।

सभी ने किसी न किसी रूप में उसे छुआ, आकर्षित किया, उसका अत्यन्त ख़याल रखा। यहाँ तक कि उस पर अधिकार भी जमाया। उसकी पसंद का खाना उसे बना कर खिलाया। उसकी पसंद की गुलाबी साड़ी पहन, माथे पर बड़ी-सी बिंदी लगा और बाल खुले रखे। नाश्ते में साधारण पोहा और भोजन में दाल-चावल खाने वाले विराग की बहुत लंबी-चौड़ी इच्छाएँ व लालसाएँ नहीं रही। फिर भी, उसने जीवन में कभी खुशी महसूस नहीं की।

उम्र के तीसरे पड़ाव पर स्वैच्छिक सेवा-निवृत्ति के बाद उसने पूरा समय साहित्य लेखन में लगाने का सोचा और अपने जीवन अनुभवों पर ही आधारित उपन्यास लिखने लगा। इन दिनों उसके घर का कामकाज सँभालने आई कमसिन मारिया ने भी उसे प्रभावित किया। मारिया जल्दी ही घर की स्वामिनी-सा व्यवहार करने लगी। जब वे दोनों पचमढ़ी घूमने गए, तब शाम को धूपगढ़ में सूर्यास्त देखते हुए मारिया ने उससे अपने प्यार का इज़हार किया, जिसे विराग ने उम्र का अंतर कह कर अस्वीकार कर दिया। तब मारिया ने उसे पहाड़ी पर से धक्का दे दिया। गिरते हुए विराग ने 'थैंक्स मारिया' कहा क्योंकि विराग स्वयं अपने जीवन का अंत करने की कभी हिम्मत न जुटा पाता।

विराग इतने संबंधों व निकटता के बावजूद भी कभी खुश क्यों नहीं रह पाया....। विराग के जीवन में क्या कमी रही? आख़िर वह इतना निराश, उदास व मायूसी से भरा क्यों रहा? इसका कारण यह है कि विराग जैसे लोगों से आज का समाज भरा हुआ है। वह केवल लेना जानते हैं, देना नहीं। उसने हर गुलाबी साड़ी, खुले बालों व बड़ी सी बिंदी वाली स्त्री को पसंद किया। सभी ने उसके लिए प्यार से पोहा व दाल-चावल बनाए। दिन-रात उसे ठीक से खाने व सोने के मैसेज डाल-डाल कर उसका ध्यान रखा। परन्तु विराग ने बदले में किसी को क्या दिया? वह उनके द्वारा इतना ध्यान रखने की आदत से जल्दी ऊबने लगता।

हो सकता है, लेखक विराग को केंद्र में रखकर कुछ और कहना चाहता हो परन्तु सारे कथानक से एक ही बात स्पष्ट होती है कि आप को खुश रहना सीखना पड़ता है। खुशी को छोटी-छोटी बातों में भी तलाशा जा सकता है। हर समय अतीत से लिपटे रहकर कुछ हासिल नहीं होता। विराग के लिए अनादि, नित्या, अवंतिका और भी बहुत सारी लड़कियों ने बहुत कुछ किया। अनादि आज के समय की लड़की है, अपने पैरों पर खड़ी, ज़िंदगी को अपने ढंग से जीने वाली, वह विराग के समान एक ही ढर्रे पर नहीं चल सकती।

विराग के हर समय उदास और मायूस व्यक्तित्व से वह घबरा गई। कोई भी घबरा सकता है, विराग स्वयं अपने आप से घबराता है। जब हम किसी का साथ चाहते हैं तो साथ देना भी पड़ेगा। हर कोई हर समय किसी को उसके अकेलेपन व अतीत से परे नहीं ले जा सकता, ऐसा करने के लिए उसे स्वयं कदम उठाने होंगे। अब अगर नाम में ही 'विराग' छिपा हो तो राग-अनुराग किससे और कब पैदा होगा.....?

लेखक ने सरल ढंग से सारा ताना-बाना लाकर सामने रख दिया। अब पाठकों के ऊपर है, वे विराग को किस अंदाज़ में देखते-परखते हैं। उसके जीवन में आने वाली स्त्रियों के बारे में क्या सोचते हैं। एक टुकड़ा आसमान चाहने वाले उस टुकड़े में आख़िर चाहते क्या है, यह सोचने की बात है।

विराग हर स्त्री में माँ को तलाश करता और देखता रहा। बहुत सारी स्त्रियाँ इसी भाव की मिली भी...लेकिन विराग किसी से अधिक समय तक जुड़ नहीं पाया। हालाँकि आशिमा, मनीषा, निम्मी, अचला के साथ उसने बहुत कम समय बिताया और अनादि व नीरा के साथ सबसे ज़्यादा। एक टुकड़ा आसमान की चाह में कुछ पलों का साथ भी अनंत हो सकता है।

आधुनिक समय की भागमभाग ज़िंदगी में जहाँ बहुत कुछ पीछे छूट गया, रह गया या छोड़ना पड़ा, उसे समय की पुकार समझ, भुला कर, नए वक्त के साथ कदम उठा कर चलना ही समझदारी है। फिर कहीं भी से देखो, भरा-पूरा अनंत आसमान नज़र आएगा, इस असीमिता में से एक टुकड़े की चाहत रखना ही क्यों.....।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

अकाल मृत्यु एवं अन्य कहानियाँ

समीक्षक : योगेन्द्र शर्मा
लेखक : डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ
प्रकाशक : इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड

डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ का यह पाचवाँ कहानी संग्रह है, जिसमें कुल इक्कीस कहानियाँ हैं। विशेषता यह है, कि सभी कहानियाँ लघु आकार की है, गफी हुई हैं। एक शब्द भी फालतू नहीं है। आकार ही नहीं, इनके शीर्षक भी बहुत लघु है, यथा सम्मान, स्वीकृति, आरोप, सौदो, कसक, संकल्प, गुरुदक्षिणा, संकट आदि।

इस पुरुष-प्रधान समाज में स्त्रियों की, चाहे किसी समाज की हो, दशा तो दलितों जैसी ही है। कई कहानियाँ स्त्री-विमर्श से अभिप्रेरित हैं। 'अगला जन्म' की दादी अम्मा, अपने इस जन्म में दादाजी का साथ नहीं चाहती, एक जन्म की ग़ुलामी ही बहुत है। 'उसकी लड़ाई' की लक्ष्मी बर्तन माँज कर घर का खर्च चलाती है, परन्तु जब उसका पति और बेटा, उसकी दस वर्षीया बेटी का सौदा करने लगा, तो दुर्गा रूप धर लेती है। 'सब के लिए' की कामना पराशर पति के निधन के बाद निराश नहीं हुई, झुकी नहीं, पीड़ित महिलाओं के लिये समाज सेवारत रही। लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र की प्रोफ़ेसर रहीं। सत्तर वर्ष की आयु में भी एक रिसर्च प्रोजेक्ट पर कार्य करती है। 'अकाल मृत्यु' की नायिका ने पति के अत्याचार सहे, फिर विद्रोह कर दिया, अकेले ही बेटे को पाला पोसा और मौसा-मौसी को सौंप कर चल बसी। फरार बाप अकस्मात् प्रकट हुआ, और लगा हक् जताने। बेटा बाप को बाहर का रास्ता दिखाता है, और अपनी जीवन संगिनी को सुनाता है, अपनी माँ की कहानी। 'आरोप' की बहू नौकरी करती है, इसलिये ससुराल में 'एडजेस्ट' नहीं हो पाती। परन्तु सास के निधन के बाद, जो ननद उसकी नौकरी की घोर विरोधी थी, वही उससे कहती है, कि भाभी अपना जॉब मत छोड़ना। 'कसक'-कामवाली युवतियों, महिलाओं की व्यथा कथा है। पुरुष प्रधान समाज में यद्यपि रेनू का बाप सब्ज़ी का ठेला लगाता था, अब काम ठप्प है। वह और माँ घर सँभालती है लेकिन उनका कोई महत्त्व नहीं हैं। रेनू का भाई पाँचवी में फेल हो रहा है, पढ़ाई फिर भी जारी है, उसकी तो दूसरी कक्षा से ही

योगेन्द्र शर्मा
द्वारा अनिल कुमार कुलदीप
86, खत्रियान
बिजनौर-246701 उप्र
मोबाइल-9897410320, 7017206371

पढ़ाई छुड़वा दी थी।

लेखक की संवेदना सम्पूर्ण नारी जाति से तो है ही, छोटा-सा उपेक्षित जीव, बर्र, बन्दर, और बैल भी लेखक की करुणा, ममता की सीमा में हैं। यह पंचतंत्र की तरह कुछ न कुछ संदेश देती कहानियाँ हैं 'दो बैलों की एक और कहानी'-हीरा-मोती के लेकर मुंशी प्रेमचंद ने एक कालजयी कहानी लिखी थी। लेखक के हीरा-मोती अलीगढ़ के लंबे कर्फ्यू में भूखे मर रहे हैं। इंसान, हिन्दू मुसलमान हो गया है, और उनका मालिक हमीद उनके लिए दरोगा जी से लड़ रहा है। 'एक और अग्निकांड', मानव जाति के स्वार्थ को उजागर करती है। वह मधुमक्खियों का शहद पाने के लिए पालता है। उसके लिए कुछ मधुमक्खी की हत्या मामूली बात है। छत्ते बार-बार जलने से हताश बालक बर्र अपनी माँ से कहता है कि ये तो हर बार हमारा घर जला देते हैं। तो माँ समझाती है उन्हें हमारे घर जलाने दो, हम हर बार नया घर बनाएँगे। कहानी इस नन्हें उपेक्षित जीव की जिजीविषा उजागर करती है। 'अपने लोग'- बन्दरों की व्यथा कथा है। मोटू बन्दर को अपनी ताक़त का घमंड था, इसीलिए वह बूढ़े सरदार की चेतावनी की उपेक्षा कर, देव विहार में घुस गया। एक छत पर था, तो वृद्धा ने उसे 'हनुमान का सैनिक' कहा। परन्तु यह ख़बर जंगल में आग की तरह फैल गई, लौटना मुश्किल हो गया। गोली से घायल हो कर लौटा। 'संकट'-भी बन्दरों पर ही लिखी गई कहानी है। उस कालोनी में बन्दरों का आंतक था। खाने की चीज़, फल, आदि हाथ से छीन ले जाना मामूली बात थी। गुलेल ख़रीदे गए। फिर लंगूर लाया गया, जिससे बन्दर आतंकित हुए। बन्दरों के समूह पर लंगूर झपटा, तो भगदड़ मच गई, एक बालक रह गया। लंगूर की आँखें उससे मिली, तो करुणा जगी। लंगूर की बन्दरों से दोस्ती हो गई। फिर बाउन्सर लगे। फिर एक दिन एक बाउन्सर की गोली से एक बन्दर मर गया। बस बन्दर बाउन्सरों पर टूट पड़े। और बन्दरों की समस्या अनसुलझी रही।

संग्रह की तीसरी विषय वस्तु है, सामाजिक विसंगतियाँ- पुराने पीढ़ी की प्राथमिकताएँ अलग है। एक 'जनरेशन गैप' है, अस्तु नई पीढ़ी उसे आउट डेटेड समझती है। 'खरा-खोटा' का मलूक चन्द अपनी राह चल रहा है। पचास साल पुरानी अपनी प्रिय साड़ी को जलाकर उसका सोना- चाँदी निकलवाने को मजबूर है, लेखक की माँ। लेखक का 'सम्मान' होने वाला था। उसे सम्मान पत्र, अंगवस्त्र प्रदान करने वाले, वृद्ध साहित्यकार के अस्वस्थ होने के कारण, एक काली कमाई वाले कुबेर के हाथ से, उसे सम्मान पत्र व अंगवस्त्र मिला, व एक 'एनकाउन्टर इस्पेशलिस्ट' एस.पी. के हाथ से सम्मान का चैक मिला। लेखक सोचता रह गया कि यह सम्मान था या अपमान। हम बड़ों की भूल माफ नहीं करते क्योंकि हम उन्हें आदर्श मानते हैं। 'स्वीकृति' के प्रमोद जी तीन साल में ही अपने अकेलेपन से घबरा गए, उनकी पत्नी कैंसर के कारण चल बसी थी। तब वह पिता की भूल पर अपने व्यवहार से लज्जित हो रहे थे, पिता ने तो अकेलेपन में बीस वर्ष काटे थे और फिर एक प्रौढ़ नर्स से शादी की थी। संयोग और वियोग प्राय: विधि के हाथ होता है। मंदिर के पुजारी को अकस्मात् उसकी बिछड़ी हुई पत्नी और माँ मिल गई थी। 'पक्का घाट' उसी संयोग की कथा है। पुरानी नई पीढ़ी के बीच के 'जनरेशन गैप' को दर्शाती है, कहानी 'सौदा'। पिताजी ने बडे अरमान से एक घर बनाया उसे अपना 'पाँचवाँ बेटा' कहा। उनके निधन के बाद माँ वही रही, और एक सिलाई स्कूल खोल लिया। चारों बेटे उस मकान को बेचने हेतु एकमत थे। माँ के निधन के बाद इस मुहिम ने ज़ोर पकड़ा, परन्तु मौहल्ले वालों ने दलाल के आगे धरना दे दिया, कि सिलाई स्कूल बन्द न किया जाय, किराया जो चाहें मिलेगा। 'संकल्प' के श्याम लाल के शरीर से उनके घर वालों को बदबू आती है। इस मालिश के पेशे को भी वह घटिया समझते है। एक बार तो वह टूट गया था परन्तु फिर पुराने पेशे में आ गया, अलग कमरा भी ले लिया। 'दुर्गन्ध मुक्ति' पति-पत्नि के बिखरते संबंध की कहानी है। पति के निधन के बाद वह उसकी लाश के साथ सुबह तक रही, परन्तु उसे दुर्गन्ध नहीं आयी। जब कि जब पति ज़िन्दा था, तो आती थी। 'एक अप्रकाशित संपादकीय के लेखक को उसका प्राचार्य कॉलेज मैगज़ीन के लिये बढ़िया सा संपादकीय लिख लाने का आदेश देता है, परन्तु अपने सामाजिक सरोकार के कारण वह ऐसा संपादकीय लिख देता है जिसे देखकर प्राचार्य आगबबूला हो जाता है। आस-पास के भ्रष्टाचार का भंडा-फोड़ करती है, कहानी। उन्हें अपना जन्मदिन याद नहीं रहता, गुप्ता जी उन्हें याद दिलाते हैं। वह जन्म दिन अपने घर में नही मनाते, वृद्ध आश्रम जाकर मिठाई, फल, नमकीन बाँटते हैं। 'गुरू दक्षिणा' का सूरज आज विधायक है। एक छात्र सिफारिशी पत्र लाता है। बहुत याद करने पर उसे याद आता है कि पत्र तो 'काने गुरु' का है फिर उनकी संटियों की मार याद आती है, फिर भी दलित उत्पीड़न उजागर करती कहानी, एक सकारात्मक मोड़ लेती है। गजाधर सिंह का एक कथन उसे याद आता है कि जो उन्होंने किया तुम वही करोगे? तब तुम में और उनमें क्या फ़र्क रह जाएगा। और सूरज उसे कल प्रमाणपत्रों सहित आने को कहता है। संग्रह की एक व्यंग्य-प्रधान कहानी है, 'एक गिरगिट की आत्म हत्या' दौलत सिंह नेता की जीप पर बैठा हुआ गिरगिट 'बड़ी टीकरी' में सवर्णों के बीच उनका घोर जातिवादी भाषण सुनता है, फिर 'छोटी टीकरी' मे दलितों के बीच उसके गाँधी वादी उद्‌गार, तो ग्लानिवश आत्मा हत्या कर लेता है।

आकारगत लघु इन कहानियों में एक केन्द्रीय विचार है, और पूरी कहानी उसी विचार के आस-पास पेन्डुलम-सी डोलती है। अस्तु लेखक सोदृश्य लेखन में विश्वास रखता, यह निर्विवाद सत्य है।

स्त्री विमर्श की कहानियों में नायिकाएँ पहले परिस्थितियों के साथ समझौता करने का प्रयास करती हैं, अत्याचार बढ़ने पर एकला चलो की राह चल पड़ती हैं या अत्याचारी के सामने ताल ठोकने को तत्पर हैं। कहानी संग्रह अकाल मृत्यु एवं अन्य कहानियाँ रोचक, पठनीय, संग्रहणीय है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

गुनगुनी चाय और स्त्री

समीक्षक : मुकेश निर्विकार
लेखक : कुन्तेष दहलान
प्रकाशक : समन्वय प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद

‘भावों की पाती है कविता / दु:ख-सुख की साथी है कविता / एक प्रेम-पत्र है यादों का / कुछ भूले-बिसरे वादों का / ...घावों का मरहम है ये / पल-पल का हमदम है ये'-इन पंक्तियों में कविता को विश्लेषित करने वाली कवयित्री कुंतेश दहलान का यह पहला कविता संग्रह है। अपनी कविताओं को पुस्तकाकार रूप देने में कवयित्री ने काफी संवरण किया है, इसलिए इन कविताओं में वैचारिक परिपक्वता सन्निहित है। कुंतेश की कविता मूलत: विचार-कविता है। इसलिए इसका मूल्यांकन हम कविता के परंपरागत टूल्स से नहीं कर सकते हैं। आधुनिक कविता, अपने आधुनिक कथ्य और वैचारिकी में, अपने मूल्यांकन के लिए एक अलग काव्य-विवेक और धैर्य की माँग करती है। वैचारिक रूप से परिपक्व कविता को आत्मसात् करने के लिए कविता की आधुनिकतम प्रवृत्तियों की समझ आवश्यक है।

'गुनगुनी चाय और स्त्री' -संग्रह का यह अतिविशिष्ट शीर्षक स्त्री-विमर्श के आधुनिकतम प्रगतिवादी भावबोध की प्रतीति करता है तथा इसकी अभिव्यंजना पाठक को दूर तक अनुभूत होती है।

इस पुस्तक के फ्लैप पर अंकित वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. अनूप सिंह जी के शब्द दृष्टव्य हैं- 'इन समस्त कविताओं का मूल स्वर स्त्री का जीवन है। .... कवयित्री ने एक स्त्री को आपके साथ जोड़कर उसकी समस्त संवेदनाओं को वृहत्तर रूप में संवेदित कर दिया है....उसके पलों तक का हिसाब-किताब करते हुए कवयित्री स्त्री के जीवन को हथेली पर रखकर दिखा देती है।'

जैसे इस कविता-संग्रह के नाम में नयापन है, वैसे ही इस संग्रह की कविताओं के कथ्य में भी नयापन है। इन कविताओं में शिल्प की दृष्टि से भले ही कहीं-कहीं कसावट की कमी महसूस होती हो, लेकिन अपनी विषयवस्तु और कथ्य में ये कविताएँ अनूठी हैं। बुलंदशहर जैसे क़स्बाई शहर में नितांत नए आधुनिकतम भावबोध के साथ हिन्दी कविता की कहन अत्यन्त मायने रखती है।

इस कविता-संग्रह में अतुकांत व तुकांत दोनों तरह की कविताएँ हैं लेकिन अपनी सपाट बयानी में यह कविता अपनी कहन में गद्य की ओर उन्मुख दिखाई पड़ती है। गद्य को जीवन-संग्राम की भाषा कहा गया है। इसलिए हमारे जीवन-संघर्ष से जुड़ी कविता, बहुत स्वाभाविक है, कि गद्य की ओर ही उन्मुख होगी। यह हमारे बदले हुए युग की, बदले हुए जीवन की, बदली हुई कविता है। समय के साथ हरेक चीज़ बदलती है, स्वाभाविक है कि कविता भी बदलेगी। जब जीवन बदल रहा है, जीवन की चुनौतियाँ बदल रही हैं, तो फिर कविता भला क्यों नहीं बदलेगी। इसलिए कविता के मूल्यांकन व आस्वाद के परंपरागत पैमाने/टूल्स भी स्वत: ही बदलेंगे। नहीं बदलेगी तो बस कविता की अन्तर्लय जो कि कविता का मूल-तत्व या प्राण है, और यह लय मात्र शाब्दिक या मात्रिक नहीं, अपितु वैचारिक लय भी हो सकती है, भावनात्मक लय भी हो सकती है, संवेदनात्मक लय भी हो सकती है, गहन अनुभूतिपरक लय भी हो सकती है।

इन कविताओं में स्त्री का विद्रोही स्वर मुखर है, रूढ़ परंपराओं से विलग होने की उसकी तीव्र छटपटाहट दिखाई पड़ती है। कवयित्री अपनी कविताओं में स्त्री के 'स्व' को जगाती है, जहाँ-जहाँ स्त्री का शोषण होता है, उन जगहों, उन स्थितियों/परिस्थितियों को इंगित करके स्त्री को दासता और शोषण से मुक्त होने का आह्वान करती है। इसके लिए रचनाकार का मानना है कि स्त्री का ख़ुद का विद्रोह ज़रूरी है। इस संदर्भ में अपनी एक कविता में वह कहती हैं- 'ख़ुद का विद्रोह ज़रूरी है / निज मन की टोह ज़रूरी है / माना कि कठिन है ये काम बहुत / लेकिन ये काम ज़रूरी है।' (पृष्ठ-128)

अपने निजी सौंदर्य के मोहपाश में आबद्ध स्त्री को भी कवयित्री सौंदर्य के बंधन के प्रति आगाह करती है- 'ये तरह-तरह से, जगह-जगह क्यों / अंग-अंग तेरा बाँध दिया है / किसी को कहते पायल बिछुए / किसी को कंगन नाम दिया है / जब किया नहीं अपराध कोई तो / फिर

मुकेश निर्विकार
प्लॉट नं.-28, पानी की टंकी के पास,
कोतवाली देहात थाने के पीछे,
विष्णुपुरम-द्वितीय, बुलन्दशहर (उप्र)-203001
मोबाइल- 9411806433
ईमेल- mukeshbul80@gmail.com

क्यों इन्हें स्वीकार किया है / पहचान अरे, ये बंधन हैं सब / जिन्हें तूने अंगीकार किया है।'

कवयित्री ने स्त्री विमर्श को अत्यंत वैचारिक धार दी है तथा स्त्री की ममता, पतिव्रत्य आदि का गुणगान करके पुरुष जो उसका भावनात्मक शोषण करता है, जिसके कारण वह अपने हिस्से का जीवन नहीं जी पाती है, उसको अपनी कविताओं में चिह्नित करके सचेत रहने का आह्वान किया है। एक कामकाजी महिला को वह सीख देती हैं कि जब घर के सब काम निपटाती हो समय से, रखती हो ख़याल सबकी पसंद का, तब तो तुम अच्छी लगती हो, लेकिन-'निकालती हो जब / अपने लिए भी वक्त / पढ़ती हो जब कोई / अपनी पसंद की मैगज़ीन / करती हो जब केवल अपनी फ़िक्र / दुनिया की फ़िक्र से दूर (तब) ज़्यादा अच्छी लगती हो तुम (पेज 48)

कवयित्री जैसे हरेक कविता में बार-बार स्त्री को आगाह करती दिखाई देती है। वह स्त्री की चेतना में जागरूकता का मंत्र फूँकते हुए कहती है-'बेसुध न रह अब सुध कर ले/प्राणों में चिर-चेतन भर ले'(22)

इन कविताओं में विद्रोह की उत्कट लालसा के साथ साथ एक अधीर प्रश्नाकुलता है। कवयित्री बार-बार प्रश्न करती है, रूढ़ परंपराओं के प्रति, करवा के व्रत के प्रति, कन्यादान के प्रति, लिंग भेद के प्रति।

कई जगह वह पुरुष को हिदायत देती प्रतीत होती है-'देखो फिर समझा रही हूँ तुमको / ख़ुद को मुझ पर सिद्ध मत करो / मुझे अपने विरुद्ध मत करो।'(41) वह पुरुष से एक समानता के जीवन-साहचर्य की माँग करती है, जिसके लिए ज़रूरी है कि दोनों अपनी-अपनी सीमाओं का उल्लंन न करें-'तू अपनी हद के साथ रह / मुझे मेरी हद में रहने दे।'(पृष्ठ-123)

वह बेपरवाह पुरुष को हिदायत देती है तथा उससे पूछती है-'पुरुष महोदय / देखो / हो गया सूर्योदय!!. ...मैं तो केवल तुम्हें जगाना चाहती हूँ...तुम क्यों कभी / चैतन्य नहीं होते / और मैं क्यों कभी / गहरी नींद नहीं सोती' (पृष्ठ-43)

कवयित्री संतुलित जीवन-साहचर्य की बात करती है। किसी के अधिकार छीनने की बात नहीं करती। सिर्फ अपने अधिकारों के प्रयोग की बात करती है। 'हाँ मैं भी अधिकार की बात करती हूँ' कविता उसकी इस संतुलित मंशा को इस तरह व्यक्त करती है- 'हाँ / सबकी तरह / करती हूँ मैं भी / अधिकारों की बातें / पर छीनने और / माँगने की नहीं / उनके / प्रयोग की बात करती हूँ।' आगे वह कहती है-'सुरक्षित हैं मेरे पास / इंसान होने के / सम्पूर्ण अधिकार / जो ईश्वर से / मिले मुझे / मेरे जन्म के साथ / बस उन्हीं के / सदुपयोग की बात करती हूँ।'

संग्रह की शीर्षक कविता 'गुनगुनी चाय और स्त्री' संग्रह की प्रतिनिधि कविता होने के साथ-साथ एक विशिष्ट कविता है, जिसमें संग्रह की सम्पूर्ण कविताओं में अंतर्निहित स्त्री-संचेतना समग्रश: अभिव्यक्त होती है। इस कविता में कवयित्री कामकाजी घरेलू स्त्री के हिस्से की ज़िंदगी के निज़ी सुकून के पल जो उसकी अतिव्यस्त दिनचर्या में प्रतिदिन छिन जाते हैं, इस विडम्बना को अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ पाठक को अनुभूति कराया है। इस कविता में कवयित्री ने अपने सीधे-सरल शब्दों के माध्यम से स्त्री के अनकहे-से अहसास को कहे में तब्दील कर दिया है।

संग्रह में कन्या-भ्रूण हत्या पर, माँ-बिटिया के परस्पर प्रेम पर कई मार्मिक कविताएँ है, जिनमें अजन्मी बेटी के जन्म न ले पाने की विवशता में डूबा आर्त-स्वर है, जो पाठक को अंदर तक उद्वेलित करता है।

इन कविताओं में प्रेम भी है, लेकिन प्रेम कविताओं की अलग कहन के साथ। वह सिर्फ सिचुएशन देती हैं और पाठक को प्रेम के वियोग रस की अनुभूति हो जाती है। 'क्या पता है तुम्हें' कविता में वह कहती है-'बदलना चाहती हूँ / किताबें अपनी / तुम्हारी किताबों से / ढूँढ़ना चाहती हूँ / अपना नाम / तुम्हारी किताबों पर / जो लिखा होगा तुमने / सबसे छुपाकर / किसी कोने में / जैसे मैं लिखती थी / तुम्हारा नाम / अपनी किताबों पर / क्या पता है तुम्हें' (76) इन कविताओं की स्त्री पुरुष से अपने जैसे ही सच्चे प्रेम और समर्पण की उम्मीद करती है। वियोग में डूबी, अतीत को याद करती हुई, वह अनुमान लगाती है-'बन्द आँखों से मुझे उसने / कई बार निहारा होगा / मुझे उसने पुकारा होगा।'(89)

इन कविताओं में कवयित्री का जीवन-दर्शन एवं जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भी सन्निहित है। संग्रह की कई कविताओं के शीर्षकों में ही 'जीवन' या 'ज़िंदगी' शब्द है। कवयित्री की नज़र में 'काम आएँगी ये मुश्किलें / आज नहीं तो कल'(82)! दु:ख भी हमें / डराता नहीं / सबल बनाता है(118)! कवयित्री 'अधूरेपन और अपूर्णता' को इंसान के लिए ज़रूरी समझती हैं।

कुछ कविताओं का प्रवाह छंद की ओर उन्मुख है तथा उनमें अच्छी गेयता है। 'सोए थे तार मन की वीणा के' इसी तरह की कविता है, जिसमें कविता की लय और गेयता का सरस प्रवाह है।

संग्रह में अद्‌भुत सकारात्मकता है। संग्रह की पहली ही कविता 'हे प्रभो मुझे सुन लेना तुम' ईश-प्रार्थना है, जिसमें परमसत्ता में कवयित्री की अगाथ आस्था और परम-सत्ता के प्रति समर्पण दिखाई देते हैं। संग्रह की अंतिम कविता के माध्यम से यह संग्रह पाठक को सकारात्मकता की उष्मा से ओत-प्रोत कर उसे उम्मीद सौंपता है-'चाहे / आख़िरी पंक्ति में ही सही / पर ज़रूरी है हमारा / पंक्ति में खड़े रहना / भले ही / देर से सही / हम ज़रूर दिखेंगे / हम पर / उजाला अवश्य आएगा।'

पूरा-का-पूरा संग्रह कवयित्री के दिल की साफगोई का विरल साक्ष्य है। इन कविताओं में स्त्री बिना लाग-लपेट के सीधे-सीधे पाठक से संवाद करती है, इसलिए ये कविताएँ पाठक से बतियाती-सी प्रतीत होती हैं। इन कविताओं में पाठक कवयित्री के विविध मनोभावों, मनोदशाओं, अहसासों, अनुभूतियों से गुज़रते हुए कवयित्री के जीवन-दर्शन और जीवन- निकषों से साक्षात्कार करता है। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि कुन्तेश दहलान का यह कविता संग्रह स्त्री विमर्श पर आधुनिक कविता का एक अनूठा दस्तावेज़ है, जो सुधी पाठकों के लिए सर्वथा पठनीय है।

000

(कहानी संग्रह)

कथा-सप्तक

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : सूर्यबाला

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

हिन्दी की सुपरिचित, वरिष्ठ कथाकार, व्यंग्यकार और प्रसिद्ध उपन्यास 'मेरे संधि-पत्र' की लेखिका सूर्यबाला की कहानियों का संग्रह 'कथा-सप्तक' इन दिनों काफी चर्चा में है। इसके पूर्व सूर्यबाला की प्रमुख पुस्तकें 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम', 'दिशाहीन', 'थालीभर चाँद', 'मुँडेर पर', 'गृहप्रवेश', 'साँझवाती', 'कात्यायनी संवाद', 'मानुष-गंध', 'गौरा गुणवंती' (कहानी संग्रह), 'मेरे संधि-पत्र', 'सुबह के इंतज़ार तक', 'अग्निपंखी', 'यामिनी कथा', 'दीक्षांत', 'कौन देस को वासी : वेणु की डायरी' (उपन्यास), 'अजगर करे न चाकरी', 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'देश सेवा के अखाड़े में', 'भगवान् ने कहा था', 'यह व्यंग्य कौ पंथ' (व्यंग्य संग्रह), 'अलविदा अन्ना' (विदेश संस्मरण), 'झगड़ा निपटाराक दफ्तर' (बाल हास्य उपन्यास) प्रकाशित हो चुकी हैं। आठवें दशक के हिन्दी लेखकों में जिन महिला कथाकारों ने अपनी रचनाओं के कारण एक गहरी पैठ बनाई है, उनमें सूर्यबाला का नाम विशेष है। सूर्यबाला सक्षम रचनाकार हैं। सूर्यबाला ने अपने निराले और वैविध्यपूर्ण लेखन के कारण हिन्दी कथा-लेखन में महती भूमिका निभाई है और उनकी रचनात्मक यात्रा आज भी निरंतर चल रही है। उन्होंने कहानी, उपन्यास, व्यंग्य और संस्मरण विधाओं में अपनी पुख्ता पहचान बनाई हैं। इनका कथा सृजन भावनात्मक धरातल पर गहरी संवेदना से लबरेज़ है। ये अपने कथा साहित्य में जीवन और परिवेश का यथार्थ चित्रण पूरी ईमानदारी और प्रामाणिकता से करती हैं। इनकी कहानियों में गाँव से लेकर विदेशों तक के अनुभवों का पिटारा है। 'कथा सप्तक' में सूर्यबाला की 7 श्रेष्ठ कहानियों का संकलन है।

कहानीकार 'सिर्फ एक गुज़ारिश है सर !...' शीर्षक कहानी पत्र शैली में लिखी गई, मानवीय संवेदनाओं को चित्रित करती एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है जो एक बेटे के मन के अंतर्द्वंद्व को पाठकों के समक्ष रखती है। यह कहानी मनोवैज्ञानिक धरातल पर मानसिक अन्तर्दशाओं का अभिव्यंजन करती दिखती है। यह रचना पति-पत्नी के बीच अनचाहे समझौते की विवशता को रेखांकित करती है और साथ ही इस कथा में व्यावहारिक प्रवृत्ति, वैभव प्रदर्शन की ललक, दिखावे की प्रवृत्ति इन सब आयामों को विश्लेषित किया है और यह कथा इन सब आयामों से उपजे विघटन एवं संवेदनहीनता की टोह लेती हैं। 'बच्चे कल मिलेंगे' डायरी शैली में लिखी देश-विदेश में रहने वाले एक परिवार की पारिवारिक कहानी है। इस कहानी में विदेशों में पारिवारिक

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

संबंधों की कृत्रिमता, नई पीढ़ी पर विदेशी संस्कृति के दुष्प्रभाव का स्पष्ट चित्रण है। लेखिका ने कहानी में संवेदना के मर्मस्पर्शी चित्र उकेरे हैं। सहज, संवेदनशील मानव मन से साक्षात्कार कराती इस कहानी में कहानीकार ने कहानी की नायिका जो कि एक वृद्ध स्त्री है और बच्चों की दादी है, के मनोभावों को ख़ूबसूरती से व्यक्त किया है। इस कहानी में लेखिका ने दादी की ममता को अत्यन्त आत्मीयता एवं कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। भारतीय समाज में वर्गभेद का जीवंत उदाहरण है कहानी 'फ़रिश्ते'। यह कहानी मानवीय संघर्ष की जिजीविषा से रूबरू कराती है। उच्चवर्गीय और निम्नवर्गीय जीवन की मानसिकता इस कहानी में उद्घाटित हुई है। इस कहानी में कथाकार स्त्री मन, बाल मन, मानवीय मन को पात्रों की सहज, सरल भाषा के द्वारा पाठक की अनुभूतियों में उतार देती है। लेखिका ने इस कथा में बालक मटरुआ और उसकी माँ के जीवन-संघर्ष को जिस कौशल से पिरोया है, वह अद्भुत है।

उदारीकरण, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण के दौर में सबसे अधिक प्रभावित हुआ है वह है मानवीय रिश्ते व संवेदना। इसी पृष्ठभूमि पर सूर्यबाला ने 'माय नेम इश ताता' कहानी का ताना-बाना बुना है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने परिवार की परिभाषा को पुनर्जीवित कर दिया है। कथाकार ने बड़ी कुशलता से नीना और उसके पति शौनक के तनाव का सृजन इस कथा में किया हैं। कहानी में नीना का मानसिक ऊहापोह प्रखर रूप में विद्यमान है। बच्ची सुजाता उर्फ़ ताता के तुतलाते संवाद कथा को बेहद अंतरंग बनाते हैं। यह कहानी बहुत सधे हुए अंदाज़ में आगे बढ़ती है और अंततः जब ताता की दादी ताता के साथ रहने की स्वीकृति दे देती है तो नीना और उसके पति शौनक की सारी चिंताएँ, मानसिक ऊहापोह का अंत हो जाता है। 'वे ज़री के फूल' बचपन में अंकुरित निश्छल प्रेम की अनुभूतियों की उत्कृष्ट कोटि की अनूठी कहानी है जो कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से पाठकीय चेतना पर अमिट प्रभाव छोड़ती है। यह कथा नारी की नियति से संबंधित है। 'वाचाल सन्नाटे' कहानी में एक वृद्ध स्त्री के अकेलापन का चित्रण बहुत ही संजीदगी के साथ किया है। सधे और सीधे अंदाज़ में वृद्ध स्त्री के जीवन का एक बड़ा सच हमारे सामने उभरकर आ जाता है। कथाकार ने 'वाचाल सन्नाटे' कहानी का सृजन बेहतरीन तरीके से किया है। कहानी का दृश्य विधान इसकी ताक़त है। कहीं-कहीं तो लगता है हम इसके साथ बह रहे हैं। 'अनाम लम्हों के नाम' कहानी के पात्र कष्ट, अभाव और मजबूरियों के बीच जीते हुए मुश्किलों का डटकर सामना करते हैं तथा जीवन में छोटी-छोटी खुशियाँ तलाशते हुए नज़र आते हैं। कहानी एक बिलकुल अलग कथ्य और मिज़ाज की कहानी है जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। इस कहानी में एक माँ के मन के सपने तथा जीवन संघर्ष से जुड़ी मन:स्थितियाँ विश्लेषित हैं। इस कथा में पत्नी सब कुछ जानते हुए अपने पति के कुकर्मों को सही ठहराती है, लेकिन जब छोटा बेटा स्कूल में चोरी करता है तो उसे बुरी तरह से पीटती है।

इनकी कहानियों की कथावस्तु हमारे आसपास के जीवन की हैं। कथाकार इन कहानियों में स्मृति के पन्नों में पहुँचकर वहाँ के दृश्य साकार कर देती हैं। कथाकार ने कहानियों के चरित्रों को परिवेश और परिस्थितियों के अनुसार ही प्रस्तुत किया है। लेखिका की भाषा में चित्रात्मकता है। सूर्यबाला की कहानियों की नायिकाएँ कर्म के प्रति निष्ठावान होने के साथ विवेकशील और साहसी हैं, इन सन्दर्भों में नायक बौने दिखाई देते हैं। सूर्यबाला की कहानियों में यथार्थवादी जीवन का सटीक चित्रण है। इनके कथा साहित्य में स्त्री के कई रूप दिखाई देते हैं। सूर्यबाला के नारी पात्र पुरुष से अधिक ईमानदार, व्यवहारिक, साहसी और कर्मठ दिखाई देती हैं। कहानियाँ नारी मन का मनोवैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण करती हैं। कथाकार कथानक के माध्यम से पात्रों के अतल मन की गहराइयों की थाह लेती हैं। इनकी कहानियाँ बाहर से भीतर की ओर यात्रा करती हैं।

इस संग्रह की सभी कहानियाँ सशक्त है जिसमें कथ्य का निर्वाह कुशलतापूर्वक किया गया है। संग्रह की कहानियाँ वर्तमान समय को उजागर करती हैं। सूर्यबाला ने सहजता से अपने समाज और आज के समय की सच्चाइयों का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। कथाकार की भाषा में पाठक को बाँधे रखने का सामर्थ्य है। संवेदना के धरातल पर ये कहानियाँ सशक्त हैं। संग्रह की हर कहानी उल्लेखनीय तथा लाजवाब है और साथ ही हर कहानी ख़ास शिल्प लिए हुए है। ये कहानियाँ सिर्फ़ हमारा मनोरंजन नहीं करतीं बल्कि समसामयिक यथार्थ से परिचित कराती हैं। इन कहानियों में प्रयुक्त कथानुकूलित परिवेश, पात्रों की अनुभूतियों, पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, कहानियों में लेखिका की उत्कृष्ट कला- कौशलता का परिचय देती है। कहानियों के पात्र अपनी ज़िंदगी की अनुभूतियों को सरलता से व्यक्त करते हैं। कहानियों के चरित्र वास्तविक चरित्र लगते हैं, कृत्रिम या थोपे हुए नहीं। लेखिका के कहानियों के पात्र अपने ही करीबी रिश्तों को परत दर परत बेपर्दा करते हैं। इन कहानियों में अनुभव एवं अनुभूतियों की प्रामाणिकता है। इस संग्रह की कहानियों में व्याप्त स्वाभाविकता, सजीवता और मार्मिकता पाठकों के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है।

इस संग्रह की कहानियों के शीर्षक कथानक के अनुसार हैं और शीर्षक कलात्मक भी हैं। सूर्यबाला ने इन कहानियों में समाज में व्याप्त समस्याओं का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। सूर्यबाला की कहानियों की भाषा में ग़ज़ब की स्वाभाविकता एवं प्रवाह है। बदलते समय से जुड़े सामाजिक विमर्श के अनेक पक्ष इन कहानियों में अभिव्यक्त हुए हैं। कथा सृजन की अनूठी पद्धति सूर्यबाला को अपने समकालीन कथाकारों से अलग खड़ा कर देती है। कहानियों का यह संग्रह सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

सफेद तितली

समीक्षक : डॉ. गिरिराज शर्मा गुंजन

लेखक : डॉ. रमाकांत शर्मा

प्रकाशक : अद्विक पब्लिकेशन

डॉ. गिरिराज शर्मा गुंजन
अद्विक पब्लिकेशन, 41 हसनपुरा
आइपी एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

'सफेद तितली' मुंबई वाले डॉ. रमाकांत शर्मा, का छठा कहानी संग्रह है। उन्होंने अब तक कुल बयासी कहानियाँ लिखी हैं जो विभिन्न कहानी संग्रहों में संकलित हैं। उनमें शामिल प्रेम कहानियों को एक जिल्द में पाठकों के सम्मुख लाने के उद्देश्य से यह संकलन लाया गया है। इसमें हाल ही में लिखी कुछ ऐसी प्रेम कहानियाँ भी शामिल हैं, जो किसी संकलन में सम्मिलित नहीं हैं।

'अपनी बात' में लेखक ने प्रेम को एक ऐसी भावना के रूप में निरूपित किया है जो जीवन को जीवन देता है। प्रेम की कोई सीमा नहीं है। जब कोई सच्चा प्यार करता है तो उसमें इस कदर डूब जाता है कि उसकी थाह नहीं मिलती। प्रेम कैसे होता है, किससे होता है, कब होता है, क्यों होता है और उसका स्वरूप क्या होता है, यह कोई विश्वासपूर्वक नहीं कह सकता। एक अनजान रास्ता है, जिस पर चलने वाले की अनुभूतियाँ ही उसे प्रेम के रसायन से आप्लावित कर सकती हैं। यूँ तो सभी संबंध प्यार की नींव पर टिके होते हैं, पर प्रेमी-प्रेमिका का प्यार उन्हें ऐसे अद्भुत संसार में ले जाता है, जिसे वे खोना नहीं चाहते। उनके प्यार में आकर्षण होता है, आसक्ति होती है और एक-दूसरे के लिए कुछ भी कर गुज़रने की प्रेरणा-शक्ति भी।

प्रेम ने दुनिया को अनगिनत और बेहतरीन कहानियाँ दी हैं। 'सफेद तितली' संग्रह भी ऐसी कुछ बेहतरीन कहानियों से सजा है, जो प्यार के अलग-अलग रंग बिखेरती हमारे सामने आती हैं। प्रिय की प्राप्ति से ज़्यादा प्रेम के अधूरेपन ने विश्व की महानतम प्रेम कहानियों को जन्म दिया है। 'सफेद तितली' में संकलित डॉ. रमाकांत शर्मा की कहानियाँ भी इसका अपवाद नहीं हैं। इस संग्रह में कुल बीस कहानियाँ शामिल हैं और हर कहानी प्रेम के किसी ना किसी नए आयाम को उद्घाटित करती है।

कहानी 'सफेद तितली' अभिषेक की एक कार्यालय में नियुक्ति से शुरू होती है। कहानी की नायिका अनीता एक चंचला युवती है और प्रथम दृष्टि में ही अभिषेक उससे प्रेम करने लग जाता है। अभिषेक का मित्र अनीता की वास्तविकता से परिचित है और वह उसे सचेत कर देता है। स्वयं अभिषेक ने भी देखा कि अनीता ने अपने माँ-बाप की ज़िद रखने के लिए जिस आदमी से शादी कर ली थी, उससे हनीमून से लौटने के दो-तीन माह के भीतर ही अलग रहना शुरू कर दिया और आख़िर में एक दिन उन दोनों के बीच तलाक की ख़बर भी मिल गई।

अनीता ने अपने एक पत्रकार मित्र रवि से दूसरी शादी कर ली जिसके बाद उसका व्यवहार पूरी तरह से बदल गया। पति के बीमार होने पर ऑफिस से छुट्टियाँ लेकर उसकी सेवा में लग

जाती है। उसने अपने पति से सच्चा प्यार किया था। अब वह पहले वाली तितली नहीं रही थी। पति की मृत्यु के बाद विवाह नहीं किया और एक विधवा की तरह अपना शेष जीवन व्यतीत किया।

'वह सच बोल रहा था' कहानी की मानवी ने शुभम से प्रेम विवाह किया था। एक शक के आधार पर वह शुभम से दूरी बना लेती है। उससे अलग रहने के दौरान जब वह मन की शांति के लिए मंदिर जाने लगती है और अनजाने में जवान और सुदर्शन कथा-वाचक के आकर्षण में ख़ुद को डूबा पाती है तो उसे शुभम के सच बोलने का अहसास होता है और वह शुभम के पास लौट आती है।

संकलन की तीसरी कहानी 'खाली कोना' विधवा विवाह की समस्या पर आधारित है। सुमन बाल विधवा-है। रघुनाथ से प्रेम करती है। सुमन के माता-पिता रूढ़िवादी हैं और समाज के भय से विधवा विवाह के ख़िलाफ़ हैं। वे सुमन की ज़िद से परेशान होकर उसे मारकर फाँसी पर लटका देते हैं। उसे इस हालत में देखकर रघुनाथ पागल हो जाता है। सुमन का भाई रघुनाथ को भी तलवार से मारना चाहता है किन्तु उसके पिता ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया, 'यह क्या कर रहा है तू? सुमन के बारे में सभी को बताया जा सकता है कि उसने विधवा-विवाह का पाप करने के बाद फाँसी लगा ली, पर इसकी हत्या का कोई बचाव नहीं होगा हमारे पास। इसे गाड़ी में डाल कर उसी लाइब्रेरी के पास पटक आ।' विक्षिप्त हालत में रघुनाथ हमेशा एक मंदिर के बाहर बैठा मिलता है।

'मैसेज बॉक्स' कहानी में संजना और कहानी का नायक एक ही कार्यालय में कार्य करते हैं। संजना बहुत ही कम बात करती है किंतु मन ही मन नायक से प्रेम करती है। कहानी का नायक भी उसे चाहता है। नायक का ट्रांसफर अन्य शहर में हो जाता है। आठ वर्ष बाद संजना का मैसेज आता है। दोनों के बीच प्रतिदिन गुड मॉर्निंग मैसेज से बातचीत का सिलसिला चल निकलता है। मैसेजों के माध्यम से वे एक-दूसरे को समझने की कोशिश करते हैं। कहानी इस बात को रेखांकित करती है कि बंद किताब और लोग समझ में नहीं आते, उन्हें खोलकर पढ़ना पड़ता है। कहा भी गया है कि अगर आप किसी की परवाह करते हैं तो उसे बताएँ अवश्य क्योंकि अनकही बातें अकसर अनसुनी रह जाती हैं।

'एक पत्र की मौत' रवि और किरण की प्रेम कहानी है। लगभग पच्चीस साल पहले किरण ने हमेशा के लिए देश छोड़कर जाने से पहले जो प्रेमपत्र रवि को थमाया था उसे रवि ने अभी तक संदूक में सँभाल कर रखा है। वह चाहकर भी उसे नष्ट नहीं कर पाया। कभी-कभी उसे निकाल कर देख लेता है और पुरानी यादें ताज़ा कर लेता है। कई साल बाद किरण उसे अप्रत्याशित रूप से एक पार्क में बैठी दिखाई देती है। वे दोनों ही एक-दूसरे को देखकर चौंक जाते हैं।

किरण बताती है कि न्यूज़ीलैंड में ही उसका विवाह उसके पिता के मित्र के लड़के से हो गया है, बेटा और पोते भी हैं और वह उनके साथ बहुत खुश है। उसे यह जान कर दु:ख होता है कि रवि ने अभी तक शादी नहीं की। किरण का यह कहना कि, 'वह पत्र लिखना अगर मेरी नादानी थी तो उसे अब तक सँभाल कर रखना तुम्हारी नादानी है,' रवि को सोचने पर विवश कर देता है और वह उस पत्र को नष्ट कर देता है जिसे उसने इतने समय से सँभालकर रखा था। इस कहानी का संदेश स्पष्ट है, प्रेम मनुष्य के जीवन की सच्चाई है, पर यह अंतिम लक्ष्य नहीं। प्रेम जीवन को रोकता नहीं क्योंकि जीवन का धर्म आगे बढ़ना है। यह कहानी पढ़ते समय हिन्दी फिल्म 'सरस्वती चंद्र' की याद ताज़ा हो जाती है जिसमें नायिका कहती है, 'छोड़ दे सारी दुनिया किसी के लिए, ये मुनासिब नहीं आदमी के लिए, प्यार से भी ज़रूरी कई काम हैं, प्यार सब कुछ नहीं ज़िंदगी के लिए।'

'जवाब' हायर सैकण्डरी स्कूल में सहपाठी रहे ऐसे युवक (दीपक उपाध्याय) और युवती (ज्योति गिडवानी) की कहानी है जो कई वर्ष बाद एक ट्रेन में सहयात्री के रूप में मिलते हैं। स्कूल के दिनों में ज्योति अधिकतर चुप रहना पसंद करती थी। स्कूल के लड़के मजनूँ की तरह उसके पीछे पड़े रहते थे और वह किसी को घास नहीं डालती थी। वह दीपक को भी अच्छी लगती थी। शायद वह अकेला ऐसा लड़का था जिससे वह खुल कर बात कर लेती। ज्योति का परिवार भारत-पाक विभाजन की त्रासदी से गुज़र चुका है। वह दो बार शादी कर चुकी है। दीपक को याद आता है कि ज्योति उस परिवार से संबंधित थी जो उनके ऑफिस में माल सप्लाई करता था और रिश्वत देने के बहाने उसके बॉस श्रीवास्तव साहब को ताश खेलने के लिए घर बुलाता था। ताश के खेल में ज्योति के पिता जान-बूझकर रुपये हारते थे। शराब भी परोसी जाती थी और श्रीवास्तव जी ज्योति को अपने पास बिठा कर उसके साथ अश्लील हरकतें भी करते थे जिसका ज्योति विरोध नहीं करती थी। दीपक इस सबका 'जवाब' ज्योति से लेना चाहता है। ज्योति बँटवारे के दिनों में लाहौर की उस रात की यंत्रणा और बेइज़्ज़ती के सामने श्रीवास्तव जी की हरकतों को बहुत हल्का मानती है। परिवार की भूख, ग़रीबी और वितृष्णा से बचाव का उसके पास यही एक मात्र उपाय था। कहानी के अंत में अपने आँसू पोंछ कर ज्योति दीपक से कहती है - 'मिल गया ना तुम्हें जवाब?'

'मंदिर की सबसे ऊँची सीढ़ी' मीता और धीरज की प्रेम कहानी है। ये दोनों एक ही कंपनी में काम करते हैं किंतु अलग-अलग शहरों में। धीरज एक सेमिनार के सिलसिले में उस शहर में जाता है जहाँ मीता काम करती है। नए शहर में धीरज को कोई परेशानी न हो, इस बात का ख़याल रखने का ज़िम्मा कंपनी की ओर से मीता को सौंपा गया है। तीन दिन तक कंपनी के कार्य के पश्चात् साथ-साथ शहर में घूमने, होटल में भोजन करने और मीता के घर में उसके हाथ का बना खाना खाने के दौरान उनके बीच प्रेम का अंकुर फूट पड़ता है।

मीता ने सुशांत नाम के एक व्यक्ति के साथ प्रेम-विवाह किया था किन्तु सुशांत के शक्की स्वभाव के कारण वे केवल छह महीने ही साथ रह सके। उनका तलाक़ हो गया था। धीरज और मीता का एक साथ समय गुज़ारने का प्रिय स्थान कृष्ण मंदिर की सबसे ऊँची

सीढ़ी थी। सेमिनार के बाद धीरज अपने शहर लौट गया किंतु दोनों की फ़ोन पर बात होती रहती थी। फिर, अचानक मीता की ओर से फ़ोन आने बंद हो गए। वह ऑफिस से लंबी छुट्टी ले लेती है। तलाक़ के बाद भी वह अपने पूर्व पति सुशांत को भूल नहीं पाती है। वह इस बात को लेकर भी सशंकित रहती है कि तलाक़शुदा के रूप में धीरज उसे पूरे मन से स्वीकार कर भी पाएगा या नहीं। धीरज मीता को खोजने उसके शहर में जाता है। शाम के झुटपुटे में मंदिर की उसी सबसे ऊँची सीढ़ी पर दोनों की मुलाकात होती है और दोनों एक साथ जीवन व्यतीत करने का निर्णय ले लेते हैं।

कहानी 'ब्लैक आउट' नंदलाल और पुष्पा के प्रेम की अद्भुत कहानी है। पुष्पा को लिखी नंदलाल की चिट्ठी उसकी माँ के हाथ में पड़ जाने से जो बवाल उठता है, उसने दोनों को एक-दूसरे से अलग रहने पर विवश कर दिया। युद्ध के समय शहर में ब्लैकआउट का फायदा उठाकर पुष्पा नंदलाल से मिलने आती है और उसकी बातें नंदलाल के मन में ऐसा अँधेरा बो जाती हैं जिसे सूरज की रोशनी भी नहीं हटा पाती।

'बहूजी और वह बंद कमरा' कहानी में बहूजी के चरित्र के माध्यम से प्रेम और मर्यादा का तालमेल दर्शाया गया है तो 'सज़ा' कहानी अपनी उस पत्नी को दी गई सज़ा से बेतरह चौंकाती है जो शादी की रात को ही अपने प्रेमी के साथ भाग गई थी।

कहानी 'सत्ताइस साल बाद' में अभिजीत को इतने लंबे समय बाद आया मधुरिमा का फ़ोन उस अतीत में ले जाता है जिसे वह जतन करके भूला हुआ था। मधुरिमा के साथ जो कुछ घटा था, उसमें वह ख़ुद को अपराधी समझता था और अपराध बोध से ग्रसित रहा करता था। लेकिन, सत्ताईस साल बाद मधुरिमा से बात करने के बाद उसका बेवजह का अपराध बोध तिरोहित हो गया। वह बहुत हल्का महसूस करने लगा। उसने मन ही मन सोच लिया कि वह अब दादी बन चुकी मधुरिमा से मिलने ज़रूर जाएगा।

'1968-ए लव स्टोरी' प्रेम की अतल गहराइयों से उपजी ऐसी कहानी है जिसमें प्रेम का भोलापन अपनी पूरी शिद्दत से उभर कर सामने आया है। प्रेम किससे और क्यों हो जाता है, यह ऐसा प्रश्न है जिसका जवाब नहीं मिलता। कहानी का अंत बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है। सरिता के सम्मुख अपना प्रेम प्रकट न कर पाने की अपनी कमज़ोरी के प्रति कहानी के नायक को बहुत पश्चाताप होता है और वह हमेशा के लिए शहर छोड़कर जा चुकी सरिता के खाली कमरे में जाकर उस अख़बार पर बैठकर बेआवाज़ रोता है, जिसे सरिता जाने से पहले बिछाकर बैठी हुई थी।

'खुला पिंज़रा' कहानी प्रेम के पागलपन की कहानी है। यह प्रेम के उफनती नदी के उस रूप को सामने लाती है जो अपने उतावलेपन में अच्छे-बुरे सबको समेटकर चलते हुए किनारों के बंध तोड़ देता है।

'उतरती धूप' प्यार में धोखा खाने वाली उस लड़की की कहानी है, जिसका विश्वास मर चुका है और वह अविवाहित रहकर ज़िंदगी जीने का संकल्प ले चुकी है। लेकिन, सर्दी से काँपती उसकी देह को जब मुँडेर से उतरती धूप यह अहसास कराती है कि ज़िंदगी की धूप भी इसी तरह उसके हाथों से धीरे-धीरे फिसल रही है तो वह निश्चय कर लेती है कि अपने हाथ से ज़िंदगी की धूप पूरी तरह सरक जाने से पहले माँ के स्नेह और उसे जी-जान से प्यार करने वाले विकास के प्यार की गर्मी को अपनी मुट्ठी में बंद कर लेगी।

कहानी 'कोई रास्ता है तुम्हारे पास,' मदन का पड़ोस में रहने वाली विवाहित आंटी के प्रेम-जाल में फँसकर रह जाने की कहानी है। यह कहानी उसकी ज़िंदगी को एक ऐसे मोड़ पर लाकर छोड़ देती है, जहाँ से उसे आगे कोई रास्ता नज़र नहीं आता।

'गहरे तक गड़ा कुछ' कहानी प्रेम के उस रूप से परिचित कराती है जहाँ प्रेम हादसों का बयान बन जाता है। पाठक कहानी के साथ बहता चला जाता है और जब कहानीकार अमर के मुख से कहलवाता है -'आज सोचता हूँ, माँ एक औरत भी तो थी। उसकी ज़रूरतों और मजबूरियों को न तो समाज समझ रहा था और न ही मुझे समझने दे रहा था' तब पाठक की आत्मा उसे झकझोरने लगती है। वह इस तथ्य को स्वीकार करने लगता है कि जब असमय किसी ने अपने जीवन साथी को खो दिया हो तब उसे अकेलापन मिटाने और दु:ख-दर्द बाँटने के लिए किसी साथी और सहारे की ज़रूरत होती ही है। यह ज़रूरत उम्र के अंतिम पड़ाव में शिद्दत से उभरती है। मन की घुटन, घबराहट और मानसिक उलझन दूर करने के लिए उसे किसी का साथ मिलता है तो उसे अपराध क्यों माना जाना चाहिए।

'अमली' कहानी पढ़ते समय पाठक के सामने उस माहौल का स्पष्ट चित्र उभरने लगता है जिसका बयान कहानीकार द्वारा 'अमली' को सशक्त एवं प्रभावशाली चरित्र प्रदान करने के लिए किया गया है। यह इस कहानी की ज़बरदस्त सफलता है। प्यार में एक औरत किस सीमा तक जा सकती है, इसे देखकर पाठक स्तंभित होकर रह जाता है। प्रेम का यह ऐसा रूप है जो अमली के मर्दाना शरीर के भीतर छुपे नारी हृदय को सामने ले आता है।

'असहमत' कहानी उस लड़की की कहानी है जो अपनी गुरु साध्वी के कहने पर शरीर को गंदा मानती है और विवाह को घृणित समझकर उससे जीवन भर दूर रहने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। लेकिन, ऐसा कुछ घटित हो जाता है कि विवाह के लिए उसकी असहमति सहमति में बदल जाती है। कहानी के नायक और नायिका के बीच के सशक्त संवाद बहुत कुछ सोचने पर मजबूर कर देते हैं। एक बानगी देखिए- 'कैसी बातें कर रही हो तुम? हमारा शरीर ही हमारी पहचान है, हम इसे ख़ुद से अलग नहीं कर सकते। यदि यह शरीर ना हो तो हमारा अस्तित्व ही क्या रह जाएगा। यह सुंदर शरीर हमें ईश्वर ने बख़्शा है। फिर जिस शरीर में हमारी आत्मा रहती है, वह ग़लत, गंदा या अश्लील कैसे हो सकता है?'

कहानी 'हर सवाल का जवाब नहीं होता' मानव मन की अतल गहराइयों में उतरकर कुछ ऐसे प्रश्नों का जवाब खोजने लगती है, जिनके जवाब नहीं मिलते। कहानी की शुरुआत उदय और वंदना के वार्तालाप से होती है। वंदना नौवीं में पढ़ती है और उदय

दसवीं में। दोनों मन ही मन एक दूसरे को पसंद करने लगे है। बारहवीं के बाद उदय इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए दूसरे शहर चला जाता है। काफी समय तक दूर रहने के कारण वंदना के मन में उदय के प्रति प्रेम की प्रगाढ़ता कम हो गई। इस बीच वह उदय के पिताजी की ओर आकर्षित होती है। उन्हें भी वंदना की समीपता अच्छी लगती है।

उदय जब गर्मियों की छुट्टियों में घर लौटा तो उसे घर का माहौल बहुत बदला-बदला सा लगा। एक दिन उदय की माँ उसे कहती है- 'इनका मन मुझसे भर गया है और यह अब अपनी बेटी की उम्र की वंदना से इश्क लड़ा रहे हैं।' उदय को एकाएक इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह वंदना के घर जाता है। जो वंदना कभी भागकर उसके पास आ जाती थी, छुपकर अपने कमरे में बैठी रही और बाहर नहीं निकली। वंदना के व्यवहार से यह साफ हो गया कि माँ ने जो कुछ बताया, वह ग़लत नहीं था और वंदना इसमें पूरी तरह शामिल थी।

उस माहौल से बाहर निकलने की दृष्टि से उदय के पिताजी ने एक दूसरे शहर में अपने एक घनिष्ठ मित्र के साथ साझेदारी में एस्टेट एजेंसी का काम शुरू कर दिया। वहाँ जाकर भी उदय को सब-कुछ सामान्य नहीं लगा। क्या हो गया था उसके हँसते-खेलते परिवार को!

इस बीच वंदना की शादी हो जाती है। उदय का इंजीनियरिंग का कोर्स पूरा हो जाता है और हापुड़ की एक बड़ी कंपनी में उसे नौकरी मिल जाती है। उसकी शादी हो जाती है। वह बहुत खुश था और उसने सोच लिया था कि अब वह माँ-बाबूजी को अपने पास हापुड़ ले आएगा। पर, भगवान् को कुछ और ही मंजूर था, माँ अचानक चल बसी।

काफी दिनों बाद किसी शादी समारोह में उदय और वंदना की मुलाकात होती है। उदय के मन में हमेशा से घुमड़ते कुछ सवालों के जवाब तो मिलते हैं, पर हर सवाल का तो जवाब नहीं होता। वह वंदना और उसके पति को अपने घर आमंत्रित करता है। वृद्ध कृशकाय बाबूजी और बुढ़ापे की दहलीज़ पर खड़ी वंदना की मुलाकात पाठक को भीतर तक भिगो देती है।

कहानी 'दूध की धुली' पाठक को शुरू से अंत तक बाँधे रखती है। यह कहानी प्रेम के विश्वास और मर्यादा के निर्वाह की कहानी है।

'सफेद तितली' संग्रह की कहानियाँ काफी रोचक और उद्देश्यपूर्ण तो हैं ही, जीवन के सबसे ज़रूरी पहलू को जानने-समझने के लिए नई दृष्टि भी देती हैं। लगता है, कहानियों के पात्र वास्तविक जीवन से उठाए गए हैं। कोई भी पात्र, कोई भी घटना बनावटी नहीं लगती। हरेक के जीवन में कभी ना कभी प्यार का अंकुर फूटता है। कहानियाँ पढ़ते समय पाठक के सामने अपने ख़ुद के साथ या अपने किसी जानने वाले के साथ घटी घटनाएँ चलचित्र की भाँति उभरने लगती हैं और वह कहानी के साथ जुड़ाव महसूस करने लगता है। यह कहानीकार की बड़ी उपलब्धि है।

भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो उसे अलंकारी होने से बचाया गया है। हिन्दी से इतर शब्दों का भी बेहिचक प्रयोग किया गया है किन्तु कथा-प्रवाह में रुकावट महसूस नहीं होती। कहानियों में कहावतों-मुहावरों का भरपूर प्रयोग हुआ है। उनकी वजह से भाषा-सौंदर्य में वृद्धि ही हुई है।

कहते हैं कि हर लेखक अपने लेखन का प्रारंभ कविता से करता है। इसीलिए लेखक के भीतर बैठा कवि गद्य लेखन में भी यदा-कदा कविता करता प्रतीत होता है। यह बात आलोच्य कहानियों के लेखक पर भी सटीक बैठती है। कुछ उदाहरण देखिये - उस दूधिया रोशनी में उसका दूध का धुला चेहरा बादलों में घिरे चाँद सा दिखाई दे रहा था, धूप की चिड़िया फुदक कर मुँडेर पर बैठ गई, यादों के बुझे दिये फिर से जल उठे, भावनाएँ खुशबुओं की पतंगें बन कर पुष्पा तक पहुँचने लगी, काग़ज के कलेजे में भी दर्द पैदा कर रहे थे, गले तक उछलती दिल की धड़कनें, इत्यादि।

प्यार के विभिन्न रंगों में डूबी इन कहानियों में पाठक को अपने साथ बहा ले जाने की अद्भुत ताक़त है। इसके लिए लेखक और प्रकाशक को दिल से ढेर सारी बधाइयाँ।

000

नई पुस्तक

(कहानी संग्रह)

कथा-सप्तक

लेखक : ममता कालिया

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

'बेघर', 'नरक-दर-नरक', 'दौड़', 'दुक्खम सुक्खम', 'सपनों की होम डिलिवरी', 'कल्चर-वल्चर' जैसे बेहतरीन उपन्यास तथा 'छुटकारा', 'उसका यौवन', 'मुखौटा', 'जाँच अभी जारी है', 'सीट नम्बर छह', 'निर्मोही', 'प्रतिदिन', 'थोड़ा-सा प्रगतिशील', 'एक अदद औरत', 'बोलनेवाली औरत', 'पच्चीस साल की लड़की', 'ख़ुशक़िस्मत', दो खंडों में अब तक की सम्पूर्ण कहानियाँ 'ममता कालिया की कहानियाँ' जैसे कहानी संग्रह की लेखक हमारे समय की सबसे महत्त्वपूर्ण कथाकार उपन्यासकार ममता कालिया जी की सात कहानियों का यह गुलदस्ता पाठकों के लिए किसी उपहार से कम नहीं है। दूसरा देवदास, एक रंगकर्मी की उदासी, सेमिनार, मेला, मुखौटा, सेवा, आपकी छोटी लड़की यह सात महत्त्वपूर्ण कहानियाँ इस संग्रह में संकलित की गई हैं। कथा-सप्तक शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित की जा रही शृंखला है जिसमें महत्त्वपूर्ण कथाकारों की सात चयनित कहानियाँ प्रकाशित की जाती हैं। यह कथा सप्तक हाल में ही प्रकाशित होकर आया है।

000

पुस्तक समीक्षा

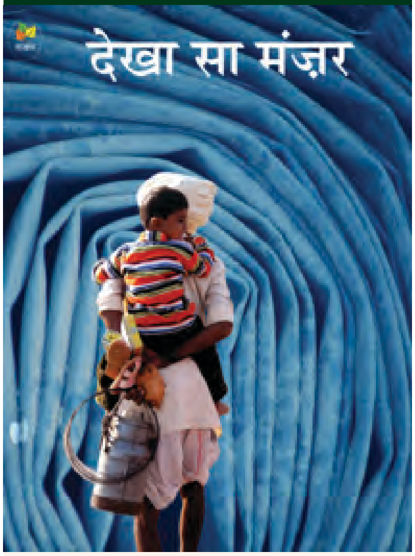

(ग़ज़ल संग्रह)

देखा सा मंज़र

समीक्षक : प्रकाश कान्त

लेखक : गोविन्द सेन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

छन्द के नाम पर पिछले कुछ सालों से ग़ज़लें ही ज़्यादा लिखी जा रही हैं। बीच-बीच में गीत या दोहे वग़ैरह नज़र आ जाते हैं। यूँ ग़ज़लें भले ही कबीर के समय से लिखी जाती रही हों लेकिन यह भी सही है कि हिन्दी में उसका बड़ा उभार सत्तर के दशक में दुष्यन्त कुमार के बाद आया। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें सत्तर के दशक के बेहद घटनापूर्ण समय की ज़मीन पर कही/लिखी गई ग़ज़लें थीं। अपने समय के सुलगते सवालों से जूझती हुईं ग़ज़लें ! राजनैतिक-सामाजिक सरोकारों वाली!! जो हाथों-हाथ ली गईं। इस तरह हिन्दी में ग़ज़ल का फार्म न सिर्फ़ नए सिरे से प्रचलन में आया बल्कि उसने कई नए-पुराने कवियों के लिए सम्भावनाओं के नए द्वार भी खोल दिये। नतीज़तन, अगले तमाम साल उसी परम्परा की ग़ज़लें लिखी जाती रहीं।

गोविन्द सेन के पिछले दिनों प्रकाशित संग्रह 'देखा सा मंजर' की ग़ज़लें जैसा कि उन्होंने ख़ुद स्वीकार किया है, उसी परम्परा की ग़ज़लें हैं। गोविन्द सेन मध्य प्रदेश के निमाड़ के एक आदिवासी अंचल से ताल्लुक रखते हैं। जहाँ विकास के ढोल-ढमाके अभी उतने कानफोड़ू स्तर के नहीं बजे हैं। कवि-कथाकार गोविन्द सेन इसी लोकांचल की निर्मिति हैं। उनकी रचनाओं में इस लोकभूमि की हवा-गंध महसूस की जा सकती है, वहीं के गाँव-गढार, रंग देखे जा सकते हैं। वहाँ की हवाओं में मौजूद हलकी-गहरी ध्वनियाँ सुनी जा सकती हैं। इस नए ग़ज़ल संग्रह में भी!

संग्रह की ज़्यादातर ग़ज़लें छोटी बहर की हैं जिनके बारे में बकौल ख़ुद वे शायर मंज़ूर हुसैन 'अफ़सर' से राय सलाह लेते रहे हैं और ग़ज़ल के व्याकरण को समझने-साधने की कोशिश की है! यह इसलिए भी उपयोगी रहा है कि ग़ज़ल के नाम पर इधर काफ़ी कुछ अराजकता जैसी देखने में आती रही है। बेशक, हिन्दी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल से काफ़ी अलग चीज़ है। वह उर्दू परम्परा की ग़ज़ल भी नहीं है, अगर अपवादों को छोड़ दें तो! उसने कभी उर्दू ग़ज़ल होने का दावा किया भी नहीं है। इसलिए हिन्दी का फार्म बनने के लिए जो कुछ बदलाव हो सकते थे वे उसने होने दिये हैं। अलग-अलग नामों से जाने-पुकारे जाने तक के! लेकिन मोटे तौर पर वह ग़ज़ल ही कहलाती रही। गोविन्द सेन ने इस सब की संग्रह की भूमिका में चर्चा की है और अपनी सीमाओं को भी विनम्रता के साथ स्वीकार किया है।

'ठहरे हम तो अनाड़ी बाबा / बिन पहिये की गाड़ी बाबा।' इस तरह के अशआर से इस संग्रह की ग़ज़लों की तासीर और तेवर समझे जा सकते हैं। वैसे, गोविन्द सेन इस फार्म में काम करते समय अपनी ओर से काफ़ी सजग-सचेत रहे हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि ग़ज़ल कहने की ज़रूरी शर्तें पूरी किये बिना क़ायदे की ग़ज़ल नहीं कही / लिखी जा सकती।

जैसा कि पहले कहा, गोविन्द सेन का रचनाकार लोक जीवन की निर्मिति है तो जाहिर है संग्रह की ग़ज़लों की भावभूमि भी बहुत कुछ लोक जीवन ही है। इनमें लोक जीवन की आज की ज़मीनी हक़ीक़त, वहाँ के आम आदमी के भीतरी-बाहरी संघर्षों की सहज अभिव्यक्ति हुई है, 'घिस गए हैं रोज़ चलकर / चप्पलों के हम तले हैं।' चप्पलों के घिस चुके तले यह शायद आज के सबसे निचली पायदान पर गुज़र-बसर कर रहे आदमी की ज़िदगी का सम्पूर्ण और प्रामाणिक बिम्ब है। वही आदमी जिसके कंधों पर विकास के भारी-भरकम रथ का जुआ रखा गया है। लेकिन जो विकास के फ़ायदों में अपनी वाजिब हिस्सेदारी से वंचित भी रहा है। बहुवन्दित-बहुचर्चित बढ़ती अरबपतियों की संख्या का एक सच यह भी है। एक सच यह भी है कि मौजूदा बाज़ार-समय में हर शख़्स एक बिकाऊ जिन्स है और वहाँ बिकने के लिए ख़ड़ा है।

इन ग़ज़लों में मुख्यत: हर तरह से मारे-पिटे, दबे-कुचले आदमी की हारी-थकी आवाज़ें हैं। जिसके बहुत थोड़े-से जो मामूली-से सपने थे वे शीशे की तरह टूटकर बिखर चुके हैं।

इन ग़ज़लों की ख़ासियत इनकी सादाबयानी है। रोज़मर्रा के जीवन से आयी हुई सादाबयानी! भाषा का आम मुहावरा! सादगी की भी अपनी एक ख़ूबसूरती होती है जो चमत्कृत नहीं करती बल्कि एक तरह की ख़ुशी ही देती है। संग्रह की ग़ज़लों से गुज़रते हुए इसे महसूस किया जा सकता है, 'दूर तक धूप ही धूप है ज़िदगी/कोई साया नहीं शायरी की तरह!'

000

प्रकाश कान्त
155-एल.आई.जी., मुखर्जी नगर, देवास-455001, म.प्र.
मोबाइल- 9407416269

परिचर्चा

(कहानी पर चर्चा)

ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे

(कहानीकार - पंकज सुबीर)
सन्दर्भ पत्रिका : वनमाली कथा
(संपादक - कुणाल सिंह)
चर्चाकार : वीणा संवाद प्रकल्प
समन्वयक : शैलेन्द्र शरण
संयोजक : गोविन्द शर्मा

शैलेन्द्र शरण
79, रेलवे कॉलोनी
आनंद नगर, खण्डवा
मप्र 45001
मोबाइल- 8989423676

आनन्द पेण्डसे-

निहायत ही गम्भीर और सामयिक विषय से रू-ब-रू कराती है यह कहानी। रोचकता से भरपूर होने के कारण पाठक को मानों बन्धक बना कर पूरी कहानी एक बैठक में पढ़ने के लिये मजबूर करती है। इसे पढ़ने की शुरुआत करना वैसा ही अनुभव है कि पत्नी आग्रह करे कि थोड़ा चख कर व्यंजन का स्वाद बताइए, और चखने के बाद श्रीमान जी कहें कि ऐसा करो, खाना ही परोस दो, क्योंकि अब रहा नहीं जा रहा।

मानसिक उपचार के लिये काउंसलिंग प्रदान करने वाले डॉ. सम्भव के एक मरीज़ राकेश कुमार का रिटायरमेण्ट के बाद अचानक सोशल मीडिया पर सक्रिय हो कर सद्य परिस्थिति के प्रति अपने आक्रोश को कड़वे शब्दों में अभिव्यक्त करना दोस्तों और सगे संबंधियों को नाराज़ कर जाता है। नफ़रत भरी टिप्पणियों से राकेश कुमार असहज हो जाते हैं और उसका विरोध करने का प्रयास करते हैं। किसी समुदाय के नाम के उल्लेख से कहानी में परहेज़ किया है लेकिन राकेश जी के संवाद से स्पष्ट है कि लेखक किस ओर इंगित कर रहा है। 'किसी व्यक्ति से केवल इसी आधार पर हम नफ़रत करें कि वह हमारे धर्म का नहीं है?'

उन्हें सोशल मीडिया के समूहों से बाहर निकाला जाता है, प्रत्यक्ष मिलने पर भी उपेक्षित और प्रताड़ित किया जाता है। परिणामत: वे सारी दुनिया से कट जाते हैं। लोगों की नज़र में वे मानसिक रूप से बीमार हैं क्योंकि एक वाक्य छोड़ कर और कुछ वे बोलते ही नहीं। वह वाक्य ही कहानी का शीर्षक है- 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे।' ढोंड़ नाम है एक छोटे से गाँव का, जो बुन्देलखण्ड में है। कहानी का मुख्य पात्र यहीं से बड़े शहर भोपाल आता है, नौकरी, शादी, बच्चे आदि सीढ़ियों को लाँघता रिटायरमेण्ट तक पहुँचता है।

काउन्सलर यानी डॉ. सम्भव को बात की तह तक पहुँचने के लिये कई सिटिंग्स करना पड़ती हैं। इन सिटिंग्स के दौरान मरीज़ की बातों से वे स्वयँ भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। तभी तो वे कहते हैं- 'असहमतियाँ दर्ज करना बन्द कर दीजिए। लोग चुप हो जाएँगे। आपने दुनिया को सुधारने का ठेका थोड़े ही लिया है।' डॉ. सम्भव कहीं न कहीं अपराध बोध से लज्जित भी हैं, तभी तो मरीज़ के समक्ष स्वीकारोक्ति देते हैं; 'हम चुप इसलिए नहीं हैं कि हम इन लोगों से सहमत हैं, हम चुप इसलिए हैं कि हम इन लोगों से डरे हुए हैं। आपको इनका डर नहीं है इसलिये आप बोलते हैं।' अचानक एक दिन पता चलता है कि राकेश कुमार कहीं चले गए हैं, लापता हो गए हैं। शायद किसी ऐसे टापू पर, जहाँ उन्हें कोई ढूँढ़ न सके।

बाज़ार फिल्म के लिए बशर नवाज़ के लिखे गीत के तीन टुकड़ों को कहानी में इतने सुन्दर तरीके से पिरोया है कि मन को छू जाता है। भाषा की रवानगी तो ख़ास है ही, आंचलिकता के साथ न्याय करती वर्णनात्मक शैली इस कहानी को अनूठा बनाती है।

कुल मिलाकर मन को छूने वाली यह कहानी पठनीय और मननीय है, कई तरह के सबक भी देने वाली है। आप संवेदनशील हों तो भी सोशल मीडिया पर अभिव्यक्ति की क्या सीमाएँ होना चाहिए, इसका बहुत भावनात्मक तरीके से चित्रण हुआ है।

000

कैलाश मण्डलेकर, खण्डवा-

पंकज सुबीर की कथा 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' अपनी बुनावट क्राफ़्ट और अंतर्वस्तु की दृष्टि से अत्यधिक रोचक और मार्मिक है। पंकज सुबीर की कहानियों के शीर्षक जितने अटपटे और अनगढ़ होते हैं, उनकी कहानियाँ उतनी ही रोचक और पठनीय हुआ करती हैं। इस कथा में उन्होंने जिस पात्र को रचा है वह हमारे ही इर्दगिर्द का आदमी है, जो साइबर बिरादरी से त्रस्त और बहिष्कृत एक ऐसा चरित्र है, जिसके मन के किसी कोने में अब भी एक भोला, निष्कलुष और निर्विकार-सा गाँव मौजूद है और जिसे सोशल साइट्स अथवा व्हाट्सएप आदि की क्रूरता रोज़-ब-रोज़ मार रही है। धीरे-धीरे यह तिरस्कार इतना बढ़ जाता है कि वह मनोरोग का शिकार हो जाता है और अंतत: पलायन को विवश भी। कहानी का अंत बहुत करुण,

अनिश्चित और मिस्टीरियस-सा है। पर यही हमारे समय का यथार्थ भी है। सोशल मीडिया हमारे दौर की दुर्निवार सचाई है। हम सब उससे ऊबे हुए हैं पर मकड़ी के जालों की तरह उसमें फँसते जा रहे हैं। इस यथार्थ और ऊब को एक लंबी कथा में गूँथना पंकज के कथा कौशल का बेजोड़ उदाहरण है।

000

सुनीता परसाई-

'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' पंकज सुबीर की सशक्त पाठक को बाँध कर रखने वाली उत्कृष्ट कहानी है। मानसिक संवेदनाओं का बहुत ही सुन्दर समावेश है। अवसाद ग्रस्त व्यक्ति की स्थिति का बहुत ही गंभीरता से सटीक वर्णन किया गया है। आज की आभासी दुनिया व उसके परिणामों को अवगत कराती समसामयिक कथा बन पड़ी है। 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' शीर्षक पढ़ते ही पढ़ने की उत्सुकता जागी। बचपन के सुदृढ़ बाल-विचारों के मिटने के आक्रोश को कहानीकार ने सही उकेरा है। अपनों या समीपस्थ लोगों के विचारों पर हमारे जीवन पर असर पड़ता है यह भी दर्शा दिया है कहानीकार ने। बहुत सुंदर हृदयस्पर्शी कथानक पढ़ कर, नायक को अपने आसपास के लोगों में समाया-सा जान पड़ता है। अपने उद्देश्य को पूर्ण करती पाठक को सोचने विचारने को मजबूर करती कहानी है।

000

गरिमा चवरे-

पंकज सुबीर की कहानियों के पात्र, स्थान, घटनाएँ आरंभ में बहुत ही सामान्य प्रतीत होते हैं, कि पाठक बहुत ही सहजता से उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेता है। कहानी आगे बढ़ते हुए अपने कथ्य के कई आयाम खोलती है। 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' कहानी में भी प्रकृति के दृश्य के माध्यम से विभिन्न मनोभावों के अनुसार भिन्न दृष्टिकोणों के चित्रण से प्रारंभ हो कर कहानी डॉ. सम्भव के माध्यम से पाठकों को केंद्रीय पात्र राकेश कुमार से परिचित करवाती है, जिसके अवचेतन में गाँव से आये हुए किशोर के समक्ष आईं दुरूह परिस्थितियों से पलायन कर अपने पैतृक गाँव चले जाने का भाव रहा है। लेकिन कभी ऐसा हो नहीं सका।

लम्बे समय तक स्थितियों के अनुसार स्वयं को ढालते हुए, एक प्रत्यक्ष रूपेण सामान्य जीवन जीते हुए, ढोंड़ वाला राकेश कुमार दमित सा हो गया था। लेकिन वास्तव में वह अपनी प्रतिकार क्षमता के साथ अंतर में जस का तस उपस्थित था।

और समाज हमेशा से ही प्रतिकार करने वालों के, सामान्य रूप से प्रश्न कर लेने वालों के, तर्क के साथ बातें करने वालों के विरुद्ध ही रहा है। यहाँ भी वही स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और राकेश कुमार अपने आप को बाह्य जगत् से साम्य स्थापित करने में अनुपयुक्त पाता है, और कहानी एक त्रासद अंत की ओर मुड़ जाती है, और अपने साथ छोड़ जाती है कुछ सवाल। क्यों नहीं मनुष्य असहमतियों के प्रति, विभिन्न विचारों के प्रति सहिष्णु हो सकते? क्यों नहीं हम सहअस्तित्व की अवधारणा के साथ न्याय कर पाते? क्यों एक भीड़, विवेक और तर्क के साथ की गई बातों को सहन नहीं कर पाती? एक मंथन उत्पन्न करने वाली उम्दा कहानी।

000

संध्या पारे-

'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' कहानी मनोविज्ञान पर आधारित है साथ ही कथानक में अनेक बातें, विषय समेटे हुए है। दो विरोधी बातों पर ध्यान आकर्षित किया गया है। गाँव व शहर का परिवेश, व दो धर्मों वाली विचारधारा, दो राजनीतिक दलों वाली विचारधारा, प्रगतिशील और पिछड़ी विचारधारा के बीच हमेशा द्वंद्व चलता रहता है। कहानी में मुख्य रूप से दो ही पात्र हैं, राकेश मरीज़ एवं उनके डॉ. सम्भव। राकेश का किशोरावस्था तक का जीवन गाँव में और बाद का जीवन भोपाल में। जहाँ गाँव धीमी गति से बढ़ने वाला था, वहीं शहर दौड़ने वाला था। इन सबके बीच राकेश नाम का पात्र द्विखंडित व्यक्तित्व के कारण क्रोधी स्वभाव का बन जाता है। माता-पिता के द्वारा छिपकर, परिजनों को बिना बताए उनका मुंडन करवा देना बालक राकेश के मन में गाँठ बन जाती है कि माता-पिता उन्हे प्यार नहीं करते हैं। भोपाल शहर की अनेक विशेषताओं को बताने के साथ ही सूर्य की रोशनी के महत्त्व को भी डॉ. साहब के माध्यम से बता दिया गया है।

कहानी फिर मुख्य पात्र के आसपास घूमने लगती है। राकेश के किशोरावस्था से रिटायरमेंट तक का सफ़र एक आम आदमी की ज़िंदगी की तरह गुज़र जाता है। रिटायरमेंट के बाद पुन: उनके बचपन वाला राकेश बाहर आ जाता है और आभासी दुनिया में वे डूबने, लड़ने, अपनी बात को सही साबित करने की कोशिश करने लगते हैं और सोशल मीडिया के अनेक ग्रुप से निकाल दिए जाते हैं। एक बार जब वास्तविक दुनिया में भी अपनी अलग विचारधारा के कारण दोस्त के घर से निकाल दिए जाते हैं और पत्नी भी उनकी ही ग़लती निकालती है, तब वे सहन नहीं कर पाते और मनोरोगी बन जाते हैं। समाज के इस रूप को अच्छे से दर्शाया है, जिसमें अलग राह के लिए रुकावटें अनेक हैं। राजनीतिक दलों का भी अच्छा चित्रण है जो कि समाज को किसी भी आधार पर बाँटने को तैयार बैठे है।

डॉ. सम्भव को भी अच्छे रूप में प्रस्तुत किया गया है जो अपने मरीज़ के बारे में इतना सोचते हैं। कुछ ठीक होने के बाद वे किसी लेखक की रचना को पढ़कर बिना बताए कहीं चले जाते हैं फिर लौटकर कभी नहीं आते। एक बच्चे की सही परवरिश ना हो तो वह जीवन के किसी भी मोड़ पर अपना संतुलन खो बैठते हैं। बच्चों को मन से मज़बूत बनाना चाहिए ताकि वह मुसीबतों का सामना कर सके, भागना ना सीखे।

000

कुँअर उदयसिंह अनुज-

कहानीकार ने मुख्य पात्र राकेश कुमार के बचपन की परिस्थितियों का वर्णन अत्यंत विस्तार से किया। इसके पीछे उनकी मंशा यह रही होगी कि पाठक यह जान सकें कि माता पिता के स्नेह से वंचित राकेश गाँव में रहकर किस तरह से मानसिक रूप से विकसित होता है। यही कारण है कि बड़ा होने पर वह गाँव से भोपाल आकर भी उसी दुनिया में जीता है और बार बार गाँव लौटने की ज़िद करता है।

फिर धीरे-धीरे वह उस मानसिकता से बाहर आकर पढ़ लिखकर एक शहरी नागरिक बनता है। नौकरी करता है और रिटायर्मेंट के बाद जिस कुचक्र में फँसता है वह है आज का मोबाइल वाला सोशल मीडिया। कहानीकार का मूल उद्देश्य भी यही बताना है कि सोशल मीडिया में उलझकर आज सामान्य आदमी जिस पंक में धँस गया है उससे बाहर नहीं निकल पाता। राजनीति, धर्म, रिश्ते इनके गुंजलक में फँसकर वह अपनी पहचान खो देता है और स्वयम् को अपनी तार्किकता से मित्रों के बीच विशिष्ट साबित करने के चक्कर में मनोरोगी हो जाता है। ऐसी दशा में वह फिर उसी वाक्य को बार बार दोहराता है कि हमें कोई गाँव का मिल गया तो उसके साथ ढोंड़ लौट जाएँगे। लेकिन राकेश उस गुंजलक से छूट नहीं पाते और घर-परिवार छोड़कर कहीं चले जाते हैं। यह ट्रेजडी है इस सोशल मीडिया के दुष्प्रभाव की। सबक यह है कि इससे जितना हो सके बचा जाय। कहानी का ताना-बाना बहुत अच्छा बुना है लेखक ने।

000

महेश चन्द्र जोशी-

पंकज सुबीर की कहानी 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' एक अद्‌भुत कहानी है। कहानी की भाषा शैली आरंभ से अंत तक पाठक को बाँधे रखने में सक्षम है। यह कहानी एक महानगर में ठेठ गाँव के गुम हो जाने की कहानी है। भोपाल जैसे महानगर की चकाचौंध ढोंड़ जैसे बुन्देलखण्ड के ठेठ गाँव को अपनी ओर आकर्षित करती है और धीरे-धीरे शहर पूरे गाँव को किस तरह लील जाता है, यह समूचा घटनाक्रम इस कहानी में चलचित्र की भाँति आँखों के सामने रील-दर-रील चलता है।

पेट की सबसे बड़ी समस्या का हल ढूँढ़ने हेतु मजबूरीवश अनिच्छा से शहर में आया हुआ गाँव एक लम्बे अरसे तक अपने भोलेपन से मुक्त नहीं हो पाता और बार-बार अपनी जड़ों की ओर लौटना चाहता है लेकिन परिस्थितियाँ उसे वापस लौटने नहीं देती और धीरे-धीरे गाँव भी अपनी संपूर्ण मासूमियत खोकर शहर में तब्दील हो जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में गाँव की तटस्थता को भी इसलिए मरना पड़ता है कि वर्तमान परोक्ष महाभारत के समय में आपको या तो पांडव सेना या कौरव सेना का समर्थक होना ही पड़ेगा यदि तटस्थ रहे, तो दोनों सेनाएँ अपने अस्त्र-शस्त्र लिए आपको भेदने के लिए तैयार खड़ी हैं।

पंकज सुबीर की मेहनत इस कहानी में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। कहानी के नायक मानसिक रोगी राकेश कुमार की मन:स्थिति में परिवर्तन के मनोवैज्ञानिक कारण को डॉ. सम्भव के माध्यम से स्पष्ट करने में, नायक के दिमाग़ के 'केमिकल लोचे' को चिकित्सकीय भाषा में उल्लेख करने में कहानीकार का श्रम साफ नज़र आता है। पंकज सुबीर की भाषा कहानी को कहानी नहीं रहने देकर वास्तविकता के निकट तक ले जाने में सफल रही है। इस कहानी ने यह भी साफ कर दिया है कि अनचाहे ही आभासी दुनिया में विचर रहा आदमी अपने परिवार से, समाज से किस तरह दूर हो जाता है। आभासी दुनिया हमें हक़ीक़त से दूर एक ऐसे सफ़र पर ले जा रही है जिसका कोई अन्त नहीं है। इस कहानी का स्पष्ट संदेश यह है कि 'अपनी जड़ों की ओर लौटो'।

कुल मिलाकर यह कहानी मात्र राकेश की या बुन्देलखण्ड के ठेठ गाँव की या भोपाल की या डा. संभव की कहानी से आगे हमारी अपनी कहानी भी है। एक उम्दा कहानी।

000

डॉ. रश्मि दुधे-

पंकज सुबीर की लिखी हुई कहानी वास्तविकता को सिद्ध करती है जिसमें निरंतरता तो है ही साथ ही घटनाओं का लंबा सिलसिला रहा है जिनका अंत सदैव एक जैसा ही रहा। नियति को बख़ूबी उकेरा है कि अगर आप धारा के विपरीत चलने की कोशिश करोगे तो निश्चित ही आपके आत्मबल को तोड़ने वाले आपके अपने ही होंगे। डॉ. सम्भव और मरीज़ राकेश कुमार के चरित्र समाज को बेहद महत्त्वपूर्ण संदेश देना चाहते हैं कि आज का समय सिर्फ आपको मनोचिकित्सक के पास ही पहुँचा सकता है, किंतु मनोचिकित्सक ख़ुद भी समाज विरोधियों का निशाना बने हुए हैं। मुझे लगता है कि सोशल मीडिया का सबसे अधिक प्रभाव मोबाइल यूज़ करने वालों के तंत्रिका तंत्र पर निश्चित ही पड़ता है। प्रेम उदासी देता है चाहे इंसान से हो, विचारधारा से हो या फिर वर्चुअल मीडिया से हो। जिन दोस्तों पर भरोसा किया वे अधिक ज़िम्मेदार हैं जिन्होंने राकेश कुमार की मानसिक स्थिति पर कुठाराघात किया और उन्हें इस तरह अदृश्य होने पर मजबूर किया। मनोविज्ञान में एरिक्सन की थ्योरी है कि विकास की आठ अवस्थाओं में अगर किसी भी अवस्था में संवेग आहत होते हैं या फिर उन्हें विकसित होने का वातावरण नहीं मिल पाता है, तो बाइपोलर पर्सनालिटी होने का ख़तरा अधिक होता है। राकेश कुमार इस बात का रिफ़रेन्स केस सिद्ध होते हैं। लेखन को और लेखक को सैल्यूट। ग़ज़ब का प्रासंगिक दृश्य का विश्लेषण करके हर एक सीक्वेंस को उकेरा है। सभी पाठक सोशल मीडिया के शिकार हैं। दुनिया तब भी ज़्यादा ख़ूबसूरत थी जब पड़ोस की खिड़की से झाँकती साँवली भी उतनी ख़ूबसूरत लगती थी, जो शायद ही कभी पार्लर गई हो। किंतु आज के समय में तरह तरह की डीपी लगाना, स्टेटस शेयर करने जैसे काम बड़े ही तत्परता से किए जा रहे हैं। बहुत कुछ, बहुत कुछ समालोचित तरीके से पढ़ा जाने और लिखा जाने को प्रेरित करती कहानी में पाठक ख़ुद ही खो जाता है।

राकेश जी का किरदार और उनका परिवार समाज को एक सशक्त संदेश देता है कि माता पिता की उपेक्षा से किस तरह से अतृप्त संवेग बचपन में भी और हर उम्र में उभर कर जीवन से ही असन्तुष्ट हो जाते हैं। रिश्तों पर से भरोसे का उठ जाना अधिक घातक प्रभाव है। मुझे लगता है एक बहुत ही प्रेरक प्लॉट लेकर कहानी को लिखा गया। हर एक पृष्ठभूमि जिसमें इतिहास और वर्तमान परिदृश्य पर गहरा कटाक्ष दबी ज़ुबान से नासमझों पर किया गया। ज्ञान का कोई स्थान नहीं है सिर्फ़ वही कहो जो लोग सुनना चाहते हैं। लेकिन राकेश कुमार ने हार नहीं मानी। उनका अचानक ग़ायब हो जाना भी तो एक

सबक ही है। और तो और उसमें भी डॉ. संभव भी नहीं चाहते कि उनके मरीज को पुन: अशांति मिले। सभी के जीवन दाँव पर लगे हैं। सँभल कर चलना ही अंतिम उपचार है। कभी किसी राकेश कुमार को डॉ. सम्भव की आवश्यकता न पड़े। सेरोटोनिन की कमी ना हो इस बात का ध्यान रखा जाए। अद्‌भुत लेखन सत्य से कहानी की ओर ले जाने के लिए पंकज सुबीर को साधुवाद।

000

शैलेन्द्र शरण-

गहराई से आरंभिक पंक्तियों को अनुभूत किया जाए तो पाठक की संवेदनशीलता कहानी की आरंभिक पंक्तियों में उसे अंत का संकेत देने लगती हैं। इतना ज़रूर है कि आप अंत की घटना का सटीक अंदाज़ नहीं लगा पाते किंतु इतना ज़रूर कह सकते हैं कि इस कहानी का अंत उदास करेगा, परेशान करेगा या बदहवास छोड़ जाएगा। पंकज सुबीर की अधिकांश कहानियों के अंत अप्रत्याशित होते हैं। सफल कहानी और कहानीकार के कथानक का आधार यथार्थ होता है। यही नहीं कहानी में आने वाले विवरण भी इतने सच्चे होते हैं कि देखे हुए से लगते हैं। विवरण के बाबजूद ये विवरण कहानी में इतने घुल मिल जाते हैं कि इनके होने पता ही नहीं चलता। अवसाद और भोपाल के संबंध में इस कहानी के विवरण ऐसे ही हैं। यह पंकज सुबीर की भाषा का कमाल है।

पंकज सुबीर लिखते हुए ऐसी बात बार बार कह देते हैं जो आपके पढ़ने पर अवरोध के लिए बाध्य करती है जैसे 'भारत में रहने वाले आम आदमी की विशेषता यही है कि करोड़ों-करोड़ लोगों की कहानी का मध्य भाग लगभग एक जैसा होता है' इस तरह के वाक्य हमें रोक कर विचारमग्न कर देते हैं। इस वाक्य का आना लेखक के बारे में दो संकेत देता है, एक तो उनका अध्ययन असीमित है, दूसरे उनकी पंक्तियाँ इतनी कसावट लिए होती हैं कि उसमें से कोई शब्द कम नहीं किया जा सकता। उनका सम्पूर्ण लेखन इसी तरह कसा हुआ होता है।

पंकज सुबीर वर्तमान के सच को भी सच की तरह कह देते हैं जैसे- 'सोशल मीडिया सिर्फ दो भावों से भरी है, गर्व और घृणा।' पंकज सुबीर का लेखन इतना स्वाभाविक और कभी इतना अप्रत्याशित होता है कि स्तब्ध रह जाना भी स्वाभाविक हो जाता है- 'गीत समाप्त होते ही राकेश कुमार झटके से उठकर केबिन से बाहर चले गए। डॉ. सम्भव को तालियाँ बजाने का मौका दिए बग़ैर'। इस तरह के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

कहानी के इस अंत का अंदाज़ लगाना तो है ही कठिन। अंत का जो अंश पंकज सुबीर ने राकेश कुमार द्वारा भेंट की गई किताब पर (एक अवसाद के रोगी की तरफ से) लिखा है वह काबिल-ए-तारीफ़ है, अदभुत है। किसी कविता की तरह एक अंश 'जाना हिन्दी की सबसे ख़ौफ़नाक क्रिया है'

राकेश कुमार का किताब पर जन्मदिन के दो दिन बाद की तारीख़ लिखना भी कथाकार की ऐसी विशेषता है जो उसे सबसे अलग ला खड़ा करती है, जहाँ से सिर्फ लेखक ही दिखाई पड़ता है।

गालिब की ग़ज़लों की पंक्तियों का अत्यंत मार्मिक और हृदयस्पर्शी प्रयोग लेखन को और ऊँचाइयाँ देता है। - हुए हम जो मरकर रुसवा, हुए क्यों न ग़र्क-ए-दरिया, न कभी जनाज़ा उठता, न कहीं मज़ार होता।

000

श्याम सुंदर तिवारी-

पंकज सुबीर अपनी कहानियों में वास्तविकता उत्पन्न करने वाले माहिर कलाकार हैं। उनकी कहानियों को पढ़ते हुए किसी चलचित्र को देखने का आभास होता है। पाठक स्थान, समय और स्वयं के विचारों से दूर केवल कहानी के पात्रों के साथ जीने लगता है। उनकी यह कहानी पूर्णत: एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। और वर्तमान समय को उद्‌घाटित करने में पूर्णत: सफल है।

गाँव का एक सीधा सादा लड़का अचानक शहर आकर शहर को पचा नहीं पाता है। बचपन का एकाकीपन, गाँव की रसानुभूति और शहर के रूखेपन में साम्य नहीं बिठा पाता है। राकेश कुमार को कोई बताने वाला ही नहीं था, गाँव से अलहदा शहर के जीवन का अर्थ। धीरे-धीरे मन में गाँठें बनती चली गईं और अंतत: वही हुआ जो सम्भाव्य था -'मनोविकार'। डॉ. सम्भव जैसा सिद्धहस्त चिकित्सक बहुत हद तक कहानी के नायक को बीमारी से बाहर निकालने में सफल तो रहता है। लेकिन वह नायक की अंतिम ग्रन्थि को खोल पाते इसके पूर्व ही वह अबूझ यात्रा पर निकल जाता है।

कहानी बिल्कुल अलग सा नयापन लिए है। कहानी के बीच बीच में लेखक के पहेलियों से समृद्ध वाक्य पाठक को विचारों के चक्रवात में उड़ा ले जाते हैं। बार-बार वह स्वयं से प्रश्न करता है ऐसा क्यों? अनेक स्थलों पर लगता है यह लेखक का भोगा हुआ यथार्थ तो नहीं?

एक जगह कहानी में आता है- 'अगर आपको हमारी नहीं सुननी है, तो मेरे जैसे लोगों को अंतरिक्ष यान में बिठा कर किसी दूसरे ग्रह पर भेज दीजिए। आपके हिसाब से मैं और मेरे जैसे लोग इंसान नहीं, एलियन हैं।'

पंकज सुबीर पाठक को अपनी अद्‌भुत शिल्प सिद्धहस्तता से चौंका देते हैं। और कहानी के ही माध्यम से यह संदेश देते हैं, कि वे मानवता के पक्षधर हैं। किसी धर्म, सम्प्रदाय, कट्टरता और समस्त कलुषों से बहुत दूर।

'करोगे याद तो हर बात याद आएगी' लेखक द्वारा इस गीत की पंक्तियों को कहानी में लाना कहानी का मूल्य रुपये के मुकाबले डॉलर की तरह बढ़ा गया। आहत मानसिकता के नायक वाली कहानी में डॉ. सम्भव के माध्यम से बरखा के सुहाने मौसम की फुहारों की तान छेड़ना यह पंकज सुबीर जैसे कहानीकार के बस की ही बात हो सकती थी।

और अंत में भूपेंद्र के गीत का अंतिम अंतरा- 'गली के मोड़ पर सूना सा कोई दरवाज़ा.....

कहानी को पाठकों के लिए जीवन का अनदेखा दरवाज़ा खोलने के लिए छोड़ कर मुस्कराते हुए चल देता है।

पाठक के मुँह से निकलता है। लम्बी उच्छवास के साथ 'वआआह'

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

मधु कांकरिया के उपन्यासों में स्त्री जीवन

शोध लेखक : मुनेन्द्र भाटी

मुनेन्द्र भाटी
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
एन.ए. एस. महाविद्यालय, मेरठ

भारतीय समाज में स्त्री की स्थितियाँ सामान्य रूप में कहीं भी परिलक्षित नहीं होती हैं। सदियों से भेदभाव झेलती आई भारतीय स्त्री की वर्तमान दशा और दिशा भी चिंतनीय ही बनी हुई है। आज भी उसके साथ सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक आदि स्तरों पर भेदभाव होता देखा जाता है। यद्यपि शोषण का स्तर कम-ज़्यादा हो सकता है किंतु पूर्ण रूप से उसकी समाप्ति अभी भी नहीं सोची जा सकती है। मधु कांकरिया ने प्रतिदिन घटित होती स्त्री के प्रति इसी ऊँच-नीच की विभिन्न परिस्थितियों को अपनी लेखनी के माध्यम से विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

बीज शब्द - स्त्री विमर्श, सामाजिक समस्या, बलात्कार, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति।

मधु कांकरिया ने उपन्यास लेखन का प्रारंभ नब्बे के दशक में किया। पहले ही उपन्यास से उन्होंने पाठकों एवं समीक्षाकारों का ध्यानाकर्षण पर्याप्त रूप से किया। उनका अधिकांश लेखन सामाजिक रूढ़ियों की पड़ताल करते हुए उनका विरोध करने पर आधारित माना जा सकता है। समाज में बहुव्याप्त नाना प्रकार के अंर्तविरोधों की तह तक पहुँचते हुए मधु कांकरिया उन सबको पूरी लेखकीय प्रतिबद्धता एवं ईमानदारी के साथ पाठकों के समक्ष लाने का प्रयत्न करती हैं। तथ्यान्वेषण एवं खोजी दृष्टि के साथ मधु कांकरिया ने विभिन्न स्रोतों से तथ्य संग्रहणोंपरांत पर्याप्त चिंतन-मनन करके एक उत्कृष्ट कृति अपने पाठकों को देते हुए अब तक पाँच उपन्यास और लगभग तीन कहानी संग्रह दिए हैं। उनके उपन्यासों में सलाम आख़िरी (2002), पत्ताखोर(2005), अंत में ईशु(2006), सेज पर संस्कृत(2008), खुले गगन के लाल सितारे (2008), और सूखते चिनार(2012) प्रकाशित हो चुके हैं। मधु कांकरिया के उपन्यासों में विभिन्न सरोकारों को समेटने के प्रयासों पर चर्चा करते हुए स्त्री संबंधी पक्षों पर विवेचन अग्रलिखित रूप में प्रस्तुत है।

मधु कांकरिया के उपन्यासों में स्त्री जीवन की समस्याएँ

निरंतर परिवर्तनशीलता प्राकृतिक तथ्य है। जो कल था वह आज नहीं है और जो कल होगा वह आज नहीं है। इसी प्रक्रिया के तहत समाज प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक गतिमान रहता है। मधु जी ने जब लेखन प्रारंभ किया उस समय तक भारतीय समाज में भूमंडलीकरण अपनी जड़ें जमा चुका था। समस्त विश्व को एक ग्राम बनाने की प्रक्रिया के रूप में पूँजीपतियों ने देश के विभिन्न हिस्सों पर अपना आधिपत्य करना पूरी तरह से प्रारंभ कर दिया था। औद्योगिक प्रगति ने समाज पर व्यापक प्रभाव बनाना भी एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में प्रारंभ कर दिया था। उसी के तद्नुरूप लेखकों के भी सामाजिक सरोकार उनके लेखन के माध्यम से प्रस्तुत होने लगे। मधु कांकरिया ने अपने उपन्यासों में समाज के विभिन्न सरोकारों का चित्रण किया है। स्त्री के प्रति समाज में पुरुष की सोच नकारात्मक ही रही है। स्त्री के विकास के मार्ग को अवरोधित करने का भरसक प्रयास पुरुषों द्वारा किया जाना कुछ नया नहीं है। सामाजिक परिवर्तन आने से स्त्रियों की स्थितियों में भी निश्चित रूप से कई परिवर्तन आए हैं। शिक्षा के बढ़ते प्रसार से स्त्रियों की स्वतंत्रता के मार्ग की बाधाएँ कुछ कम अवश्य हुई हैं किंतु परंपरागत मानसिकता परिवर्तन के स्तर पर स्थितियाँ अभी भी उतनी बदली नहीं हैं। खुले गगन के लाल सितारे उपन्यास में उपन्यासकारा द्वारा मूलत: नक्सलवादी आंदोलन के दौरान हुए विभिन्न घटनाक्रमों की चर्चा की गई है। भले ही परिस्थितियाँ अनुकूल रही हों या विपरीत, स्त्री पुरुष की सहगामिनी तो है ही, इसलिए उपन्यास में कई स्तरों पर पुरुषों की स्त्री के प्रति सोच का उजागर होना भी अवश्यंभावी है। स्त्री चाहे कितनी ही मेधावी क्यों न हो पुरुष उसकी मेधा को मान्यता देने से परहेज़ ही करता रहा है।

सलाम आख़िरी उपन्यास में वेश्याओं की स्थिति को लेखिका ने पूरी ईमानदारी से पाठकों के सामने लाने का प्रयास किया है। ऐसी स्त्रियाँ संभवत: बहुत कम ही होंगी जो स्वेच्छा से वेश्या जीवन का चुनाव करें, परंतु ऐसे मामले भी देखने में आने लगे हैं जहाँ स्त्रियाँ आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए स्वेच्छा से अल्पकालीन देह व्यापार को अपनाने लगी हैं। निराला के प्रथम उपन्यास अप्सरा में वेश्या जीवन को इसी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। सर्वेश्वरी अपनी पुत्री

कनक का पालन-पोषण इस प्रकार करती है कि उसके मन में पुरुष के प्रति प्रेम नहीं बल्कि वह पुरुष की स्वभावगत दुर्बलताओं का लाभ उठाने की भावना दृढ़ होती जाती है। इस वृत्ति द्वारा उसे अपार संपत्ति की प्राप्ति तो होती है, लेकिन प्रेम से प्राप्त होने वाले आत्मतोष का परिचय उसे नहीं मिल पाता। माता सर्वेश्वरी ने कनक को सिखलाया था, किसी को प्यार मत करना। हमारे लिए प्यार करना आत्मा की कमज़ोरी है। यह हमारा नहीं। (निराला, अप्सरा, पृष्ठ सं. 17) परंतु यह भी सत्य है कि अधिकांश स्त्रियाँ देह व्यापार या वेश्यावृत्ति स्वेच्छा से नहीं करती हैं।

सेज़ पर संस्कृत उपन्यास में मधु जी द्वारा जैन धर्म में व्याप्त विसंगतियों को उजागर करने का कार्य किया है। समाज में लगभग प्रत्येक स्तर पर स्त्री के साथ अत्याचार होता है। साधु संतों के संसार को भारत में बहुत पवित्र एवं वासनारहित माना जाता रहा है। परंतु विगत दशक में साधुओं द्वारा स्त्रियों के साथ किए गए शारीरिक शोषण के मामले उजागर होने तथा कई साधुओं को भारतीय संविधान की दंड सहिता के तहत दंडित किए जाने के मामलों से परंपरागत छवि में बहुत परिवर्तन आया है। अब साधु पवित्र नहीं माने जा रहे हैं। थे तो पहले भी नहीं परंतु मामले सामने नहीं आ पाते थे। यह शिक्षा का ही प्रभाव है कि भीगी बिल्ली मानी जाने वाली स्त्रियाँ भी अब शेरनी बनकर सामने आ रही हैं। इस उपन्यास में साधुओं की दुनिया के भीतर के सच को समाज के सामने लाने का बहुत ही साहसी कार्य मधु कांकरिया ने किया है। परंपरागत रूप से यह माना जाता रहा है कि साधु जीवन अपनाने से व्यक्ति की काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और साधु साधना में ही ख़ुद को डुबा लेता है परंतु इसे उपन्यास को पढ़कर सोच परिवर्तित हो जाती है।

सूखते चिनार में कश्मीर क्षेत्र में तैनात आर्मी वालों, आतंकवादियों और वहाँ की आम जनता की गतिविधियों का जीवंत ब्यौरा मधु कांकरिया द्वारा प्रस्तुत किया गया है। कश्मीर के आम नागरिकों में वहाँ की स्त्रियों का ज़िक्र भी लेखिका द्वारा किया गया है। स्त्री किसी भी देश, प्रदेश में रहती हो उसके साथ होने वाला व्यवहार लगभग एक जैसा ही होता है। पितृसत्ता स्त्री का दमन करने का माध्यम ढूँढ़ ही लेती है। कश्मीर भी अपवाद नहीं है, वहाँ भी स्त्रियों का उत्पीड़न हर प्रकार से होता है।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए अस्मिता का प्रश्न सर्वोपरि होता है। किसी भी व्यक्ति के मूलभूत अधिकारों पर जब कोई वर्चस्ववादी व्यक्ति प्रहार करता है तो उस समय उसकी अस्मिता अर्थात पहचान पर संकट आ ही जाता है। भारत में तो हाशियाकृत समुदायों की लंबी सूची है जिसे सदियों से वर्चस्ववादियों ने अपनी पहचान के प्रति सजग होने ही नहीं दिया और जिसने भी अस्मिता हेतु संघर्ष करने का दुस्साहस किया उसे समाप्त कर दिया गया। आज भी भातर में हाशियाकृत समुदाय अपनी अस्मिता हेतु संघर्षरत हैं जिनमें स्त्री, आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, मज़दूर, अश्वेत तथा किन्नर आदि प्रमुख कहे जा सकते हैं। स्त्री भी समाज में अपनी अस्मिता हेतु निरंतर संघर्षरत है। स्त्री स्वयं को शिक्षित करके पितृसत्ता को चुनौती देने का बीड़ा उठाए आगे बढ़ रही है। पूर्व की तुलना में आधुनिक स्त्री अपनी अस्मिता को लेकर पहले से बहुत ज़्यादा सजग हैं। व्यापक स्तर पर आज भी स्त्रियों को पितृसत्ता के मूल्यों के अनुरूप ही चलना पड़ रहा है किंतु आज की स्त्री उन पारंपरिक मूल्यों को तोड़ने की दिशा में संघर्षरत है। लेखिकाओं द्वारा इस दिशा में पहले की तुलना में अधिक योगदान दिया जाने लगा है। ऐसी लेखिकाओं में मधु कांकरिया का नाम पर्याप्त रूप से चर्चितनाम है। वह भी अपने उपन्यासों में पारंपरिक रूढ़ियों पर प्रहार करती हुई स्त्री अस्मिता को पूरी ईमानदारी से उठाती हैं।

वेश्यावृत्ति समस्याएँ

मधु काँकरिया के उपन्यास सलाम आख़िरी का प्रमुख आधार वेश्यावृत्ति है। वेश्याओं की उपस्थिति समाज में आदिकाल से है और कभी वेश्यावृत्ति को समाज के लिए आवश्यक सिद्ध करने का प्रयास किया गया तो कभी इसे सामाजिक कोढ़ बताया गया। कोई वेश्यावृत्ति को किसी भी कारण से अविवाहित जीवन व्यतीत करने वालों की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ज़रूरत बताता है, तो युवाओं में वेश्यावृत्ति से उत्पन्न विकृतियों तथा वेश्यागमन के फलस्वरूप संक्रमित बीमारियों के फैलने से होने वाले सामाजिक दुष्प्रभाव के कारण इसे कलंक भी माना जाता है। मधु कांकरिया के सलाम आख़िरी की पृष्ठभूमि कोलकाता शहर के सोनागाछी, बहुबाज़ार, कालीघाट, बैरकपुर, खिदिरपुर इत्यादि क्षेत्रों में संचालित वेश्यावृत्ति के अड्डे है। यह उपन्यास वेश्यावृत्ति के रहस्यमयी संसार का बहुत ही यथार्थपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करता है-शताब्दियों का बोझ ढोती, देह की, मंदिरों, पुजारियों की यह वह दुनिया है जो हर कमरे का अलग-अलग इतिहास, जहाँ हर रात देह ही नहीं उघड़ती है वरन आत्माओं का भी चीर-हरण होता रहता है। (सलाम आख़िरी, पृष्ठ सं. 13)

कोलकाता शहर में संचालित वेश्यावृत्ति के विभिन्न अड्डों में व्यतीत होने वाले जीवन के वास्तविक सत्य को चित्रित करने का कार्य मधु जी द्वारा बहुत ही कुशलता एवं गंभीरता के साथ किया है। इन अड्डों पर समाज, संस्कृति, मर्यादा, परंपरा, कानून, बंधन आदि को कोई भी भय नहीं होता है, होती है तो बस नग्नता वह भी बहुत ही फूहड़ -सर, सर, इधर चलिए... बस सर, एक बार देख भर लीजिए... आप भी क्या याद रखेंगे। सर, सुनिए तो, अबकी बहुत वैराइटी है। आगरा वाले, नेपाली, बंगाल और सर... मोहम्डन भी है, खालिस मुसल्ली... कसम से सर, अरे झूठ क्यूँ बोलूँगा सर, और झूठ बोल भी दूँ तो भी क्या, सोलह साल की कुड़ी तो जवान होनी ही है। (सलाम आख़िरी, पृष्ठ सं. 14) वेश्यावृत्ति के इन अड्डों पर भेड़ बकरियों की तरह 16-17 वर्ष की आयु से लेकर 25-26 तक की आयु की लड़कियों की ख़रीद फ़रोख़्त अधिक होती है। ग्राहकों को पटाने, रिझाने और हम बिस्तर कर पैसे झीड़ने आदि सभी का प्रशिक्षण नई ख़रीदी गई लड़कियों को दिया जाता है। वेश्याओं की अड्डे से संबंधित

समस्याओं के साथ-साथ मधु कांकरिया ने वेश्याओं के पारिवारिक या व्यक्तिगत जीवन की गहरी पड़ताल करते हुए उपन्यास में विवेचन प्रस्तुत किया है। अधिकांश अड्डों पर ग्राहकों द्वारा वेश्याओं के साथ मारपीट, बदसलूकी की समस्या रहती ही है और इस प्रकार की यातनाओं को सहना उनके दैनिक जीवन का अंग सा बन जाता है। मलिन चेहरा, सूजी आँखों के पपोटे एवं थके तन के साथ एकदम तमतमाए मूड में है जूली। कल रात चूहे की सी शक्ल वाले मिनमिनाते एक ग्राहक ने विकल वासना के आवेग में उसे भरपूर चाँटा मार दिया था। उसने कमरे से बाहर निकलते ही शिकायत की थी मालकिन से- साले ने बाप का माल समझकर बॉक्सिंग बैग की तरह पीटा था। (सलाम आख़िरी, पृष्ठ सं. 22) शिकायत पर अड्डे की मालकिन को वेश्या के ज़ख्म, दर्द से सरोकार न के बराबर होता है उसे तो बस ग्राहक का पैसा और उसकी संतुष्टि ही परम आवश्यक लगती है- कैसी माथाफिरी तुम। नई-नई हो ना... आस्ते आस्ते सब बूझोगी। कोई गिराहक इस कदर ठंडी ठस्स मरती से प्रेम नहीं करना चाहता... पैसा देता है तो मज़े के लिए ही ना... खाली गोल गोल गुलावा से बात नहीं बनती। (सलाम आख़िरी, पृष्ठ सं. 166)

उपन्यास में मीना के चकले की नूरी, कृष्णा, रमा, नलिनी, जूली और चंपा छह वेश्याओं के माध्यम से मधु कांकरिया ने वेश्यालयों के परिवेश, कारण, वेश्याओं के निजी एवं वेश्यावृत्ति में लिप्त जीवन, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि विवशताओं, कारणों आदि की बहुत ही गंभीर पड़ताल करते हुए उपन्यास को एक इमारत की भाँति सृजित किया है जिसकी बाहरी दीवारों पर की गई नक़्क़ाशियों, रंग-रोगन से भीतर के सत्य को इतनी आसानी से नहीं देखा जा सकता है। अंदर का सच और वहाँ का संसार बाहर से मनभावन लगने वाले दृश्य से बिल्कुल विपरीत होता है।

ग़रीबी की समस्याएँ

भारत उन्नतिन्मुख देश माना जाता है। उन्नतिउन्मुखता से सीधा तात्पर्य है आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से ग़रीबी की स्थिति से धीरे-धीरे संघर्ष करते हुए समृद्धि की ओर बढ़ना। मधु कांकरिया के सभी उपन्यासों, कहानियों में ग़रीबी केंद्रीय तत्व है ही। सलाम आख़िरी में वेश्यावृत्ति में युवतियों का चाहे-अनचाहे आने की पृष्ठभूमि में ग़रीबी प्रमुख कारण है। ग़रीबी पर प्रमुखता के साथ लिखे गए उपन्यास का नाम है पत्ताखोर। भारत के तीन प्रमुख महानगरों के संबंध में सामान्य रूप से कहावत प्रचलित है कि दिल्ली दिलवालों की, मुंबई पैसे वालों की और कोलकाता कंगालों का। इस कहावत में कितनी सत्यता है और कितनी असत्यता है, यह स्वतंत्र अन्वेषण का विषय हो सकता है परंतु इतना अवश्य है कि मधु जी का पत्ताखोर उपन्यास कोलकाता की ग़रीबी चित्रित करने की दिशा में एक सफल प्रयास है। कोलकाता की मोहनबाग लेन का परिदृश्य एक ओर भव्यता दर्शाता है तो सड़क की दूसरी ओर बदहाली। एक ओर बड़े-बड़े भवन, अट्टालिकाएँ है तो दूसरी ओर ईंट की दीवार और दीनता या खपरैल की गंदी बस्ती। अख़बार बेचने वाले, कूड़ा-कचरा इकट्ठा करनेवाले, रिक्शेवाले, गाड़ी धोने वाले, दैनिक मज़दूर, कागज़ बटोरने वाले, शर्बत या खान पान की वस्तुतओं की बिक्री करने वाले इत्यादि लोगों के जीवन संघर्षों पर आधारित है यह उपन्यास। सहदेव, रामेश्वर, शिंबू, हरिया, कालिदास, सोना आदि चरित्रों के माध्यम से मधु कांकरिया ने ग़रीबी के विभिन्न परिदृश्यों का संघर्षपूर्ण चित्रण किया है। सियाहदाह और मौलाली के फुटपाथों पर बस्तियाँ ही बस्तियाँ। खुली गंधाती बजबजाती भरी-भरी गृहस्थियाँ। कुछ ईंट, दो बाँस, उपयोग की हुई बैटरी और पॉलिथिन के सहारे फुटपाथों पर बनी खुली, भूरी, काली गृहस्थियाँ। मोबाइल और फोल्डिंग गृहस्थियाँ। बरसात हुई तो बाँसों के ऊपर गहरे नीले और काले रंग की पॉलिथिन डाल दिया गया अन्यथा धरती ही बिछौना और आसमान ओढ़ना। सामान के नाम पर अल्युमिनियम के बर्तन एकाध बाल्टी, प्लास्टिक की पानी को बोतलें, एकाध पोटली। कई जगह चटाई और मैला सा कम्बल, एकाध टीन का बक्सा या कार्टून। वहीं सड़क पर ही दो ईंट को जोड़कर बीच में लकड़ी जलाकर चूल्हा बना लिया जाता। (पत्ताखोरी, पृष्ठ सं.211)

आत्महत्या की समस्या

खुले गगन के लाल सितारे उपन्यास में चाँदमल नामक चरित्र की माता लक्ष्मीबाई कष्टमय जीवन से मुक्ति पाने के लिए दुधमुँहे बच्च को विषपान करा कर स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है। लक्ष्मी के जीवन का प्रमुख कष्ट होता है पति के साथ उसका निरंतर विवाद एवं शंकालु अंधविश्वासयुक्त उसका मन।

सेज पर संस्कृत उपन्यास में साध्वी शशिप्रभा के मन में पाँच वर्ष के साध्वी जीवन के उपरांत सांसारिक प्रेम जागृत होता है। वह सांसारिक जीवन जीने के लिए अपने पिता के पास वापस आती है परंतु उसका पिता उसे समझा-बुझा के पुनः आश्रम भेज देता है वह आत्महत्या का सहारा लेकर अपने अपूर्ण इच्छा के साथ जीवन लीला समाप्त कर लेती है। हर बीज नै मन लायक धरती कोनी मिलै बेटी... अब जो रास्ता तूने पकड़ो हैं उसी पर बनी रह... इसी में सगला री भलाई है। (सेज पर संस्कृत, पृष्ठ सं. 167)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः हम पाते हैं कि मधु कांकरिया का कथा साहित्य भारतीय जनमानस एवं जनजीवन का प्रतिनिधित्व बहुत ही सजीवता एवं सत्यता के साथ करता है। सलाम आख़िरी जहाँ कोलकाता शहर में संचालित वेश्यावृत्ति विभिन्न अड्डों एवं वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की गंभीर एवं सजीव पड़ताल करता है तो खुले गगन के लाल सितारे उपन्यास आर्थिक दृष्टि से विपन्न परिवार में बेटियों के विवाह की समस्या को मूलाधार बनाते हुए भाई, पिता एवं माता की चिंताओं का चित्रण उपन्यास को प्रत्येक मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। सेज पर संस्कृत भारत में प्रत्येक क्षण संस्कृति के होते क्षय का दस्तावेज़ है। इसमें साधु, साध्वी का मिथ्या आडंबर, प्रेम, बलात्कार, धोखा, आदि संस्कृति के क्षय के ही उदाहरण हैं।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता और नवलेखन का अन्त: संबंध

शोध लेखक : मीना शर्मा

मीना शर्मा
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर

पत्रकारिता तथा साहित्य का बड़ा घनिष्ठ संबंध है। इसका आपसी संबंध शरीर तथा प्राण की तरह ही होता है। पत्रकारिता साहित्य के बिना अधूरी रहती है। जिस प्रकार शरीर बिना प्राण के निरर्थक है उसी प्रकार पत्रकारिता साहित्य के बिना नीरस प्रतीत होती है। पत्रकारिता ही नए साहित्य लेखन को पल्लवित और पोषित करती है। वह नए साहित्य-लेखन का मार्ग प्रशस्त करने में अपनी मुख्य भूमिका अदा करती है। पत्रकारिता को साहित्य की प्रथम सीढ़ी भी कहा गया है। आरम्भ में साहित्यकार अपनी फुटकर रचनाएँ पत्रों में प्रकाशित करवाता है तथा आलोचना-समालोचना से उसका मनोबल बढ़ता है तथा बाद में वह साहित्य रचना में लीन हो जाता है। हेरम्ब मिश्र का मत है- सर्वोत्तम पत्रकारिता साहित्य है और सर्वोत्तम साहित्य पत्रकारिता है। एच. डब्ल्यू मर्सिघम को श्रद्धांजलि देते हुए बर्नाड शॉ ने कहा था- कुशल पत्रकार, साहित्यकार से भिन्न नहीं है। अगर साहित्य का काम सरकार को ठीक-ठीक देखना व परखना है, तो पत्रकार का काम वही है। समाज के विचारों तथा साहित्य की संवाहिका का नाम ही पत्रकारिता है, जो समाज और साहित्य के इतिहास में अपना एक स्थान तो बना ही लेती है और उसका निर्माण भी करती है। ग्रन्थों में निहित साहित्य से जो सम्भव नहीं होता वह पत्र-पत्रिकाओं के साहित्य से सम्भव हो जाता है। पत्रकारिता तथा साहित्य में केवल भाषा-शैली का अन्तर दिखाई पड़ता है। इस विषय में डॉ. अर्जुन तिवारी का मत भी विशेष है वे पत्रकार को समाज शैली से जोड़ते हैं और साहित्यकार को व्यास शैली का मानते हैं।

साहित्य की समरसता तथा पत्रकारिता की सजगता, इन दोनों का संयोग ही साहित्यिक पत्रकारिता है। पत्रकारिता में यदि साहित्य की सरसता का समावेश नहीं होता तो उसमें स्थायित्व भी नहीं आ पाता है। और साहित्य को पत्रकारिता का यदि उचित सहयोग प्राप्त नहीं होता, तो साहित्य का व्यापक प्रचार-पसार नहीं हो पाएगा। जो साहित्य पत्रकारिता के माध्यम से आगे बढ़ता है वही साहित्यिक पत्रकारिता कहलाती है। आचार्यों का यह मत भी ठीक प्रतीत होता है कि एक अच्छा पत्रकार साहित्यकार भी हो सकता है गणेश शंकर विद्यार्थी, भारतेन्दु हरीशचन्द्र, श्री नारायण चतुर्वेदी, प्रेमचन्द, महावीर प्रसाद द्विवेदी, माखन लाल चतुर्वेदी, बनारसी दास चतुर्वेदी, डॉ. अवधेश अवस्थी, डॉ. जगदीश गुप्त, रामवृक्ष बेनीपुरी, इन्द्र वाचस्पति, शिवपूजन सहाय, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, बाबुराम विष्णु पराड़कर, अज्ञेय आदि प्रमुख साहित्यकारों की गणना उच्च कोटी के पत्रकारों में भी की जाती है। उन्होंने साहित्य के साथ-साथ समाज की विभिन्न विसंगतियों को भी अपनी पत्रकारिता से रेखांकित किया था।

श्री श्याम प्रसाद प्रदीप ने इति तथा अथ के लेखन के संबंध में साहित्य तथा पत्रकारिता में एक विभाजन रेखा प्रस्तुत की है- साहित्य शैली में चरमावस्था या क्लाइमेक्स अन्त में होता है और पत्रकारिता की शैली के आरम्भ में। इस पर एक साहित्यकार ने व्यंग्य किया है पहले प्रतियोगिता यह थी कि किसकी इति अच्छी होती है और अब प्रतियोगिता यह है कि किसका अथ अच्छा होता है। लेकिन यह अन्तर बहुत पुराना नहीं है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद उद्भुत व्याख्यात्मक रिपोर्टिंग को भारत पहुँचने में करीब 35 वर्ष लगे, लेकिन यह उल्टे पिरामिड की शैली बहुत जल्दी विलायत से यहाँ पहुँच गई। इसकी क्रान्तिकारी परिणति का श्रेय प्रसिद्ध पत्रकार, पत्र संचालक और प्रथम विश्व युद्ध के समय बिट्रेन के सूचना मंत्री नार्थ क्लिफ को है। उन्होंने अनुभव किया कि आज के व्यस्त युग में पाठक को इतनी फुर्सत नहीं है कि वह क्लाइमेक्स तक पहुँचने का धैर्य रख सके। समाचार जानने की उत्कण्ठा जिस सीमा तक बढ़ चुकी थी, उसमें पाठक को देर तक दौड़ाने के बाद लक्ष्य पर पहुँचाना उस पर भारी बोझ लादना था। अत: समाचार की शुरुआत ही क्लाईमेक्स से होने लगी, अर्थात् साहित्य नीचे से मंज़िल तय करके चोटी पर पहुँचता था तो पत्रकारिता चोटी से मंज़िल तय करती हुई नदी की धारा की तरह कलकल करती हुई नीचे की ओर बह निकली। साहित्य और पत्रकारिता का यह भेद दर्शन् की आगम और निगमन प्रणाली जैसा हो गया।

साहित्यिक पत्रकारिता के उत्थान में लघु पत्रिकाओं का विशिष्ट योगदान माना जाता है।

लेखक या पत्रकार समाज में जो परिवर्तन या नवीनता या विचित्रता महसूस करता है, उसे अपनी लेखनी का विषय बनाता है। अपने भावों-विचारों को वह जन सामान्य तक पहुँचाने का अभिलाषी होता है। साहित्यकार अपनी उत्तम कृतियों को पाठकों तक जल्दी से जल्दी पहुँचाने के निमित्त उन्हें विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करता है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर साहित्यकार की कृति को ख्याति तथा स्थायित्व प्राप्त होता है। साहित्यिक पत्रकारिता तथा रचनात्मक लेखन का संबंध जल-दूध के समान माना जाता है। जैसे दूध को जल से अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार साहित्य और पत्रकारिता को विभाजित करना असम्भव है। जहाँ लेखन है, वहीं साहित्य तथा पत्रकारिता का आरम्भ होता है। इसी कारण जैसे ही पत्रकारिता का आरम्भ हुआ, साहित्य- लेखन और साहिंत्यिक पत्रकारिता का भी प्रारम्भ उसी क्षण हो गया। हिन्दी के सभी श्रेष्ठ साहित्यकार पत्रकारिता भी करते थे। पं. माखन लाल चतुर्वेदी खण्डवा से कर्मवीर का सम्पादन एवं प्रकाशन करते थे। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित की थी।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता और पत्रकारिता के अलग-अलग स्वरूप अवश्य ही दृष्टिगत हुए हैं लेकिन इस रूप में परम्परा वस्तुत: अक्षुण बनी रही, जिसमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, मृणाल पाण्डे, नरेश मेहता, मोहन राकेश अमृतराय, कमलेश्वर आदि इसी परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। ये प्रतिष्ठित साहित्यकार भी थे और पत्रकार थी। स्वतंत्रता के पूर्व की साहित्यिक पत्रकारिता पर विचार करने पर लगता है कि तब पत्रकारिता में स्वाधीनता के मूल्य अधिक महत्त्वपूर्ण थे। जनता को स्वाधीनता के प्रति जागरूक करने का विचार तत्कालीन पत्रकारों, साहित्यकारों के मन में था, अत: समस्त कविताओं, लेख आदि में वही भाव प्रमुख रूप से देखने को मिलते थे। आज़ादी के बाद पत्रकारों-साहित्यकारों के सामने कोई विशेष स्पष्ट दिशा बोध शोध नहीं रह गया था। समाज सुधार संबंधी इनकी विचारधारा का पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से काफी प्रचार-प्रसार हुआ, परन्तु लेखक अपना कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं कर पाये, जिनके कारण उनके जीवन में भटकाव की स्थिति देखी गई।

समाज का कोई भी बदलाव साहित्यकार की दृष्टि से बच नहीं पाता। प्रत्येक बदलाव पर अपनी दृष्टि से वह उत्तम विचार जनता के सामने प्रस्तुत करता है। अपने भावों, अपनी संवेदना को वह पाठकों तक पहुँचाना चाहता है। यही लेखक के लेखन का लक्ष्य होता है। अपने भावों को जितनी सरल व सहज भाषा में वह प्रस्तुत करता है, उतनी शीघ्रता से वह अपनी बात पाठकों तक पहुँचा पाता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में तो सहज भाषा सरल लेखन का विशेष गुण माना जाता है। साहित्यिक पत्रिकाओं का पाठक वर्ग सुरुचि-सम्पन्न तथा शिक्षित होता है, लेकिन समाचार पत्र के पाठक के विषय में कोई निश्चित मत नहीं बनाया जा सकता। समाचार पत्र का पाठक शिक्षित या अल्प शिक्षित दोनों प्रकार का हो सकता है, लेकिन साहित्यिक पत्रिकाएँ हो या समाचार पत्र दोनों ही व्यक्ति में विश्वास जगाने का कार्य करते हैं। व्यक्ति को सही दिशा की ओर अग्रसर करते हैं। अज्ञान के अंधकार से ज्ञान कि प्रकाश की ओर ले जाने का इनका स्तुत्य प्रयास रहता है- उलस भौतिक क्षणिक दुखों-सुखों में, / मत परस्पर व्यर्थ विग्रह कर।/ अरे मन, मत परिग्रह कर।

नवलेखन वस्तु-विज्ञान, भाषा अथवा शैली संबंधी आलोचना नहीं है, वह समस्त साहित्यिक कृतित्व को एक नया परिप्रेक्ष्य, एक नवीन मर्यादा प्रदान करता है, इसलिए उसका महत्त्व अभूतपूर्व है। इसके अन्तर्गत रूढ़ साहित्यिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह नहीं है, अपने संस्कारों में रचनात्मक परिमार्जन के लिए चिंतन अवश्य है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, मानव की क्षमता का उद्‌घाटन व उसका सृजनात्मक उपयोग करने का सन्देह है, इस लेखन में बौद्धिक चेतना के साथ भावात्मक तीव्रता थी।

आज़ादी के बाद देश में शिक्षा का प्रचार काफी तेज़ी से हुआ। समाज सुधार के प्रयास हुए तो स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। लड़कियों के संबंध में लोगों की विचारधारा बदलने के प्रयास किये गए। साहित्यकारों ने इस विषय पर अपनी कलम चलाते हुए लिखा है- लड़की, वह तो लड़का चाहते थे। आँगन में मिठाइयों के थाल उसी तरह पड़े थे। पर नहीं यह तो निर्यात है। जो लुप्त हो उसे कौन मिटा सकता है? शाह जी को जैसे कुछ सूझ गया स्वरूप स्वर में बोले- मिठाइयाँ बाँटो कोई खाली न जाए। नारी शिक्षा का प्रसार धीरे-धीरे हो रहा था। नारियों की स्थिति में सुधार भी काफी धीमा लेकिन प्रशंसनीय था। स्वातंत्र्योतर पत्रकारिता की यात्रा एक क्रान्ति की यात्रा की तरह है, जिसमें समाज को न केवल बाहर से बदला गया, अपितु भीतर से भी बदलने का क्रम जारी है।

इसी समय अन्धविश्वासों को त्यागने पर भी ज़ोर दिया गया। साहित्यकारों ने यह साबित करने का प्रयास किया कि अंधविश्वास हमारी अज्ञानता की उपज है, इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। अनेक लोग धार्मिक संस्कारों के कारण शलगम नहीं खाते, परन्तु मूली और गाजर खाने में उनको आपत्ति नहीं, यद्यपि ये तीनों चीज़ें एक ही खेत में और आस-पास ही उगती और बोई जाती हैं। स्वाधीनता के बाद की पत्रकारिता ने विधवा-विवाह, कन्या-हत्या, बाल विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का विशेष प्रयत्न किया। दैनिक पत्रों में तो इससे संबंधित सामग्री प्रकाशित होती ही रहती थी। साहित्यिक पत्रिकाओं में भी इन कुप्रथाओं के निवारण हेतु कहानी, कविता, लेख आदि छपते रहते थे।

कल्याण एक धार्मिक पत्रिका थी। लेकिन उसमें भी समाज सुधार, देश-प्रेम तथा संस्कृति संबंधी लेख छपते थे। वर्ष 1950 में कल्याण का हिन्दू संस्कृति अंक प्रकाशित हुआ। इसमें तो आचार्य बिनोबा भावे, किशोरी दास वाजपेयी, बाबू सम्पूर्णानन्द आदि के लेख छापे गए। भारतीय संस्कृति से संबंधित ये लेख भारतीय संस्कृति की लेखन धारा को प्रकट करने वाले थे। अज्ञेय ने लिखा था- भारतीय संस्कृति से मेरा तात्पर्य रूढ़िवादी संकीर्ण कट्टर पंथी परम्पराओं से नहीं है, मेरा

तात्पर्य उस विराट् जीवन-दर्शन से है जिसमें व्यक्ति और समाज, भौतिकता और आध्यात्मिकता, मानव और प्रकृति, विद्रोह और निर्माण का अनोखा समन्वय किया गया है।

नारियों की शिक्षा और उनकी स्वतन्त्रता की आवाज़ ज़ोरदार ढंग से उठाई जा रही थी। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख आदि का समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ रहा था, लेकिन उसके बावजूद समाज नारियों को पुरुष की बराबरी में स्वीकार नहीं कर पा रहा था। यदि सम्भव नहीं हुआ तो एक आगे बढ़ती नारी को लेकर तरह-तरह की अफ़वाह फैलाना ही शुरू कर दिया जाता है- नौकरानी आ तो उसने शिकायत की- बीबीजी! ये जबरा बड़ा ऐबी है। आपको लेकर मज़ाक कर रहा था। वह जबरा कह रहा था कि डॉक्टरनी का तो अपना दिल..... आपके लिए कह रहा था। नारी को आज़ादी केवल ज़रूरत की मिली। यदि ज़रूरत हुई तो नौकरी करने बाहर भेज दिया, वरना घर की चार दीवारी के अन्दर ही उसे क़ैद रहना है- आज़ादी के बाद देश के नागरिकों द्वारा कर्त्तव्य से अधिक अधिकारों पर ध्यान दिया गया। परिश्रम से अधिक ग़लत तरीके से विकास करने की प्रकृति ने जन्म लिया। घूसखोरी, रिश्वत, चापलूसी आदि बुराइयों ने समाज को जकड़ लिया।

रमेश बख्शी की चूहे और पकौड़े कविता में समाज में फैली अव्यवस्था को रेखांकित किया गया है। लोगों की विचारधारा में अब परिवर्तन आ रहा था। संयुक्त परिवार टूट रहे थे। एक ही परिवार के चार भाई अलग-अलग रहना चाहते थे। आर्थिक संकट, बेरोज़गारी जीवन मूल्यों में परिवर्तन, व्यक्ति की व्यस्तता, महानगरों की सभ्यता, इन सबका स्पष्ट प्रमाण तत्कालीन साहित्यकारों की रचनाओं में देखने को मिलता है।

आज़ादी के बाद सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में और आदर्शों में जो गिरावट आई वह निरन्तर बढ़ती ही चली गई। अवमूल्यन समाज का किसी एक क्षेत्र में नहीं, जीवन के किसी एक पक्ष में नहीं, प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों का ह्रास हो रहा था। फैशन परस्ती और आधुनिकता ने व्यक्ति के विचारों को भले ही आधुनिक बनाया हो, लेकिन आधुनिक दिखने की प्रवृति ने अवश्य ही उसके अन्दर जन्म ले लिया जो भी भोग साधन-संपन्न है, उसने अपने आप को आधुनिक बताने में कोई कसर नहीं छोड़ी। क्लब, डांस, रेस्टोरेंट, सिगरेट, शराब, अंग्रेज़ी फिल्में ये सब उसका स्वभाव बन गए। इसी पर ग़ौर करते हुए व्यंग्यकार शरद जोशी लिखते हैं- कला के क्षेत्र में सफलता की सबसे बड़ी ट्रिक है- शहर में जाकर गाँव बेचिए। मैं इसी दिशा में सोच रहा हूँ। गाँव की महिलाओं के शरीर स्वस्थ होते हैं और देखने में सुन्दर। वे समूह में ठुमकते हुए काम करती हैं और यदि एक मुट्ठी भर लड़कियाँ ग्रामीण वस्त्रों में मंच पर बिखेर दी जाएँ तो शहर का दर्शक आँखे फाड़े उन्हें देखता रहेगा, जब तक कि पर्दा न गिरे।

आधुनिकता, अमीरी और नगरीय सभ्यता का दोष है कि ये बहुत जल्दी सब कुछ भूल जाती है। संबंधों के निर्वाह की प्रवृत्ति इनमें कम ही मिलती है। कितना भी घनिष्ठ संबंध रहा हो, लेकिन आधुनिकता के रंग में रंगा अमीर अपने ग़रीब भाई की तरफ देखना भी गवारा नहीं करता- कहीं कुछ भी नहीं बदला है मेरे दोस्त। वैसी ही चमचमाती कारें मुझे छूते हुए निकल जाती है... और उसमें अकड़ कर बैठा हुआ मेरा वर्षों का जाना-पहचाना दोस्त / न मेरे दोनों कंधों पर लदे हुए झोले देख पाता है / न मेरा बदहवास चेहरा, न मेरी लंगड़ी मुन्नी / न मेरा अन्धा (बबुआ)।

अस्सी के दशक में एक महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि राजनीति का धर्म के मामलों में भी हस्तक्षेप होने लगा। नेताओं ने धर्म को मोहरा बनाया इसका दुष्प्रभाव यह हुआ कि विविध जातियों के मन में एक-दूसरे के प्रति द्वेष की भावना उत्पन्न हो गई। समाज में पाखण्ड का प्रचार पुन: बढ़ गया। कोई भी धर्म उत्तेजना में किसी भी प्रकार की कोई हानि किसी अन्य धर्म में आस्था रखने वालों को न पहुँचाए इसके लिए लेखकों, पत्रकारों ने पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय से सन्दर्भित कविताएँ, कहानियाँ और लेख आदि लिखे। लेकिन नेताओं ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए मन्दिर-मस्जिद विवाद को इतना अधिक तूल दे दिया कि जिसे महसूस तो सबने किया, लेकिन उसे शब्द और वाणी प्रदान की साहित्यकारों तथा पत्रकारों ने दी।

गन्दी राजनीति के कारण पत्रकारिता में भी विकार उत्पन्न हुए है। इलाहाबाद के वरिष्ठ पत्रकार शिव कुमार दुबे ने ऐसे पत्रकारों को आड़े हाथों लिया है। उनका मत है कि ऐसे पत्रकारों के कारण जिसमें दूर दृष्टि का अभाव है और जो किसी निजी कारणवंश समाजहित से दूर रहकर पत्रकारिता का निर्वाह करते हैं, हिन्दी पत्रकारिता आज प्रश्न चिह्नों के घेरे में आ गई है। राजनेताओं की राजनीति का ही यह दुखद परिणाम है कि आज भारत में साम्प्रदायिकता का विस्फोट हो रहा है। स्वतन्त्रता संग्राम में कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले हिन्दू तथा मुस्लिम समुदाय को पुन: उस सीमा पर ला खड़ा किया है जहाँ प्रत्येक भारतीय नागरिक चिंतनशील मुद्रा में अपना जीवन जीने को विवश हो रहा है। साधारण जनता की तरह ही बल्कि उससे कुछ आगे बढ़कर पत्रकार तथा साहित्यकार संवेदनशील होता है। वह अधिक जागरूक होता है।

निष्कर्षत: साहित्य और पत्रकारिता का संबंध अन्योन्याश्रित है। दोनों एक दूसरे पर पूर्णत: अवलम्बित हैं। बिना पत्रकारिता के साहित्य की उपलब्धि का प्रचार एवं प्रसार संभव नहीं है। बिना साहित्यिक रचनाओं के पत्रकारिता आधी-अधूरी है। वह नव लेखन का मार्ग प्रस्तुत करती है और साहित्यकार पत्रकारिता की भाषा में विशेष योगदान देता है। दोनों अपने युग की विसंगतियों को अलग-अलग शैली के माध्यम से जनता को अवगत करवाते हैं। पत्रकारिता और साहित्यिकता साहित्य की नई गद्य-पद्य विधाओं को आगे बढ़ाने और नई विधाओं को आविष्कृत करने में अपना विशेष योगदान देते हैं। इस प्रकार पत्रकारिता और साहित्य के नव लेखन का अटूट संबंध माना जाता है। दोनों में किसी प्रकार की विभाजन रेखा खींच पाना असम्भव प्रतीत होता है।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

स्त्री : अनामिका की नज़र में

शोध लेखक : भावना शाक्य

डॉ. भावना सिंह शाक्य
असिस्टेंट प्रोफेसर
राष्ट्रीय रक्षा अकैडमी खड़कवासला, पुणे
194-A, डी -3, राष्ट्रीय रक्षा अकैडमी,
खड़कवासला, पुणे -411023.
मोबाइल- 9999835618
ईमेल- shakya.bhawna@gmail.com

स्त्री विमर्श के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाती हुई कवयित्री अनामिका पिछले तीन दशकों से रचनारत हैं। अपने समकालीन कवियों के बीच अनामिका एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। अंग्रेज़ी साहित्य की व्याख्याता होने के बावजूद अनामिका ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। मातृक सम्पत्ति के रूप में मिले हिन्दी साहित्य के प्रति लगाव और स्त्री शक्ति में आस्था ने ही उन्हें लिखने को प्रेरित किया।

अनामिका की कविताओं को पढ़ते हुए हमें दो चीज़ों पर लगातार नज़र रखनी होगी। पहली यह कि उनकी पहचान एक नारीवादी कवयित्री के रूप में न सिर्फ़ स्थापित हुई है बल्कि सम्मानित भी हो चुकी है। जिसका हमारे लिए पहला अर्थ यह है कि वे अपने परिवेश को हिंदुस्तानी मध्य वर्गीय नारी के दृष्टि कोण से देखती हैं और दूसरी यह कि वे मध्यवर्गीय नारी के परिवेश और उसके दबाव एवं टकराहट को झेलते हुए अपनी निजता को भी परिभाषित करती चलती हैं। एक स्त्री देह, देहरी और देवी की परिधि से जब दिमाग़, दृष्टि और दिल की ओर बढ़ती है तो सारी सभ्यता और संस्कृति हिल उठती है। नारी की भावशुद्धि की लम्बी गाथाएँ पुरुष निर्मित सीमित मनोकामनाओं का परिणाम हैं। तभी श्रद्धा सम्माननीय हो जाती है और इड़ा लांछनीय। स्त्री-देह के धरातल पर ही अलग है पुरुष से और इस अलग होने को ही निम्नतर मान लिया गया। इतिहास गवाह है कि इस भिन्नता और निम्नता का। अनामिका ने इस देहमयी और भावमयी स्त्री को अपनी कविता के केंद्र में रखा है और इस भिन्नता और निम्नता की पहचान की है।

पुरुष प्रधान होने के कारण सत्ता की भाषा और संस्कृति में पुरुष के यौन अनुभवों को ही प्रधान माना गया है। ऐसी सत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री का अपनी यौनिकता के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण होना स्वाभाविक है। चँकि संस्कृति उसे एक चीज़ मानती है अत: वह ख़ुद भी अपनी देह को वस्तुरूप में ही आँकती है और उसे सजाती-सँवारती है। यहाँ तक कि बचपन से बुढ़ापे तक वह दूसरे की नज़र से ही स्वयं को तौलने की इतनी आदी हो जाती है कि देह से अलग वह अपने को कुछ सोच ही नहीं पाती। नैतिकता, पवित्रता, मर्यादा, शील, मातृत्व जैसे मुद्दे आख़िर क्या हैं और उनका स्त्री के शोषण के साथ क्या संबंध है, यह जानना भी ज़रूरी है क्योंकि पितृसत्तात्मक समाजों में पुरुष स्त्रियों के देह पर निजी मिल्कियत रखता है, वह जब चाहे जिस भी स्त्री से अपने सम्बंध बनाए और तोड़े। स्त्री उसके लिए सिर्फ़ देह है। अनामिका ने देह मुक्ति के अवर्जित क्षेत्र में भी सेंध लगायी है। क्यों और कैसे एक स्त्री असुरक्षित है मात्र स्त्री होने के कारण- जब तेल में अपनी परछाईं देखकर / बाल-विधवा रूपसी तेलिन बोली / तो बाल पकने को आए चलो ज़िंदगी कट गई / इज्जत से आख़िर / और बात पूरी होने के पहले ही / धड़ -धड़ -धड़क -धाम -धम आ पहुँचे / राजा के घुड़सवार / उसे उठाकर ले गए / जंगल के पार।

यह समाज के लिए शर्म की बात है कि यहाँ छ: महीने की बच्ची से लेकर साठ साल की बुढ़िया तक अपने को कभी भी, कहीं भी सुरक्षित महसूस नहीं कर पाती है। स्त्री की शारीरिक विशेषताओं और उसकी सृजन क्षमता को इस समाज और संस्कृति जिस तरह से रहस्यमयी बना रखा है, उसे अनामिका एक नए अर्थ में देखने की कोशिश करती हैं- लगातार झंकृत थे उसकी जंघाओं में इकतारे / चक्रों-सी काँप रही थी वह एक महीयसी मुद्रा में गोद में छुपाए हुए / सृष्टि के प्रथम सूर्य-सा दीपित / लाल-लाल तकिया।

यह कत्थई गुलाब उस नई सभ्यता की सबसे पवित्र क्रिया होगी -जिसे स्त्रियों को गढ़ना है। यह अनुभूति औरत की अनुभूति है। उसकी पीड़ा याचनामयी नहीं, प्रकृति की तरह साधनामयी होती है। इस पीड़ा में एक अनोखा बोध है जो उसे उसके सत्य और पूरेपन की ओर ले जाता है मानो कवयित्री प्रथम सूर्य कहकर उस जीवन को देख रही है जो अब तक चाँद भर बना रहा। एक दूसरी कविता में वे लिखती हैं- भीगी हुई ही पैदा होती हैं वे तो / (भीगी बिल्लियाँ नहीं, उस अर्थ में भीगी जिस अर्थ में भीगती है, पत्ती बारिश में / या भीगता है दूध से कलेजा)

यह एक नई दृष्टि और प्रतीक है औरत को देखने और समझने के। परंतु यह ध्यान रखना

होगा की कहीं हम उन्हीं पितृसत्तात्मक प्रतीकों से स्त्री को फिर से महिमामंडित तो नहीं करने लगे हैं। उसकी देह उसकी शक्ति है, कमज़ोरी नहीं। अनामिका के यहाँ स्त्री को उसकी देह से परे उसके भाव और विचार दोनों रूपों में भी देखा गया है। उनकी एक कविता भिन्न है जिसमें स्त्री की बौद्धिकता पर उठने वाले प्रश्न की पड़ताल की गई है औरत का दिमाग़ी होना आज भी एक घटना ही है समाज में। इसी विडम्बना को अनामिका यूँ रखती हैं- अगर कहीं ग़लती से / मेरा माथा / मेरे अधोभाग से भारी पड़ जाता है / लोगों के गले यह नहीं उतरता / और मेरे माथे पर बट्टा लग जाता है / इम्प्रोपर फ्रैक्शन का / क्या माथा अधोभाग से भारी होना / इतना अनुचित है मेरे मालिक, मेरे आका? / क्या इस से मेरी बढ़ जाती है दुरूहता?

स्त्री बौद्धिकता को यदि परिधिकृत होना पड़ता है तो इसे सामाजिक विडम्बना ही कहा जाएगा। नियम निर्देशन के प्रति स्त्री शंकालु तो होगी ही, विनोदप्रिय होना भी स्वाभाविक है, क्योंकि सत्ता की चूल जब हिलती है, तो शासित इसे अपनी विनोद प्रियता में शामिल करेगा ही। पर वह कभी सनकी नहीं होगी। स्त्री पुरुष नहीं होना चाहती, पर पुरुषों को मिली हुई सुविधाओं को सबमें बाँटना चाहती है, जैसा कि राजकिशोर ने कहा, वास्तव में मानवधिकारों की लड़ाई का लक्ष्य स्त्रियों को प्रति पुरुष में तब्दील करना नहीं बल्कि स्त्री और पुरुष के बीच अधिकतम समानता पर टिके ऐसे समाज की रचना करना है जहाँ स्त्री पुरुष से एक दर्जा नीचे रहने के दर्द से मुक्त हो सके। अनामिका के यहाँ मुक्ति की पहल के लिए स्त्री किसी नए रास्ते की तलाश करती नज़र नहीं आती है, बस उनकी स्त्री पुराने रास्ते की परेशानियों और दिक़्क़तों की बात करती है। कह सकते हैं कि दर्द का चित्रण है तो मगर दर्द से उबरने की कोई नई पहल नज़र नहीं आती है। जो चला आ रहा है, उन पारम्परिक तर्कों को अपनाने के बजाय यदि बदलाव की अपेक्षा रखे, यदि वह रुके नहीं बस चलती रहे नए मुक़ामों से आगे तो इसे ही मुक्ति का अभियान कहा जाएगा।

अनामिका के यहाँ देहमयी स्त्री का चित्रण बहुतायत में मिलता है, स्त्री के मन के सच्चे साथी की तलाश और इसके अभाव का अकेलापन भी ख़ूब नज़र आता है- पति एक था उसका, प्रेमी थे पाँच / बच्चे छह, मुर्गी और बकरियाँ सात, / निंदक उतने जितने तारे और प्रशंसक भी बहुत सारे / फिर भी वह एकदम अकेली थी / हर रिश्ते में, वैसे बालू थी, मिट्टी थी, / लेकिन उसका मन था इतना ज़िद्दी पौधा / की कहीं लगता ही नहीं था।

अपना सब कुछ देकर भी (बालू मिट्टी की तरह घुलकर भी) वह हर हाल में अकेली रहने को अभिशप्त है। पति और तथाकथित प्रेमियों की फ़ौज भी उसके मन और जीवन रस को समझने में असमर्थ रहते हैं। निंदक तारों की तरह असंख्य और प्रशंसक कवयित्री के ही शब्दों में बहुत सारे होकर भी वह एकदम अकेली रहती है। क्यों और क्या इसका कारण हैं ? अनामिका की स्त्री यह प्रश्न हर जगह पूछती मिलती है। अनामिका के अनुसार, स्त्री मुक्ति का आशय है मानवमुक्ति। जैसे एक स्त्री को शिक्षि त करने का अर्थ है पूरे परिवार का वैचारिक / मानसिक / बौद्धिक परिष्कार। स्त्री को मानसिक / बौद्धिक / आर्थिक/ सांस्कृतिक विकास के लिए यौन शोषण, आर्थिक दोहन और मानसिक प्रताड़नाओं से मुक्त करने में मानव मात्र की मुक्ति के सूत्र हैं। स्त्री-मुक्ति ने अपने आँचल का परचम फहराया है जिसकी छाँव तले दुनिया के सारे निर्धन-निर्बल-निराश्रय अनादृत अपनी साझा मुक्ति की राह बना सकते हैं।

समय का सीधा साक्षात्कार करती हुई कवयित्री अपने अकेले की नहीं बल्कि पूरी औरत जाति की बात रखती है। अनामिका स्त्री के प्रतिरोध का अध्ययन उनकी चुप्पी तथा सहिष्णु भाव के आर पार जाकर झाँकने की कोशिश करती हैं। साथ ही अंतरालों पर भी नज़र रखती हैं। वे मानती हैं कि स्त्री की चुप्पी ऐतिहासिक विकास का परिणाम है, यह तो उसके जीवन की बेड़ी थी जिसे उसने प्रतिरोध के अस्त्र में बदल दिया- क्या आपने उसको देखा है छूकर ? / दुनिया की सारी भाषाएँ / सारी भाषाओं के सारे बीजाक्षर / क्या सिर्फ़ यही नही की मैं हूँ -मैं हूँ न- / अपने भी पार।

अनामिका की कविताओं में आत्मानुभव ही अधिक है इसे वे आत्म कथन की शैली में सहज ही अभिव्यक्त करने में, उन्हें सफलता मिली है। अनुभूति, आत्मकथन और स्मृति इन तत्वों के सहसंबंध के ज़रिए अनामिका अपना रूपांतरण करने में सफल होती हैं। उनकी वैविध्यपूर्ण अवस्था और चेतना के वैविध्यपूर्ण रूपों के कारण यह महसूस किया गया कि एक सिद्धांत के ज़रिए अनामिका का मूल्यांकन सम्भव नहीं है। अनामिका के लिए स्त्री-मुक्ति कोई प्रत्यक्ष लड़ाई नहीं है, जिसे किसी झंडे के नीचे खड़े होकर, युद्ध करके जीता जाय। बल्कि स्त्री मुक्ति की उनकी लड़ाई महीन-महीन धागों का उलझा हुआ वह गुच्छा है जिसे प्यार और नरम हाथों से सुलझाना है, ताकि कोई सिरा टूट कर अलग न हो जाए। सभी अपने वजूद को बनाए रखते हुए, मुक्त हों। उनके यहाँ मुक्ति का साझा चूल्हा जलता है जो व्यक्तिगत के साथ सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भी जल रहा है। यहाँ मुक्ति एकपक्षीय नहीं है। अनामिका की कविता में पुरुष शत्रु के रूप में नहीं बल्कि साथी और सहयोगी के रूप में अधिक आता है। जो दु:ख और दर्द में साथी बनकर खड़ा भी हो रहा है। एक स्त्री अपनी कविता में कृष्ण से सखा भाव के अन्दाज़ में यूँ कहती है- ऐ माधव, इतने कपड़े कूटने हैं अभी, / इतना आटा गूँथना है, / देखो ना, कितने तो काम धरे हैं सिर पर / आओ भी, हाथ बँटा दो थोड़ा ।

अनामिका अपनी कविताओं में पूरी तरह शामिल हैं। उनकी शक्ति उनके लिखे शब्द ही हैं। ये शब्द महज़ शब्द नहीं हैं, बल्कि बीज हैं, उन तमाम आंदोलनों के जो हो चुके और जो होने वाले हैं -स्त्री की मुक्ति के लिए, स्त्री के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के लिए। हाँ ये अलग बात है, अनामिका अपनी कविता बुनती हैं, सिलती हैं -जैसा कि स्त्री- स्वभाव में ही शामिल है बुनना और सिलना। अत: उनको समझा भी इसी क्रम में जा सकता है न की किसी विशिष्ट सैद्धांतिकी के चश्मे के तहत।

000

(शोध आलेख)

काम का अर्थ एवं परिभाषा : उदात्त जीवन के सन्दर्भ में

शोध लेखक : डॉ. विजय कुमार पटीर

काम का अर्थ 'सहज इच्छा' से लिया जाता है। यह मानव सुलभ ही नहीं प्रत्येक जीव की प्रकृति है। जो शरीर के साथ ही प्रादुर्भाव होती है। 'काम' शब्द मूलतः संस्कृत का शब्द है। शब्द कोशों में काम का अर्थ इस प्रकार दिया गया है - 'काम - पु. (सं. कम् (चाहना) + णिङ् + घञ्) (वि. कामुक, कामी काम्य) (1) किसी इष्ट बात की सिद्धि या वासना की पूर्ति के संबंध में मन में होने वाली इच्छा या चाह। अभिलाषा, कामना, मनोरथ। (2) अपने-अपने विषयों के योग की ओर होने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति जो धार्मिक क्षेत्र में चातुर्वर्ग या चार पदार्थों में से एक मानी गई है। विशेष हमारे यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार ऐसे पदार्थ कहे गए हैं। जिनकी सिद्धि मनुष्य के जीवन में होना आवश्यक भी है और स्वाभाविक भी। ऐसे प्रसंगों में काम की प्राप्ति या सिद्धि का यह आशय होता है कि इन्द्रियों की इष्ट, संगत और स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ चरितार्थ और पूरी होती रहें। 'काम' के विषय में श्री नवल जी लिखते हैं - काम (संज्ञा पु.) (सं.) (1) इच्छा। मनोरथ। (2) महादेव (3) कामदेव (4) सहवास की इच्छा (5) चार वर्गों मे से एक (6) इन्द्रियों की अपने-अपने विषयों की ओर प्रवृत्ति (काम शास्त्र)। 2 काम का अर्थ इच्छा, कामना के अलावा काम, कार्य, कर्म आदि के साधारण शब्दों में उल्लेखित होता है।

काम शास्त्र में काम का अर्थ स्त्री-पुरुष के संसर्ग से संबंधित है। प्रेम का देवता काम को कहा जाता है। 'काम' ब्रह्मा का मानस पुत्र है जो रति का पति भी है। 'काम' एक देव है। भारतीय पुरुषार्थों में 'काम' तीसरा पुरुषार्थ माना गया है। हर प्राणी की एक मूल वृत्ति 'काम' है जो आनन्द है ब्रह्म है। इसका अर्थ अगर विस्तृत क्षेत्र में किया जाए तो यह प्रेम और अनुराग को ध्वनित करता है। मनुष्य की प्रत्येक कामना 'काम' है। परन्तु यहाँ हम इसका अर्थ केवल प्रेम और उसके उदात्त तत्वों को ही व्यंजित करते हैं।

जैनेन्द्र के अनुसार- काम कामना से अलग चीज़ नहीं है। कामना का मूल रूप काम है और विविध कामनाओं के नीचे मुख्य-तत्व काम प्रेरणा होती है। यहाँ काम तथा कामना शब्द बहुत निकटवर्ती है। किसी इच्छित व्यक्ति, पदार्थ या स्थिति की उपलब्धि के विषय में उत्कंठा की जो अनुभूति होती है वह साधारण शब्दों में कामना कही जाती है। इस प्रकार मनोरथ या इच्छा एक कामना है। यौन तथा काम शब्द ही एक दूसरे के बहुत निकटवर्ती हैं। यौन का शाब्दिक अर्थ 'योनि संबंधी' से लिया जाता है। नारी की इन्द्रिय विशेष-यौनि का यौन क्रिया से स्त्री-पुरुष के समागम का बोध होता है। रति शब्द के तीन अर्थ मिलते हैं - (1) कामदेव की पत्नी का नाम रति (2) प्रेम या अनुराग (3) स्त्री-पुरुष के पारस्परिक प्राकृतिक आकर्षण और कामक्रीड़ा से प्राप्त आनन्द। इस प्रकार तीसरे अर्थ के अनुसार रति 'काम' का समानार्थी शब्द है। 'स्त्री पुरुष के काम वासनामय हृदय की परस्पर रमणेच्छव का नाम रति है। आचार्य पण्डित राज के अनुसार - 'स्त्री-पुरुष की एक दूसरे के विषय में प्रेम नामक जो चित्तवृत्ति होती है उसे रति कहते हैं। इस प्रकार काम रति शब्द भिन्न होते हुए भी एक ही अर्थ को व्यंजित करता है।

भावना विकृत होने पर वह वासना का रूप ग्रहण कर लेती है। काम ही भावना है। मूल स्वरूप में काम 'स्वस्थ' रहता है। परन्तु भौतिक रूप में वह वासना युक्त होकर विकार ग्रस्त हो जाता है तथा मानव जीवन का अकल्याण करता है। 'काम' के स्वस्थ स्वरूप में उदात्त, मधुर, तथा कोमल भाव सम्मिलित रहते हैं। सेक्स का शाब्दिक अर्थ लिंग के रूप में ग्रहण किया जाता है। अर्थात् लिंग (सेक्स) द्वारा नर-मादा जीवनोपलब्ध आनन्द की प्रतीति करते हैं। लिंग ही काम भाव का दूसरा स्वरूप माना जाता है। 'काम' शब्द सूक्ष्म है जबकि 'सेक्स' स्थूल है। सेक्स नियंत्रण की श्रेणी में नहीं आता जबकि 'काम' आध्यात्म के रूप में ग्रहण कर नियंत्रित हो जाता है। लोक जीवन में हम 'काम' को सेक्स के रूप में ग्रहण करते हैं परन्तु 'काम' को मानव कल्याण के लिए तथा मोक्ष और पुत्र प्राप्ति के रूप में ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार काम का अर्थ यौन, सेक्स, रति, वासना के निकट लिया जाता है जो स्त्री-पुरुष के संसर्ग को प्रकट करते हैं। तथा काम शब्द स्त्री-पुरुष के संसर्ग का स्वरूप सूक्ष्म स्वरूप हमारे सामने रखता है। 'काम'

डॉ. विजय कुमार पटीर
राजकीय छात्रावास के सामने, वार्ड नं. 11
रावतसर, जिला - हनुमानगढ़ (राज.)
335524

में कल्याण की भावना पूर्ण रूप से रहती है परन्तु अन्य यह क्षीण रूप में पाया जाता है।

ऋग्वेद के अनुसार- मन या बुद्धि का रेत्स काम है। रेत् का अर्थ मूल तत्व, रति या बीज से लिया गया है। 'काम' मन का बीज तत्व या मूल तत्व है। यह तत्व ही नर-मादा को परस्पर आकर्षित करता है। हिन्दी विश्वकोश में 'काम' को मन का मुख्य और प्रधान तत्व बताया है। 'मानवीय शरीर में जिस प्रकार श्रद्धा, मेघा, शुधा, निद्रा, स्मृति आदि अनेक वृत्तियों का समावेश है, उसी प्रकार काम वृत्ति भी देवी की एक कला के रूप में यहाँ निवास करती है और वह चेतना का अभिन्न अंग है।'

ऐतरेय उपनिषद् काम को व्याख्यित इस प्रकार करता है - 'अप्राप्त विषय की आकांक्षा यानी तृष्णा को काम कहते हैं।' प्रज्ञान स्वरूप बह्म की उपलब्धि के लए अन्त:करण की सोलह वृत्तियों में से एक काम है। इस उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म के लिए एक साधन भूत वृत्ति है। रागात्मक वृत्ति प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है जो एक 'काम' तत्व ही है। यह संसार के सृजन का कार्य करता है। मानव कल्याण के लिए 'काम' आवश्यक तत्व है। 'द्यावा पृथिवी, माता-पिता, योषा वृषा, स्त्री पुरुष का जो दुर्धर्ष पारस्परिक राग है वहाँ काम है।' यहाँ यह समझ लेना ज़रूरी है कि 'काम' एक स्वस्थ जीवन को व्यक्त करता है जो उदात्त भावों से जीव संसार सृष्टि के लिए आवश्यक है। एक पुरुष के मन में एक सुन्दरी का निर्माण होता है तथा एक स्त्री के मन में एक आदर्श पुरुष का स्वरूप निर्मित होना ही कायिक, मानसिक, प्राणिक आकर्षण 'काम' का उदात्त स्वरूप प्रकट करता है।

कामसूत्र के आदि आचार्य वात्स्यायन के अनुसार 'आत्मा से युक्त मन के द्वारा कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा एवं नासिक या प्राण की पंचेद्रियों का अपने-अपने विषय में प्रवृत्त होकर आनन्द प्राप्ति का नाम काम है।' इस प्रकार आचार्य वात्स्यायन ने पाँच इन्द्रियों से प्राप्त आनन्द प्राप्ति होना शारीरिकता के साथ-साथ मन का आत्मा से संयुक्त होना आवश्यक माना है। एक बात और यहाँ काम के रूप में स्पष्ट होनी चाहिए वह है 'काम' तभी जीवन के लिए उदात्त तत्वों की निर्मित करता है जब स्त्री-पुरुष दोनों में एक भाव पाया जाता है अगर दोनों में से कोई भी एक अनिच्छा प्रकट करे तो वह बलात्कार है उसे हमें मानव कल्याण के रूप में नहीं देखना चाहिए। यही कारण है कि आज संसार में स्त्री और पुरुष स्वतंत्र तो चुके हैं वह काम से पीड़ित है परन्तु उस काम की तृप्ति न होने पर वे एक-दूसरे का बलात्कार ही कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में मन और आत्मा उदात्त न होकर शारीरिक एकांगी वासना ही शांत होती है। परन्तु यह पूर्ण शांत नहीं होती है इसमें आत्म सन्तुष्टि नहीं देखी जा सकती, केवल शरीर की वासना को विकृत ही किया जाता है। ' काम' यहाँ विकृत होकर जीवन का अकल्याण करता है। यही दशा आज हम समाज और साहित्य दोनों में देख रहे हैं। शारंगधर के मतानुसार स्त्रियों में पुरुषों का और पुरुषों में स्त्रियों का परस्पर स्वाभाविक स्नेह है, उसी को 'काम' कहते हैं। यहाँ स्नेह शब्द नर-नारी के पारस्परिक आकर्षण का ही वाचक है। वह कोरे उपभोग के संकुचित दायरे से बाहर है।

'काम' का मनोवैज्ञानिक स्वरूप मानव जीवन की एक शक्ति के रूप में ग्रहण किया जाता है। 'फ्रायड' 'लिबिडो' नामक व्यापक एवं जीवनदायिनी शक्ति मानता है और यौन भावना को उसका एक तत्व ही स्वीकार करता है। फ्रायड कहते हैं - 'गम्भीरता से सोचने पर हम देखते हैं कि यह बताना आसान नहीं कि यौन शब्द के अन्तर्गत क्या-क्या बातें आती है। शायद इसकी यही परिभाषा ठीक हो सकती है कि दोनों लिंगों के अन्तर या भेद में संबंधित प्रत्येक बात यौन बात है।' मनोविज्ञान 'काम' को एक 'वृत्ति' मानता है जो कि भारतीय आदि धारणा के अनुकूल नहीं है। परन्तु आज वर्तमान समय में काम का अर्थ और परिभाषा दोनों ही बदल गए हैं। आज कुछेक क्षेत्र को छोड़कर काम ने सूक्ष्म की जगह स्थूल को ग्रहण कर लिया है। वह आनन्दोपलब्धि की जगह शारीरिक योग को स्वीकार कर रहा है। 'काम शब्द का प्रयोग प्राय: स्त्री और पुरुष के पारस्परिक आकर्षण संबंधी इस पूर्ण व्यवहारों तथा प्रजनन क्रिया के लिए किया जाता है और इसी सीमित अर्थ से हमारा काम भी चल जाता है। पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि इस शब्द की परिधि अधिक विस्तृत है, स्त्री-पुरुष की पृथक स्थिति के साथ उनके पारस्परिक आकर्षण तक ही सीमित नहीं।' इस प्रकार हम 'काम' का अर्थ केवल जीवन को बढ़ाने में ही नहीं ले सकते, वह कई क्षेत्र में अपना विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। 'काम' शरीर, मन, आत्मा, मोक्ष, ब्रह्म, आनन्द पुत्रोपलब्धि आदि की सूक्ष्मता को आधार प्रदान करता है। वह शरीर के साथ-साथ मन और आत्मा का विषय है। अकेले स्त्री या पुरुष के बिना 'काम' पूर्ण नहीं होता है। अकेले तो वे केवल वासना को और ज़्यादा बढ़ाकर जब अपनी वासना शांत करते हैं तो शरीर और आत्मा क्षीण ही होती है। वहाँ शरीर, मन और आत्मा का कोई सामंजस्य नहीं रहता। 'काम' तभी स्वस्थ और उदात्त मूल्यों की स्थापना करता है जब मन, आत्मा और शरीर के साथ स्त्री-पुरुष एक भाव होकर संसर्ग करते हैं, तथा अपने मूल तत्व को प्राप्त करते हैं। यह लौकिक और अलौकिक दोनों तत्वों में अपने केन्द्र बिन्दु को ग्रहण करता है।

'काम' और 'प्रेम' दोनों शब्द एक दूसरे के बिना अधूरे है। 'काम' की पूर्ण प्राप्ति प्रेम के उदात्त तत्व से ही सम्भव है। अगर स्त्री-पुरुष दोनों प्रेमहीन होकर 'काम' करते हैं तो वह निकाम ही है। इसमें सिर्फ एक किसी को शारीरिक तुष्टि हो सकती है परन्तु दूसरे की वह मजबूरी होती है। 'काम' के विषय में स्त्री-पुरुष की अर्द्धनारीश्वर रूप में भी वृत्ति होती है। प्रकृति में स्वत: ही नर और मादा अंश विद्यमान रहता है अर्थात् माता और पिता अर्द्धनारीश्वर हैं। जो एकल होकर प्रकृति का संचालन करते हैं। इस काम के लिए आधे पुरुष और आधे स्त्री भाग का विवेचन मिलता है। अर्थात् पुरुष अपने आप में आधा पुरुष और आधा स्त्री है उसी प्रकार स्त्री भी आधी स्त्री और आधी पुरुष है। दोनों काम उदात्त जीवन के प्रति एकत्व का निर्माण करते हैं। तथा 'काम' के सम्पूर्ण तत्वों को ग्रहण कर

एकाकार हो जाते हैं। एकाकार होकर ही पुरुष-पुरुषत्व और नारीत्व नारी जीवन को प्राप्त होती है।

आचार्य जैनेन्द्र के मतानुसार - 'नर-नारी के बीच पारस्परिक आकर्षण एवं आवश्यकता का सूत्र अमोघ जैसा लग जाता है। इसको 'काम' कहा जाता है।' मानव जीवन मूल्यों तथा पुरुषार्थों पर विचार करते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं - 'सांसारिक इच्छाओं, विषयों की वासनाओं की पूर्ति से और विशेषत: स्त्री पुरुष के परस्पर प्रेम, संगम, सहयोग और उपयोग से जिस सुख और आनन्द का अनुभव होता है, उसे काम कहते हैं।' यहाँ 'काम' का विस्तृत अंकन सांसारिक इच्छा के साथ-साथ सीमित अर्थ में नर-नारी की एक-दूसरे के प्रति आसक्ति और परस्पर मिलन की उत्कण्ठा से उत्पन्न सुख 'काम' है। 'काम' का स्वरूप प्रेम है परन्तु इसका अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि काम को प्रेम स्वरूप तभी बनाया जा सकता है जब 'काम' को पूर्ण व्यापक और उदार रूप में ग्रहण किया जाए। ऐसा करने पर इन्द्रियों का विकार दूर होता है वह सात्विक और उदात्त हो जाता है। 'काम-वासना की दुर्गंधि दूर होने पर ही प्रेम-भाव की दशा आती है।'

आज काम को जीवन के श्रेष्ठ तत्वों में स्वीकार कर मानव कल्याण किया जा सकता है। परन्तु आज साहित्य में इसके उदात्तत्व को विकृत रूप में रेखांकित किया जा रहा है। यह सत्य रूप में हमारे सामने समाज को परोस रहा है जिसके कारण मानव जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यही वजह है कि लोग वासनामय साहित्य देख-सुनकर काम पीड़ित ही नहीं हो रहे वरन् बलात्कार और हत्या भी कर रहे हैं। काम-मूल्य आज विकृत हो चुका है इसका अध्ययन जीवन के परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म रूप से किया जाना अपेक्षित हो जाता है। आदि आचार्यों ने लौकिक जीवन में 'काम' की अवधारणा को मानव जीवन के स्वस्थ भावों में परिभाषित किया है लेकिन आज के आचार्य 'काम' के नाम पर केवल शरीरिक संसर्ग को महत्त्व दे रहे हैं यह ज्ञान आने वाले समय में अति भोग के रूप में परिणित होकर 'अकाम' के रूप में विस्फोट करेगा जो निश्चित रूप से मानव को काम विहीन कर देगा और उसकी आगामी नस्लें भी विकृत हो जाएगी।

'काम' की परिभाषाओं तथा अर्थों का अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि 'काम' एक अर्थ बहुल शब्द है। इसका मुख्य अर्थ 'चाह' या इच्छा है। 'काम' शब्द दो प्रकार के अर्थ व्यंजित करता है एक तो विस्तृत तथा सूक्ष्म दूसरा संकुचित और सीमित। एक अर्थ यह आत्मा, मन और शरीर के सूक्ष्माति सूक्ष्म बिन्दु को ग्रहण करता है तो दूसरा अर्थ केवल स्त्री-पुरुष के शरीर की स्थूल वृत्ति या दैहिक तृप्ति का उद्घोषक है। 'काम' स्वयं एक प्रकृति है जो हर जीव में उसके मन स्वरूप में प्राप्त है। यह एक शक्ति है ब्रह्म है आनन्द है और जीवन है।

स्त्री और पुरुष दोनों ही काम-स्वरूप है। दोनों में रति भाव होता है। इस काम और रति के बिना वे मनुष्य या जीव नहीं कहे जा सकते। 'काम- के लिए केवल शरीर भोग नहीं होता, काम में मन और आत्मा का भी पूर्ण योग होना आवश्यक है। स्त्री-पुरुष का आकर्षण भी प्रकृति है। दोनों किसी भी प्रकार से अपना मन: आत्मा को इससे नहीं बचा सकते, परन्तु वे इस काम के अधीन होकर एक स्वस्थ उदात्त जीवन की कल्पना तो अवश्य ही कर सकते हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार -'काम के साथ सौन्दर्य का मौलिक संबंध है किन्तु सौन्दर्य का स्वरूप काम को अतिक्रांत कर ही निखरता है, काम का उन्नयन सौन्दर्य है।' यहाँ सौन्दर्य से उपजे फल या तत्व आनन्द है और यह आनन्द मूल रूप से काम है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त का मत है कि 'सौन्दर्यनुभूति एक संवेदन मात्र है, जब इसके साथ सुन्दरी की प्राप्ति का विचार या इच्छात्मक तत्व मिश्रित होता है तो हमारी अनुभूति आकर्षण का रूप धारण कर लेती है। कहना न होगा कि यह इच्छात्मक तत्व काम वासना से प्रेरित होता है।' यहाँ सौन्दर्य के साथ संयम का गुण प्रतिपादित किया गया है। अब मुख्य बात यहाँ यह भी है कि सौन्दर्य के दो अहम तत्व आकर्षण और आसक्ति माना गया है। अत: संयम साध्य नहीं हो सकता। भारतीय सम्प्रदाय में काम को कामदेव, प्रेम देव, आनन्द, फल, ब्रह्म अनुपम और अतुल सौन्दर्य सम्मोहन का प्रतिपादक स्वीकार किया गया है। इस प्रकार श्रृंगार में एक तत्व काम और दूसरा तत्व सौन्दर्य है।

निष्कर्षत: काम का अर्थ एवं परिभाषा सूक्ष्म, गहरा और विस्तृत प्राप्त होता है। यह आध्यात्म क्षेत्र में ब्रह्म है तथा लौकिक स्वरूप में आनन्द की प्राप्ति कर नए जीव की सृष्टि करता है। संसार के लिए काम अनिवार्य है परन्तु अतिकाम या योग मनुष्य को क्षीण करता है। काम के लिए कामना अर्थ को व्यंजित किया गया है। लौकिक तथा अलौकिक यानी अध्यात्म और गृहस्थ दोनों के लिए काम आवश्यक है। इस काम तत्व के लिए शरीर का होना आवश्यक है। जो एक के लिए ब्रह्म का निर्धारण करता है तो दूसरे के लिए जीवन की उपलब्धि। इस काम के बिना दोनों की अधूरे हैं। 'काम' प्रकृति जन्य होने से कोई भी उससे बच नहीं पाया है। देखा जाए तो कुछ लोग इस काम से दूर भागने का प्रयत्न करते हैं परन्तु वे असफल होते हैं, फिर अपनी असफलता स्त्री के सिर मढ़कर काम को दूषित करने का प्रयास करते हैं तथा स्वयं पवित्र का ढोंग रचाते हैं। आधुनिक जीवन के उदात्त भावों के लिए हमें 'काम' तत्व पर विचार करना अनिवार्य है। आज काम ने कामुकता का स्थान ले लिया है जो इन्टरनेट, मोबाइल के माध्यम से हम तक पहुँच रहा है। अब इस युग ने अगर इस कामुकता पर अकुंश नहीं लगाया गया तो 'काम' अपने आप में विकृत होकर अतिभोग की तरफ अग्रसर होगा। तो मानव सभ्यता के लिए एक विकट परिस्थिति उपस्थित होगी। आने वाले समय में काम अति में परिणित होगा, प्रत्येक व्यक्ति इससे पीड़ित होकर 'काम' युद्ध करेगा। अत: आज 'काम' विषयक अवधारणाओं का संयम अध्ययन आवश्यक है। मानव सभ्यता संस्कृति के लिए काम नियंत्रित होना आवश्यक है उसके सात्विक भावों पर बल देकर मानव कल्याण के लिए पुन: विचार करना ज़रूरी है।

000

शोध आलेख

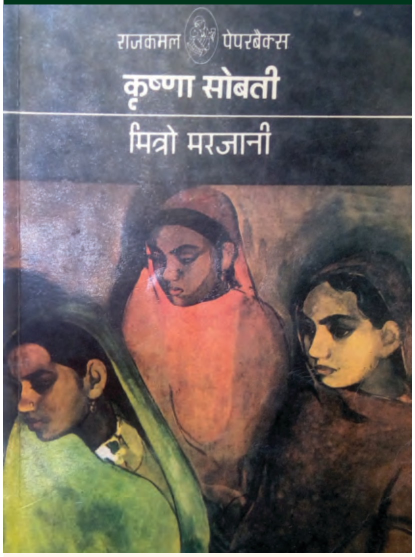

(शोध आलेख)

मित्रो मरजानी : स्त्री जैविक अधिकारों का शंखनाद

शोध लेखक : शबनम भारतीय
निम्स विश्वविद्यालय, राजस्थान
जयपुर

मित्रो मरजानी कृष्णा सोबती की उन्मुक्त कलम से उकेरा गया एक ऐसा अद्वितीय चरित्र है, जो इससे पूर्व हिन्दी साहित्य के विराट् गगन पर दिखाई नहीं देता है। क्योंकि इस कहानी में कृष्णा सोबती ने कहानी की नायिका मित्रो को माँ, पत्नी, बहन, स्त्री जैसे परम्परागत स्वरूप की अपेक्षा एक मनुष्य रूप में चित्रित किया है। स्त्री यौनिकता को आधार बनाकर रची गई यह एक ऐसी कहानी है जिसमें स्त्री दैहिकता के प्रश्न को मुख्य रूप से सामने रखा गया है। कहानी यह विचार करने को विवश करती है कि स्त्री भी पुरुष की तरह हाड़ माँस की जीती जागती इंसान होती है। प्यार, द्वेष, ईर्ष्या, सुख, दुख, दर्द, पीड़ा जैसे मानवीय भावों की तरह ही उसमें जिस्मानी चाहत के भी जज़्बात होते हैं। मित्रो मरजानी की मित्रो स्त्री देह प्यास को आधार बनाकर गढ़ा गया एक ऐसा पात्र है जो अपनी जीवनगत समस्याओं, कमियों के लिए भाग्य को उत्तरदायी मान रात के अँधेरे में अश्रु नहीं बहाता वरन् उससे भिड़ता, दो-दो हाथ करता है। सहज मार्ग से प्राप्त न होने पर छीन कर प्राप्त कर लेना चाहता है। संस्कार, आदर्श, पवित्रता जैसे मुलम्मे को छोड़ अपने बहुमूल्य जीवन को क्षण-क्षण नष्ट नहीं करता बल्कि अपने जीवन के आदर्श स्वयं निर्धारित करता है। क्योंकि मित्रो परिवार, समाज, धर्म इज़्ज़त के नाम अपनी ज़िंदगी लुटाती नहीं बल्कि अपने हक़ की आनन्द-खुशी को लूटकर जीना चाहती है। उसे स्वयं पर अभिमान है, प्रेम है और अपनी महत्त्वकांक्षाओं को अपने मतानुसार पूर्ण करने का माद्दा भी है। समाज के द्वारा बनाए गए नैतिकता, मर्यादा के ढाँचे को चकनाचूर कर वह उस अदृश्य आमोद-प्रमोद पूर्ण यात्रा पर निकल पड़ती है जहाँ एक स्त्री के जाने, चलने पर सख्त पाबन्दियाँ है और जब कोई स्त्री ऐसा दुस्साहस करती है तो परिवार, समाज, धर्म और स्वयं स्त्रियाँ अनेकानेक प्रकार की उँगुलियाँ उठा उसका जीना मुश्किल कर देती हैं। ऐसी ही निडर निर्भिक पात्र है मित्रों जो ऐसा साहस करने की हिम्मत करती है। जो अपने दैहिक सौन्दर्य को अपनी पराशक्ति मानती है और पुरज़ोर तरीके से इस बात का उद्घोष करती भी दिखाई देती है। 'जिठानी मेरे जेठ से कह रखना, जब तक मित्रो के पास यह इलाही ताक़त है, मित्रो मरती नहीं।'

साहित्यकारों की कलम से स्त्री सर्वदा बिचारी रूप में चित्रित हुई है। एक ऐसी कोमल-सी, गुमसुम-सी गुड़िया, जो भाग्य से प्राप्त जीवन और पति को अपने जन्मों का लेखा मान मात्र स्त्री होने के नाते जीती चली जाती है जो 'कोई क्या कहेगा' जैसे वाक्यों को बोझ तले इस तरह दबी-कुचली रहती है कि अपने दैहिक तो क्या व्यक्तिगत जीवन तक के बारे में भी नहीं सोच पाती। ऐसे ही गुमनाम पात्रों से अटे पड़े साहित्यिक संसार में कृष्णा सोबती का मित्रो जैसा स्वछन्द विचार मन चरित्र दूर से ही दिखाई पड़ जाता है, जो पिछली सदी में स्त्री मुक्ति का उसकी दैहिक स्वतन्त्रता का प्रतीक बन साहित्य की दुनिया में अजर-अमर हो आज एक अलौकिक व्यक्तित्व बन चुका है। क्योंकि वह एक ऐसा पात्र है जो सिर्फ अपने जीवन को ही नहीं वरन् अपने शरीर को और उसके अवर्चनीय सौन्दर्य को अपनी दृष्टि से अवलोकन करती मन्त्रमुग्ध होती हुई अपने आप पर अभिमान करती है। 'मंझली लेटी-लेटी उठ बैठी। हाथों से छातियाँ ढँक मग्न हो कहा-सच कहना जिठानी सुहागवंती। क्या ऐसी छातियाँ किसी और की भी है।'

वह अपने पति से प्रेम करती है परिवार के सुख-दुख में हाथ बँटाती है लेकिन 'पतिव्रता' जैसे तमगे में उसकी रुचि नहीं। वह अपने जीवन को पूर्णतया जीना चाहती है क्योंकि वह मानती और जानती है कि यह जवानी और सौन्दर्य शाश्वत नहीं है। 'घरवाले के घुटने पर कोहनी टेक, और आँखों में आँखें डाल कर कहा-'रिसालेदार जी सदा न रहेंगे ये रिसाले।'

'मित्रो ने दोगुनी शोखी से कहा-मनुक्ख का चोगा क्या बार-बार माहिया।'

ऐसे वाक्याशों से वह पति को प्रेरित करती है तो अपनी जिठानी को भी ज्ञान ध्यान के फेर में न पड़ जीवन जीने को प्रेरित करती है। 'अरी, खा, पी, मौज करो! इस बुलबुले का क्या भरोसा! आज है कल नहीं!'

वस्तुत: मित्रो मरजानी एक मध्यमवर्गीय क़स्बाई संयुक्त परिवार की कहानी है। जिसमें संयुक्त परिवार की तमाम तरह की समस्याएँ, आहटें सुनाई पड़ती है लेकिन मुख्य पात्र और

शबनम भारतीय
सदीक भारतीय, गफ्फार खान अस्पताल के पास, वार्ड न. 18, फतेहपुर शेखावाटी
सीकर, राजस्थान
पिन 332301

समस्या मित्रो और उसकी यौनिक समस्या है जो रोटी, कपड़ा और मकान की तरह आधार भूत आवश्यकता के रूप में दर्शाई गई है। मंझली अर्थात् मित्रो नख-शिख सौंदर्य से लबालब स्त्री है। तरुणाई जिसके अंग-अंग में फूटती है। मित्रों के माध्यम से एक स्त्री की उस जैविक ज़रूरत को रेखांकित किया है जिस पर आज वर्तमान समय में तो बहुत कुछ लिखा, पढ़ा और बोलने का साहस किया जा रहा है लेकिन 1966 का वह समय जिसमें कहानी लिखी गई, उस समय ऐसे बेबाक-बेख़ौफ़ ढंग से लिखने की हिम्मत कृष्णा सोबती से पूर्व कोई साहित्यकार नहीं कर पाया था, क्योंकि स्वतंत्रता के पश्चात् का वह समय स्त्री विमर्श, स्त्री अधिकार, शिक्षा, जागरूकता और सशक्तिकरण की दृष्टि से शून्य था।

मित्रो का पति सरदारीलाल उसकी शारीरिक ज़रूरत को पूर्ण करने में असक्षम दिखाई देता है क्योंकि शारीरिक रूप से उसमें कमी है। ऐसे में मित्रो इस नियति को दोष मान चुप नहीं बैठती और घर की स्त्रियों को सहज और सरल तरीके से स्पष्टतया अपनी असन्तुष्टि की बात कहने में संकोच नहीं करती। अपनी हम उम्र देवरानी-जेठानी को भी वह अपने पति सरदारीलाल की असमर्थता की बात में निस्संकोच कहने में नहीं चूकती - 'अरी मेरी सयानी जिठानी, वह तो भागता फिरता होगा नीम हकीमों के यहाँ।' वह अपने पति सरदारीलाल को हर तरीके से रिझाने-समझाने का प्रयास करती। कानों के झुमके, हाथों की चूड़ियाँ और नशीली शौख़ अदाओं से उसको आकर्षित करने का प्रयास करती है। अपने प्रति प्रेम, प्यास जगाने का प्रयास करती है कभी मनुहार कर उसका हृदय जीतने का प्रयास करती है। यहाँ तक कि उसे प्रसन्न करने के लिए हज़ारों रुपये भी दे देती है। 'मित्रों के हाथों से गस्से ले-ले सरदारीलाल चुप-चाप चबाता रहा तो आँखों में अनोखी अदा भर शोखी से कहा-हुक्म की बान्दी हूँ चन्न जी, इतनी रुखाई क्यों?' मित्रो ने भूरी आँखे नचाई-'मैं किस्मत जली क्या करूँ? मेरा ढोल तो मुझसे बेमुख।' इस सब के बाद भी जब सरदारीलाल उसकी तरफ ध्यान नहीं देता तो उसे समझाती भी है और ताने मार अपनी भड़ास, कुण्ठा को भी अभिव्यक्त करती है। 'हिन-हिन करती मँझली ने घरवाले का मुँह चूम लिया और मटककर कहा-सस्सी के पुन्नू याद रख, खाण्ड का बताशा और नून का डला-धुलकर ही रहेंगे।'

'अरे, जिसने नार-मुटियार को सधाने की पढ़ाई नहीं पढ़ी, वह इस बाला की बलूगड़ी को क्या सधाएगा?' वह कभी आँखें दिखाकर तो कभी प्रेम से, कभी आंगिक इशारों से तो कभी यौवन के लटकों-झटकों से अपने पति में अपने लिए चाहत और शारीरिक भूख जागृत करने का प्रयास करती है।

अपने पति की तवज्जो प्राप्त करने और उससे आनन्द पाने को वह अपनी सारी स्त्री सम्पदा और बचत भी बिना किसी झिझक के सरदारीलाल को सौंप देती है, ताकि वह अपनी व्यापारिक परेशानियों से बाहर निकल कर उसे वह सुख दे सके जिसके बिना वह अपने आप को अधूरा समझती है।

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि वह सिर्फ जिस्मानी रिश्तों की भूखी है, वह अपने परिवार-पति के प्रति सभी ज़िम्मेदारियों को निभाने का भरपूर प्रयास करती है लेकिन साथ ही अपनी व्यक्तिगत ज़रूरतों के प्रति भी सचेत है और उनको भी पूर्णतया प्राप्त कर रस मग्न होना चाहती है। वह चाहती है कि उसका पति उसे चाहे, सुख-दुख साँझा करे। लेकिन उसका पति सरदारीलाल इस दृष्टि से भी नीरस दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि मित्रो न सर्फ तन से बल्कि मन से भी प्यासी का इज़हार करती है 'महाराज जी, न थाली बाँटते हो न नींद बाँटते हो। दिल के दुखड़े ही बाँट लो।'

अपने हर तरह के प्रयास के बाद भी जब उसे सफलता नहीं मिलती है तो तक़दीर का फैसला मान रोती-कुढ़ती नहीं है वरन् पूरी दबंगता और मुँहजौराई के साथ घर के बाहर अपनी शारीरिक आवश्यकता को पूर्ण करने का पूरा-पूरा प्रयास करती है जिसे कहने, स्वीकार करने में उसे न झिझक है न डर और ना ही अपराध बोध। यही कारण है कि जब घर के मालिक, अर्थात् ससुर के समक्ष उससे इस बाबत पूछताछ की जाती है, तो वह निर्भयता से स्वकीर कर लेती है और बेख़ौफ़ होकर कहती है कि 'जिसे जो पूछना हो? बेधड़क हो पूछे। सात गुनाह मित्रो के, पर झूठ की उसे सौंह।'

'कटोरी सी दो आँखें नचाकर कहा-सोने सी अपनी देह झूर-झूरकर जला लूँ या गुलजारी देवर की घरवाली की न्याई सुई सिलाई के पीछे अपनी जान खपा लूँ? सच तो यूँ है जेठजी कि दीन-दुनिया बिसरा मैं मनुक्ख की जात से हँस खेल लेती हूँ।'

अपनी यौनिक ज़रूरतों के पीछे वह इतनी सजग-सतर्क और प्राकृतिक है कि अपनी दैहिक पिपासा के बवण्डर में अपने देवर-जेठ को भी लपेट लेने की कोशिश करती है। सबसे बड़ी बात ये कि वह यह सब छुप कर नहीं बल्कि डंके की चोट सबके समक्ष ललकार मार कर कहती है- 'मित्रो कुछ कहने जाती थी कि द्वार पर जेठ की ऊँची-परछाईं देख ठिठक गई। कल रात की बात याद कर मसखरी से छोटा सा घूँघट निकाल बोली- 'जेठ जी, अपनी जिठानी के तुल तो मैं कहाँ पर एक नज़र इधर भी।'

मंझली ने आँखों ही आँखो में देवर को बेपर्दा कर दिया और सिर हिलाकर बोली- 'काका गुलजारी, माँ की इतनी सी घुड़की से डर गया, तू तो चोखा गबरू जवान है। फूलवती क्या तेरे संग।' इतना सब होने पर भी उसे अन्य स्त्रियों के सम्मान और अधिकार का अहसास है यही कारण है कि वह अपनी जिठानी से कहती है- 'जिठानी तुम्हारे हिये में बसा है वह राजा, नहीं तो उसका ज़ोर-जबर, तेवर त्यारियाँ सब लेती।'

शारीरिक रूप से असन्तुष्ट रहने पर भी वह अपने पति सरदारी को हृदय से चाहती है और किसी भी स्थिति में उसे खोना नहीं चाहती। वह उसे हर बद नज़र और कुचक्र से बचाने रखने का भी पूरा-पूरा प्रयास करती है। 'अरी देवरानी! कुछ होश कर ! जेठ खड़ा है। लाख तुझसे गौरी-चिट्टी हूँ पर तेरे इस सुरमेदानी दिल की क्या ख़बर, अपने जेठ से ही लगा बैठे।'

यही कारण है कि अपनी माँ के घर जाने

जब पर उसे वह सब मिल जाता है, जो वह चाहती है फिर भी सब ठुकरा वह अपने पति के पास लौट आती है। 'मित्रो हँसी की तान गमक गई। माँ को गुदगुदाकर कहा-ऐसा गजब न करना, बीबो, मैं हाथ से अपना गबरू गँवा बैठूँगी।'

स्पष्ट है कि उसके प्यासे तन में एक प्रेम पूर्ण हृदय भी है जो उसको औदात्य के उच्च सोपान पर ले जा खड़ा करता है। वह अपने पति से नाराज-रुष्ट दिखाई देती है क्योंकि उसके विरक्त भाव के कारण वह रात में अपने आप को उपेक्षित महसूस करती है यही कारण है कि उसकी जिठानी जब उसे लोक लाज का पाठ पढ़ाने समझाने का प्रयास करती है तो वह स्पष्ट कह देती है- 'ऐसे ही मर्द जने कि हुक्म बन्द लौंडी हूँ न ! मिलाने को तो रातों मुझसे नज़र न मिलाएँ। मैं उसके तहबन्द के पल्लू खिंचती रहूँ।'

मित्रो को कृष्णा सोबती जी ने एक ऐसी दैहिक चाहत से परिपूर्ण उफनती बिंदास, अल्हड़ बरसाती नदी के रूप में चित्रित किया है जो धर्म-कर्म-शर्म के नाम पर अपने तन-मन को मारती नहीं, इच्छाओं को मन की कोठरियों में दफन नहीं करती। वह सामान्य अच्छाई-बुराई के भावों से ओतप्रोत एक ऐसी स्त्री है जो अपने भावों को चाहे वे शारीरिक हो या मानसिक बेलोस अभिव्यक्त करती है ।

अपनी चाहत के मार्ग में आने वाले दीन-धर्म की बाधा को भी वह यह कह कर नकार देती है कि संसार का पालक-रक्षक ईश्वर भी एक पुरुष ही होगा। उसे अपने शारीरिक सौन्दर्य पर गुमान-अभिमान ही नहीं पूर्ण विश्वास भी है कि वह भी अगर मित्रो से एक नज़र भेंट कर लेगा तो अपने को भूल जाएगा। 'मित्रो ने सदा की तरह आँखे नचाई-काहे का डर? जिस बड़े घर वाले का दरबार लगा होगा वह इन्साफी क्या मर्द जना न होगा। तुम्हारी देवरानी को भी हाँक पड़ गई तो जग-जहान का अलबेला गुमानी एक नज़र तो मित्रो पर भी डालेगा।'

वह इस बात से बहुत हतप्रभ होती है कि संसार में विवाहित पुरुष से उत्पन्न संतान को तो पवित्र मान कर मान्यता दी जाती है लेकिन पर-पुरुष से जन्म लेने वाली संतान को पाप समझा जाता है उसका यह सोच-विचार उसके स्वछन्द-स्वतन्त्र और जागरूक मानस की अधिकारिणी होने का प्रमाण देता है। 'जिन्द-जान का यह कैसा व्यापार ? अपने लड़के बीज डाले तो पुण्य, दूजे डालें तो कुकर्म।'

वह इस पुरातन विचार को भी नहीं मानती है कि संतान प्राप्ति ईश्वर की देन है। 'मित्रो ने सास से मसखरी की-अम्मी, जिस दाते का नाम लेती हो, उसे आँख से किसने देखा है? असल पैग़म्बर तो तुम्हारे बेटे ठहरे, जब चाहे पौदे रोपे दें।' मित्रो मरजानी की मित्रो अपने समय का अतिक्रमण कर कृष्णा सोबती की कलम की नोक से निकल स्त्री मनोभावों की प्रतीक बन गई। स्वतन्त्रता के पश्चात का वह समय जब स्त्री स्वतन्त्रता या स्त्री विमर्श जैसी कोई हलचल समाज में नहीं दिखाई देती थी। स्त्री अधिकार नाम शब्द का संविधान में तो शब्द उल्लेख मिलता था लेकिन सामाजिक स्तर पर उस समय ऐसा कोई प्रमाण, निशान नहीं दिखाई देता था।

मध्ययुग की सामन्तशाही और मुगलकालीन संस्कृति का प्रभाव समाज में जड़ें जमाए हुए था। ऐसे जड़ और शून्य, पुरुष प्रधान, धार्मिक अंधविश्वासों, मान्यताओं कर्मकाण्डों में डूबे समय में कृष्णा सोबती एक ऐसी कहानी लेकर आईं जो पूर्व में अनवर्ण्य थी और जो उनकी क्रान्तिकारी कलम की तरह ही निर्द्वंद्व, निडर-बेबाक-बेख़ौफ़ थी। उनका यह नव रूप सृजन समाज की असंख्य दबी-कुचली, स्त्रियों की आवाज़ बन कर उभरी। जो समाज के डर से देह-खोह में दबी-छुपी दमित भावनाओं का प्रकटीकरण नहीं कर पाती है। कृष्णा सोबती ने मित्रो के बहाने स्त्रियों के उन जैविक अधिकारों का शंखनाद किया है जिस पर पुरुषों का युगों-युगों से एकल अधिकार था। स्त्री सिर्फ पुरुष की इच्छा और आवश्यकता की पूर्ति की निमित मात्र थी उसकी भी कुछ शारीरिक इच्छा-अनिच्छा, चाहत-कामना होगी किसी ने सोचा भी नहीं था। मित्रो मरजानी के कथ्य ने समाज को इस विषय पर सोचने-विचारने को बाध्य किया। समाज का ध्यान आकृष्ट किया यही उसका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है और यही वो यौनिकता की अभिव्यक्ति है, जो मित्रो को अन्य तमाम प्रकार के स्त्री पात्रों से अलग करती है।

मित्रो ने मूक स्त्री संसार को स्पन्दित किया, संवेदनशील बनाया और पुरुषों को यह सन्देश दिया कि एक पुरुष की शारीरिक असमर्थता का दण्ड एक स्त्री क्यों भोगे? दूसरा यह कि अगर बोल कर अपनी बात कहने का साहस करती है तो क्या मार-पीट कर उसकी आवाज़ को दबाने का प्रयास उचित है? 'मित्रो ने कानों पर हाथ दे आँखें नचाई-ठोक पीट मुझे सबक दोगी तो मैं मुण्डी हिला लूँगी, जिठानी पर जो होंस हैं, इस तन व्यापी है।'

निष्कर्षत: स्त्री 'सेक्स डिजाडर' की यह स्पष्ट अभिव्यक्ति समाज से लेकर साहित्य तक में जलजला ला देती है। कृष्णा सोबती पर अश्लीलता जैसे आरोपों के साथ मानसिक प्रहार किये जाते हैं। आलोचकों की राडार पर वो सीधी आ जाती हैं लेकिन सोबती जी मित्रो की तरह निर्भय और निडर रह अपने लेखन-विचार पर अडिग रहती हैं। देह की सच्चाई का उद्घोष करती हुई अपनी अनन्नय पात्र के पक्ष में खड़ी-अड़ी रहती हैं। उन्होंने सवाल उठाया कि एक स्त्री अगर अपनी देह प्यास की बात करे, तो वह निर्लज्ज, समाज विद्रोही, संस्कार विहीन क्यों करार दी जाती है? जबकि ऐसी ही परिस्थितियों में एक पुरुष दूसरा विवाह कर या घर के बाहर अपनी आवश्यकता पूर्ण करने के लिए स्वतन्त्र होता है मगर एक स्त्री के माथे 'बंजर भमि' का ठप्पा लगा खारिज कर दिया जाता है। कृष्णा सोबती ऐसी स्त्रियों को ना सिर्फ बोलना सिखाती हैं बल्कि अपने अधिकारों के लिए लड़ना भी सिखाती हैं। मित्रो मरजानी स्त्री तन-मन के अंधकार पूर्ण रात में नव सूर्योदय का सूरज बन उभरती है। उस सूर्योदय का प्रभाव हम आज स्त्री के सशक्त रूप से समाज में देख रहे हैं। कृष्णा सोबती का सन्देश समसामयिक और प्रेरक है।

000

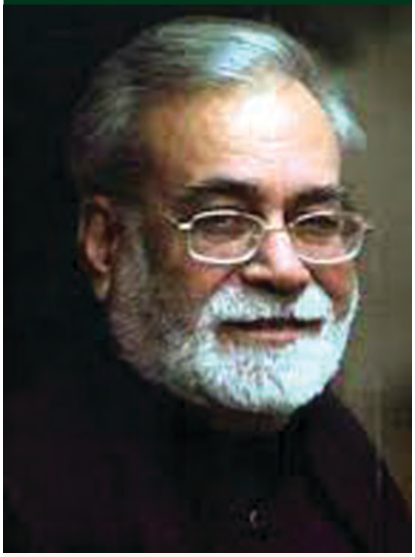

(शोध आलेख)

नरेन्द्र कोहली की व्यंग्य-चेतना

शोध लेखक : डॉ. अजय के. पटेल

डॉ. अजय के. पटेल
शामलाजी आर्ट्स कॉलेज,
शामलाजी जि.अरवल्ली
(उत्तर गुज़रात)

नरेन्द्र कोहली आधुनिक हिन्दी व्यंग्य साहित्य में प्रखर और कठोर व्यंग्य सर्जक के रूप में प्रसिद्ध हैं। एक और लाल तिकोन, पाँच एब्सर्ड उपन्यास, आश्रितों का विद्रोह, जगाने का अपराध, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, आधुनिक लड़की की पीड़ा, त्रासदियाँ, परेशानियाँ आदि उनकी व्यंग्य कृतियाँ हैं। स्वतंत्र भारत में व्याप्त विसंगत और विद्रूप स्थितियों को उन्होंने अपने व्यंग्य का शिकार बनाया है। नरेन्द्र कोहली की पैनी नज़र ने हर क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों को देखा है और उन पर तीखा व्यंग्य-प्रहार किया है। इस सन्दर्भ में व्यंग्य समीक्षक डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी ने लिखा है- 'नरेन्द्र कोहली का व्यंग्य साहित्य इस देश की विभिन्न विसंगतियों पर तीखा प्रहार करने में अग्रणी है और इस कारण व्यावहारिक सच के एकदम निकट है। आज के वातावरण की स्वस्थ भर्त्सना उन्होंने की है।'

देश में सबसे ज़्यादा भ्रष्ट, विकृत और घृणास्पद क्षेत्र राजनीति का है। नेताओं में स्वार्थवृत्ति, लूट-खसोट, दोगलापन, पाखण्ड, चारित्र्यहीनता, अवसरवादिता आदि विकृतियों का होना आम बात बन गई है। समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने की बजाय हमारे नेता वचन और भाषण देते रहते हैं। नरेन्द्र कोहली ने इस विकृति पर कटु व्यंग्य किया है- 'रघुकुल रीति सदा चली आई। प्राण जाय पर वचन न जाई। प्राण भला वचनों के सामने क्या है। हमारे तो प्राण ही हमारे वचनों में बसते हैं। सारा देश बस वचनों पर चल रहा है। भाषणों की खेती होती है। कारखानों में भाषण बनते हैं। सारा देश भाषण खाता, भाषण पहनता-ओढ़ता है और भाषणों के मकान बनाकर रहते हैं। कबाड़ियों का देश है, भाषणों, वचनों, आश्वासनों से काम चल जाता है।'

भ्रष्ट और दुष्ट नेताओं की काली करतूतों ने ऐसा ग़ज़ब ढाया है कि नेता शब्द सुनकर ही आम आदमी के मन में घृणा का भाव जाग उठता है। सारी विकृतियाँ नेता के खून में बस गई हैं। अत: नेता को मच्छर काटते हैं तो मच्छर मर जाते हैं, किन्तु नेता पर कोई असर नहीं होता। नरेन्द्र कोहली ने ब्लड बैंक की अप्सरा नामक रचना में इस तथ्य को विषैले व्यंग्य-प्रहार से धराशायी कर दिया है- 'तुम हमारे नेताओं का खून क्यों नहीं लेती ?- मैंने जिज्ञासा की। एक बार लिया था उसने मुँह बनाया पर वह इतना जहरीला निकला कि किसी के भी काम न आया। अंत में एक चारपाई के खटमल मारने के लिए रख दिया। तीन सौ छत्तीस खटमलों ने वह खून पिया और सारे के सारे मर गए।'

देश में कहीं कुछ अच्छा होता है तो सारी राजनीतिक पार्टियाँ यश कमाने के लिए आगे आ जाती हैं। यदि पृथ्वी पर स्वर्ग उतरे तो स्थिति क्या हो ? ऐसी कल्पना करके नरेन्द्र कोहली ने

राजनीतिक पक्षों की स्वार्थपरता को बेनकाब कर दिया है- 'भूदानी अपना झोला लिये दौड़ेंगे कि डाकुओं के आत्मसमर्पण के समान ही स्वर्ग भी विनोबा ने ही उतारा है। काँग्रेसी अपनी टोली सँभाले दौड़ेंगे कि स्वर्ग उनके लिए उतरा है और गाँधी जी ने उतारा है। नई कांग्रेस वाले गुलाब के फूल लिए दौड़ेंगे, भेज दिया, भेज दिया, नहेरुजी ने हमारे लिए भेज दिया और इस झगड़े का परिणाम यह होगा कि प्रत्येक दल स्वर्गवासी होना चाहेगा और वामपंथी दल इसलिए सब स्वर्ग से नाराज होंगे कि यह धार्मिक-सी चीज़ साली उतरी ही क्यों ?'

पुलिस- विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार लूटख़सोट, षड्यंत्र और काले कारनामों के कारण प्रजा इतनी सहमी हुई है कि वह मदद माँगने के बजाय उससे दूर रहना पसंद करती है। पुलिस कर्मचारियों की तनख्वाह भले ही कम होती है, लेकिन ऊपर की आमदनी बेशुमार होती है। व्यंग्यकार कोहली ने इस तथ्य को व्यंग्य की तीक्ष्ण नोंक से बेपर्दा कर दिया है- 'पुलिस ने एक बार हड़ताल कर दी हमें पेट भरने तक का वेतन दो। तो पुलिस मंत्री ने सिर पीट लिया। अफसरों को बुलाकर डाँटा- कैसे नालायक लोगों को पुलिस में भर्ती कर लिया है। ये लोग पुलिस में होकर भी अपना पेट नहीं भर सकते हैं ? इतने अपराध होते हैं नगर में, एक-एक से दस पैसे लें तो लखपति हो जाएँ और ये कहते हैं - इनका पेट नहीं भरता।'

भारतीय समाज में एक वर्ग ऐसा है जो आज भी अंग्रेज़ी सभ्यता का गुलाम है। कुछ उच्चवर्गीय लोग विदेशी चीज़-वस्तुओं को ख़रीदकर अपनी शानोशौकत बढ़ाने की भरसक कोशिश करते हैं, भले ही वह चीज़ पुरानी या किसी की उतार फेंकी हुई हो। नरेन्द्र कोहली ने ऐसा लोगों की मानसिकता पर करारा व्यंग्य किया है। अमरीकन जाँघिया में माथुर अमरीकन एम्बैसी के कर्मचारी हैं, वे मात्र लाल जाँघिया पहने सरेआम छत पर खड़े थे। लेखक शर्म से भागने लगा तो माथुर साहब को ठेस पहुँची। माथुर साहब ने लेखक को आवाज़ दी और अपने लाल जाँघिये को निहारने लगे। इस पर लेखक ने पूछा- इम्पोर्टेड है ?, तो उन्होंने अपने लाल जाँघिये को बड़े प्यार से सहलाकर कहा- हाँ, हमारी एम्बैसी में मिस्टर किथकिन अमरीका लौट रहे थे तो उनकी चीज़ों की नीलामी में से मैंने ले लिया।'

आधुनिक भारत के उच्चवर्गीय समाज में फैले व्यभिचार और चारित्र्यहीनता पर भी नरेन्द्र कोहली ने तीखा व्यंग्य किया है- 'बच्चा अपनी माँ से कहता है - मम्मी, तुम अपने बॉय-फ्रेंड से डैडी की गर्ल-फ्रेंड को क्यों नहीं पिटवाती।'

शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में भी भ्रष्टाचार बुरी तरह व्याप्त हो चुका है। स्कूल-कॉलेज में एडमिशन के लिए, नौकरी के लिए पैसा देना आम बात हो गई है। ट्यूशन की बदी सब जगह फ़ैल चुकी है। बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ अब पैसों से खरीदी-बेची जा रही हैं। नरेन्द्र कोहली ने इस तथ्य पर तिलमिला देनेवाला व्यंग्य किया है- 'एक कुलपति ने अपने रिश्तेदार को प्रेस खोलने के लिए कहा तो उसने पूछा- इससे क्या होगा ? कुलपति ने जवाब दिया- उससे यह होगा कि मैं ढेर सारी डिग्रियाँ छपवाकर और बोरों में भरवाकर अपने पास रखूँगा। जब कभी लड़के कोई प्रदर्शन करने आएँगे तो मैं उस बोरों में से उनकी इच्छानुसार डिग्रियाँ निकालकर उनको दे दूँगा और उन्होंने लेखक की ओर आँख मारी और कहा- और बरखुर्दार वैसे भी तो डिग्री क्लर्की-व्लर्की की नौकरी के लिए देखी जाती है। बड़ी नौकरियाँ तो यूँ ही मिल जाती हैं। अब मेरे पास कोई डिग्री है या इंदिराजी के पास है ? सब यूँ ही चलता है। तुम्हारे जैसे पढ़े कवि तो मास्टर ही रह गए।'

नरेन्द्र कोहली के व्यंग्य-साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें पुनरावृत्ति का दोष नहीं पाया जाता। व्यंग्यकार ने विभिन्न विकृतियों और विसंगतियों पर व्यंग्य करने के लिए शिल्पगत वैविध्य को अपनाया है। उनके व्यंग्य में अनेक व्यंग्य-सूक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं जो उनके व्यापक जीवनानुभवों को प्रकट करती हैं। आज नरेन्द्र कोहली का नाम हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकारों में लिया जाता है।

000

नई पुस्तक

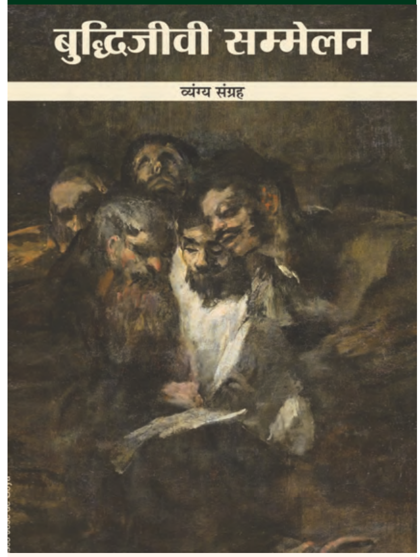

(व्यंग्य संग्रह)

बुद्धिजीवी सम्मेलन

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कथाकार, उपन्यासकार पंकज सुबीर का यह पहला व्यंग्य संग्रह है जिसमें अस्सी व्यंग्य लेख संकलित किए गए हैं। इस व्यंग्य संग्रह के बारे में वे स्वयं कहते हैं- स्कूल में मैंने दो व्यंग्य लेख अपने कोर्स की हिन्दी की पुस्तक में पढ़े थे। पहला था 'जीप पर सवार इल्लियाँ' और दूसरा 'वर्जीनिया वुल्फ़ से सब डरते हैं'। बार-बार उन लेखों को पढ़ा और हर बार आनंद लिया। पढ़ने के साथ लिखने की भी इच्छा होने लगी, तो व्यंग्य लिखना शुरू किया। फिर समाचार पत्रों में मेरे व्यंग्य प्रकाशित होने शुरू हो गए। प्रकाशित होने से और लिखने का हौसला मिला। व्यंग्य लेखन के दौरान ही मेरी कहानियाँ भी समाचार पत्रों में प्रकाशित होने लगीं और कहानियों में मन अधिक रमने लगा। धीरे-धीरे लेखन की धारा कहानी की तरफ़ मुड़ गई। पिछले दिनों जब अपनी फाइलें देखीं, तो ये सारे व्यंग्य कुछ उदास से फाइलों में दबे हुए मिले। मानों बिसरा देने की शिकायत कर रहे हों। सोचा, इनको सामने ले आना चाहिए; और ये व्यंग्य पुस्तक के रूप में अब आपके हाथ में हैं।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

दलित साहित्यकारों के गद्य में दलितों की यथार्थ अभिव्यक्ति का स्वर

शोध लेखक : सीताराम खटीक

भारतीय दलित साहित्य की परंपरा वर्षों से चली आ रही है, जिसके अंर्तगत दलित साहित्य में समय-समय पर कई प्रकार के आंदोलन भी हुए हैं। दलितों में जागृति आने व समय समय पर दलित आंदोलन होने से दलित साहित्य का उद्देश्य सबके सामने आया है इससे दलितों में सामाजिक रूप से दलित चेतना जागृत हुई हैं। आधुनिक गद्य साहित्य में दलित कहानियाँ, दलित आत्मकथा, दलित आलोचना व दलित नाटक एवं पत्रकारिता का स्वरूप देखने को मिलता हैं जिसमे दलितों की यथार्थ अभिव्यक्ति का स्वर दिखलाई पड़ता हैं। आधुनिक दलित साहित्यकारों की दलित कहानियों में जैसे- पचीस चौका डेढ़ सौ : ओमप्रकाश वाल्मीकि, अपना गाँव : मोहनदास नैमिशराय, नो बार : जयप्रकाश कर्दम, सिलिया : सुशीला टाकभोरे, अस्थियों के साक्ष्य : श्योराज सिंह बेचैन, लटकी हुई शर्त : प्रहलाद चन्द्र दास, हरिजन : प्रेम कपाड़िया, फुलवा : रत्नकुमार सांभरिया, प्रतिशोध : पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, वैतरणी : नीरा परमार, सुमगली : कावेरी, भूख : सी. वी. भारती, जंगल मे आग : गौरीशंकर नागदंश, चतुरी चमार की चाल : वी. एल. नायर, अंतिम बयान : कुसुम वियोगी, अंगारा : कुसुम मेघवाल, सुरग : दयानंद बटोही, दलित ब्राह्मण : सत्यप्रकाश आदि कहानियों में दलितों की यथार्थ अभिव्यक्ति का स्वर उभरा है।

इसी तरह आधुनिक गद्य साहित्यकारों की आत्मकथा में भी दलितों की यथार्थ अभिव्यक्ति का स्वर उभरा है, जैसे, अपने अपने पिंजरे भाग 1 व भाग 2 : मोहनदास नैमिशराय, जूठन : ओमप्रकाश वाल्मीकि, तिरस्कृत व संतप्त : सूरजपाल चौहान, नागफनी : रूपनारायण सोनकर, मेरा बचपन मेरे कंधे पर : श्योराज सिंह बेचैन, झोपड़ी से.राजभवन : माताप्रसाद, शिंकंजे का दर्द : सुशीला टाकभोरे, मुर्दहिया : तुलसीराम, मणिकर्णिका : तुलसीराम आदि आत्मकथा, दलितों की यथार्थ अभिव्यक्ति का स्वर बनी है ! मोहन दास नैमिशराय की आत्मकथा अपने-अपने पिंजरे एक संवेदनशील युवक की आत्मकथा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन आत्मकथा दलितों तथा पिछड़ों का सशक्त दस्तावेज़ है। आत्मकथाकार जब समाज में व्याप्त विषमताओं के द्वारा प्रताड़ित हो जाता है, तब उसकी अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में ज़रूर होती है। जब रूखे-सूखे निवालों में भी लाले हों और आदमी आदमी के हाथों नारकीय जीवन जीने को विवश हो तब वह स्वयं में और पशुओं में अंतर नहीं कर पाता। सूरजपाल चौहान ने दलितों की यथार्थ अभिव्यक्ति का स्वर अपनी तिरस्कृत के माध्यम से उजागर किया है।

आधुनिक दलित उपन्यासकारों में उनके उपन्यास भी दलित स्वर की अभिव्यक्ति रहे हैं जैसे ... छप्पर : जयप्रकाश कर्दम, मिट्टी की सौगन्ध : प्रेम कपाड़िया, जस तस भई सवेर : सत्यप्रकाश, मुक्तिपर्व : मोहनदास नैमिशराय, आज बाज़ार बंद है : मोहनदास नैमिशराय, उधर के लोग : अजय नावरिया, थमेगा नही विद्रोह : उमरावसिंह जाटव, रेत : भगवानदास मोरवाल, डंग व सूअरदान : रूपनारायण सोनकर, ढोलन कुंजकली : यादवेंद्र शर्मा चंद्र, आदि उपन्यास दलितों की यथार्थ अभिव्यक्ति का स्वर बने हैं।

आधुनिक दलित साहित्यकारों की आलोचनात्मक रचनाओं में भी दलित अभिव्यक्ति का स्वर दिखलाई पड़ता है, जैसे, ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आलोचना कृति दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र में दलित साहित्य और उसकी सोच एवं व्यापकता को वर्णित किया है ! डॉ. एन. सिंह के आलोचनात्मक रचना दलित साहित्य : चिंतन के विविध आयाम, संत कवि रैदास : मूल्याँकन और प्रदेय है। डॉ. जयप्रकाश कर्दम की आलोचनात्मक रचना इक्कीसवीं सदी में दलित आंदोलन साहित्य एवं समाज चिंतन में दलितों की वर्णजाति की समस्या समाज में उनके मान-सम्मान एवं स्वीकृति की समस्या आदि भावों को उठाया गया है। जयप्रकाश कर्दम का आलोचनात्मक ग्रन्थ धर्मांतरण और दलित में दलित विचारकों, सामाजिक चिंतकों एवं पत्रकारों तथा अनेक लेखकों के लेख संकलित है।

000

सीताराम खटीक
हिन्दी विभाग
राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय,
अलवर (राजस्थान)

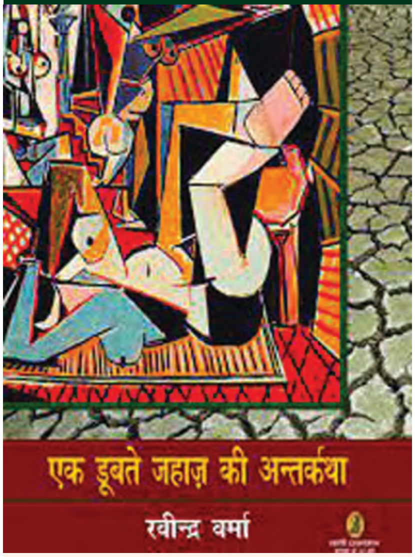

(शोध आलेख)

एक डूबते जहाज़ की अंतर्कथा उपन्यास में मध्यवर्ग की समस्याओं पर चिंतन

शोध लेखक : ओमवती

मानव जीवन की समवेत अभिव्यक्ति समाज के द्वारा होती है। समाज के गठन के साथ मानव जीवन में सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक समस्याओं की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का ताना-बाना निर्मित होता है। मानव के विकास के क्रम में समाज की स्थापना हुई है। मनुष्य ने अपनी पैतृक मूल प्रवृत्ति के कारण नितांत अकेलापन त्यागकर सामाजिक जीवन को अपनाया है। जिसके उपरांत उसकी सामाजिक भावना उत्तरोत्तर विकसित होती रही है। अत: समाज सोद्देश्य व्यक्तियों का गतिशील गठन है। समाज अपने सदस्यों को बाह्य घातक तत्वों द्वारा नष्ट होने से बचाता है और जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा कर उनके व्यक्तित्व का विकास करता है। एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइंसेज के अनुसार 'मनुष्य अपनी उद्देश्य पूर्ति हेतु साधन जुटाने में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से क्रियारत रहता है। मनुष्य के इस कार्यकलाप के फलस्वरूप विकसित मानव संबंधों का संकुल रूप समाज है। इस प्रकार समाज मनुष्य के सामाजिक जीवन का समन्वित मूर्त्त रूप है, जिस पर वंश परंपरा, परिवेश, संस्कृति, वैज्ञानिक बोध एवं पद्धति, धर्मिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक विचार प्रणालियों और कलात्मक अभिव्यंजना रीतियों का भी प्रभाव रहता है। ये तत्व यद्यपि स्वत: समाज नहीं हैं, तथापि ये उसके विधिवत् प्रकाशन में योगदान करते हैं। समाज का अस्तित्व इन तत्वों से पृथक होकर नहीं रह सकता। समाज प्राय: व्यक्तियों का समूह होता है। जो कि शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से समान स्तर का होता है। यह व्यक्ति परस्पर पूर्ण समान नहीं होते, तभी उनमें आदान-प्रदान की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। उनकी भाषा, विश्वास, मत, रीतियाँ उस सामाजिक संगठन में विशेष सहायक होती है। वे किसी सामान्य उद्देश्य को रखकर गतिशील होते हैं। उनमें परस्पर संसर्ग बना रहता है और समाज की धारा परंपरा के रूप अक्षुण्ण में बनी रहती है। व्यक्तियों का समूह उसमें आकार मिलता है और विलग होता है, किंतु समाज बना रहता है।

इस प्रकार समाज व्यक्तियों का ऐसा संकलन है जिसमें वे निश्चित संबंध और विशिष्ट व्यवहार द्वारा एक-दूसरे से बँधे होते हैं। व्यक्तियों की वह संगठित व्यवस्था विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न मानदंडों को विकसित करती है। विशिष्ट प्रकार के आर्थिक और सामाजिक स्तर वाले व्यक्ति एक समूह के अंतर्गत एकत्रित होकर एक विशिष्ट वर्ग का निर्माण करते हैं। वर्ग या श्रेणी किसी समाज का आवश्यक एवं अनिवार्य अंग होता है। जिसका निर्माण उस समाज के श्रम, उत्पादन तथा वितरण के साधनों द्वारा होता है। भारत में मध्यवर्ग का मूल आधार आर्थिक है। आर्थिक दुर्व्यवस्था से आक्रांत मध्यवर्ग में अनेक समस्याओं ने जन्म लिया है।

एक डूबते जहाज की अंतर्कथा (2016) उपन्यास के माध्यम से रवींद्र वर्मा ने मध्यवर्ग की स्थिति और उसकी समस्याओं पर सबका ध्यान आकर्षित किया है। एक तरफ वर्तमान समय में

ओमवती
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

मध्यवर्ग का विस्तार तेज़ गति से हुआ है। इस उपन्यास में मध्यवर्ग की सभ्यता, संस्कृति और समाज का पतन होते हुए दिखाया गया है और इस पतन का मुख्य कारण नव-उदारवादी वातावरण और भ्रष्टाचार है जो आज हर मध्यवर्ग के लोग उच्चवर्ग में परिवर्तित होने के लिए ग़लत कार्य कर रहे हैं। एक डूबते जहाज की अंतर्कथा उपन्यास नव-उदारवादी नगर गुड़गाँव से प्रारंभ होता है। उपन्यास के नायक गौरीशंकर अपनी बेटी के घर आए हुए हैं। गुड़गाँव के डी.एल.एफ बस्ती के लोग शहर के मध्यवर्गीय हैं, यहाँ के लोगों के चेहरे पर दर्प है, यहाँ किसी को किसी से मतलब नहीं है सब लोग अपने काम से मतलब रखते हैं। इन मध्यवर्गीय लोगों के विचार पर उपन्यास के नायक गौरीशंकर कहते हैं 'इन लोगों के चेहरे देखिए- दर्प से चमकते हैं। कोई बेंच क्या, ये लोग समझते हैं कि दुनिया इन्हीं की है और रहेगी।' मध्यवर्गीय समाज के आचरण में आज परिस्थितियों के दबाव से परिवर्तन आया है। इन दबाव के फलस्वरूप व्यक्ति स्वकेंद्रित हो गया है। जिससे आपसी प्रेम और करुणा जैसे सहज भाव में भी दिखावा और बनावटीपन आ गया है।

यहाँ के लोग मध्यवर्ग से उच्चवर्ग में अपना दर्जा हासिल करने के लिए दिन-रात भागते रहते हैं, ये सब आत्मनिर्भर हैं, इस बात पर गौरीशंकर अपने विचार इस तरह प्रकट करते हैं। क्या यहाँ के लोग आत्मनिर्भर हैं, इस पर गौरीशंकर का कहना है 'नहीं, नहीं, इस आत्म-निर्भर बस्ती के लोग कभी नहीं मरते। यहाँ कभी पानी जाता है, न बिजली जाती है और न कभी मौत आती है। मौत तभी आती है जब कोई उसकी आहट सुने। लोग यहाँ ऐसे जीते हैं जैसे कभी कोई नहीं मरेगा।' नव-उदारवादी दौर में मध्यवर्गीय समाज में मानवीय संवेदना, व्यवहार और सहानुभूति नाम मात्र बची हुई है। इस समय का महानगरीय मध्यवर्ग अत्यधिक व्यस्तता और कृत्रिमता लिए हुए है।

इस बस्ती के लोगों की स्थिति का चित्रण मध्यवर्ग के रूप में दर्शाया गया है। यहाँ के लोगों के पास समय नहीं है, प्यार से बात करने तक का समय नहीं है। इतना ही नहीं कभी-कभी यहाँ के लोग अपने पड़ोसियों को नहीं पहचानते हैं मानवीयता कहीं देखने को नहीं मिलती हैं कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि हम आगे तो बढ़ रहे हैं, लेकिन इस प्रगति में बहुत कुछ भूल रहे हैं खो रहे हैं, जो हमारी संस्कृति के लिए और आने वाली पीढ़ी के लिए ठीक नहीं है। इन बड़े-बड़े महानगरों में बुज़ुर्गों की स्थिति चिंताजनक है, यहाँ के बुज़ुर्ग शारीरिक रूप से रोग ग्रस्त तो हैं ही साथ में मानसिक रूप से उत्पीड़ित भी हैं, यह उत्पीड़न देने वाले और कोई नहीं उनकी अपनी संतानें हैं। मानवीय संबंधों की सहजता समाप्त-सी हो गई हैं।

शहरी मध्यवर्ग में औद्योगिकरण के कारण विशाल पैमाने पर बड़े-बड़े नगरों की स्थापना हुई। यंत्रीकरण के कारण उत्पादन में वृद्धि होने से मंदी उत्पन्न होती है। इस आर्थिक संकट से मध्यवर्ग में बेरोज़गारी बढ़ती है। 'बेकारी ने इन्हें अंदर से नंगा कर दिया था। यह मध्यवर्गीय बेकारी बड़ी जानलेवा होती है इसमें नौजवान का पेट तो भरता है मगर आत्मा शनैः-शनैः खाली हो जाती है।' दूसरी ओर उच्चवर्ग द्वारा मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के शोषण की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। महानगरों में बेरोज़गारी इतनी बढ़ी है कि श्रमिक वर्ग को कमज़ोर स्थिति में ला कर खड़ा कर दिया। इस कारण गौरीशंकर चिंतित हैं कभी-कभी तो इन महिलाओं को बड़े घर के पुरुषों के नीचे लेटना पड़ता है, यही है आंतरिक उपनिवेशीकारण जो विशुद्ध भारतीय हैं ग़रीबी एवं मजबूरी के कारण इन महिलाओं को अपना ज़मीर और आबरू नीलाम करनी पड़ती है, इस स्थिति का मूलभूत कारण ग़रीबी है। बेकार व्यक्ति अपनी और परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ होता है तो उसके भीतर निराशा और अकेलापन घर करने लगता है। इस संदर्भ में डॉ. शिव प्रसाद सिंह कहते हैं कि 'जैसे-जैसे तकनीकी विकास होता जाएगा आदमी अपने को परिवेश से कटा हुआ और बेसहारा अनुभव करता जाएगा। इस प्रकार मशीनी सभ्यता ने आज के मनुष्य और जगत् के बीच अलगाव और विसंगति उत्पन्न कर दी है। इस तकनीकी अलगाव की समस्या से उबरने के लिए आधुनिक मनुष्य छटपटा रहा है।'

भारत में प्राचीन काल से संयुक्त परिवार की प्रथा रही है ऐसे परंपरागत संयुक्त परिवारों में तीन या उससे अधिक पीढ़ी के लोग पहले साथ-साथ रहते थे। परंपरागत संयुक्त परिवार में व्यक्ति के हितों की अपेक्षा पूरे परिवार के हितों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। परंपरागत संयुक्त परिवार में अपने सदस्यों में व्यक्तिवाद की भावना को विकसित नहीं होने देता और उनमें सामूहिकता की भावना का विकास करता है। लेकिन पिछले कुछेक दशकों में संयुक्त परिवार के टूटने और एकल कुटुंब स्थापित करने की प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ती जा रही है। 'भारत में आज परिवारों की प्रवृत्ति परंपरागत संयुक्त परिवार से विखंडन व एकांकी परिवार की ओर है।' जिसमें संयुक्त परिवार के जीवन मूल्य भी टूट रहे है। जैसे ही मध्यवर्गीय लोग उच्च मध्यवर्ग में परिवर्तित होते हैं वह अपने जीवन मूल्य भूल जाते है क्योंकि उनको इनकी ज़रूरत नहीं रह जाती है। गौरीशंकर की माँ की मृत्यु मुंबई में हुई थी, जल डालने के लिए कोई भी नहीं था। जिस भाई के घर में माँ मरी थी वह भी उस वक्त नहीं थे, छोटा भाई भरत भी उस दिन बंबई से दिल्ली लौट रहा था, लेकिन माँ का अंतिम चेहरा देखने नहीं आया। गौरीशंकर के मन में सवाल उठता है। 'ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हमारी माँ को भी हमसे छीन लेंगी क्या? मध्यवर्गीय लोग ऊँचाई की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते जन्मदाता को भूल जाते हैं, जिसने जन्म दिया, पाला-पोसा और अपना सारा समय दिया लेकिन जन्मदाता के लिए बेटों के पास समय नहीं है, अजीब है मध्यवर्ग से उच्चवर्ग की कहानी।' नगरों व महानगरों में उच्च शिक्षा व नए व्यवसाय के चलते न केवल व्यक्तियों के विचार, विश्वास और मूल्यों में परिवर्तन आ जाता है बल्कि उनमें व्यक्तिवादिता को भी प्रोत्साहन मिलता है जिससे वह लोग संयुक्त परिवार से पृथक होकर वहाँ रहने लगते हैं, जहाँ उन्हें अपनी शिक्षा और योग्यता के

अनुकूल काम मिल जाता है। जिसके कारण आज मध्यवर्ग में संयुक्त परिवार का पतन और एकल परिवार का चलन दिखाई देता है।

भारतीय मध्यवर्ग में भ्रष्टाचार एक बहुत बड़ी समस्या है जो अमरबेल की भाँति मध्यवर्गीय समाज और प्रशासन को सब ओर से घेरे हुए है। 'भ्रष्टाचार एक जटिल स्थिति है क्योंकि इसका कोई एक रूप न होकर अनेक रूप होते हैं। भ्रष्टाचार में व्यक्ति सामाजिक नियमों का सोच समझकर उल्लंघन करता है तथा अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए दूसरों के हितों की उपेक्षा करता है। व्यक्ति अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है, मिलावट करता है, रिश्वत लेता है, निर्माण कार्यों में घटिया स्तर की वस्तुओं का उपयोग करता है, पक्षपात करता है।' मध्यवर्ग में जिस तेज़ी से अर्थ का महत्त्व बढ़ रहा है और नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है, उसके कारण भारतीय मध्यवर्ग समाज की सभी संस्थाएँ, चाहे वे सरकारी हों या गैर सरकारी, भ्रष्टाचार और अराजकता का गढ़ बनती जा रही हैं। एक डूबते जहाज़ की अंतर्कथा उपन्यास में सरकारी कार्यालयों में फैले भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी को बख़ूबी उजागर किया गया है। गौरीशंकर बताते हैं हरिराम के बचने की कोई गुंजाइश नहीं थी, नरेगा घोटाले से संबंधित सारे कागज़ों पर हरिराम के हस्ताक्षर थे। हरिराम ने केबिन में अकेले इनसे कहा था कि वह निर्दोष है, उसने अपने कनिष्ठ अधिकारी के भरोसे पर सारे कागज़ों पर हस्ताक्षर किए थे। गौरीशंकर सोचते हैं कि असली सवाल भरोसे का था, किसानों के नाम पर पैसा निकला गया था। 'सारे एकाउंट फ़र्जी थे रुपया निकाला गया था। यदि रुपया निकलने वाले लोग नापैद थे, तो रुपया कहाँ गया? शक की सुई रामलाल की कोठी पर ही टिकती थी। बैंक के नियमों के अनुसार शाखा प्रबंधक हरिराम की पूरी ज़िम्मेदारी थी, जिसके हस्ताक्षर सारे कागज़ों पर थे। निजी आँसू कागज़ों के ख़ूनी धब्बों को धो नहीं सकते थे।' जाँच के दौरान गौरीशंकर को पता चला कि फ़र्जी किसानों के फ़र्जी कागज़ चिरगाँव ब्लॉक के ही थे और वहाँ के बी.डी.ओ रामलाल थे। इसलिए वह अपने मित्र रामलाल से मिले बिना ही लखनऊ आ जाते हैं क्योंकि बगल में छुरा रखकर वे कैसे मिल पाते। इस भ्रष्टाचार और अव्यवस्थित अर्थव्यवस्था का साधारण ग़रीब जनता शिकार बनती है। गौरीशंकर देखते हैं कि लोग स्टेशन पर रोटी की तलाश में शहर की तरफ जाने वाली गाड़ियों के इंतजार में अपनी गठरियों के साथ गठरी बने बैठे हैं जैसे कोई मर गया हो। यह दृश्य इनकी आँखों के सामने बार-बार आता है और सोचने लगते कि अगर नरेगा का सही कार्यान्वयन होता तो शायद लोग ऐसे शहर की ओर न दौड़ते। जिन योजनाओं का निर्माण व्यक्ति, समाज और देश के उत्थान के लिए किया जाता है उनको उच्च पद पर तैनात कर्मचारी अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु प्रयोग करते हैं। यहाँ पर एक जहाज़ डूब जाता है कहने का आशय है कि आज सारा देश भ्रष्टाचार में, व्यवस्था की अराजकता में नव उदारवादी नगर के मध्यवर्ग के लोग विकास के नाम पर भ्रष्टाचार में लिप्त हैं।

एक डूबते जहाज़ की अंतर्कथा उपन्यास मध्यवर्ग की समस्याओं पर आधारित सामाजिक उपन्यास है। जो नव उदारवादी दौर में पारिवारिक संबंधों के पतन से चल कर बुज़ुर्गों की नाज़ुक स्थिति पर प्रकाश डालकर मध्यवर्गीय नगर के लोगों की समस्याओं पर चर्चा कर और हमारी संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के दुष्परिणाम को उजागर करता है। दूसरी तरफ गाँवों के किसान रोज़ी-रोटी कमाने के लिए भागकर शहरों में मज़दूर बन रहे हैं जिनके पास रहने के लिए घर नहीं है। वह अधनंगे कंकालों में तब्दील हो रहे हैं और इनकी औरतें मजबूरी में अपनी आबरू को सरे आम बेच रही हैं। अर्थ के अभाव में किसान गाँव में आत्महत्या कर रहे है। मध्यवर्ग को लेकर अनेक योजनाएँ सरकार द्वारा बनाई जाती है। मगर इन योजनाओं का लाभ आम आदमी को मिल पाना शायद सपना ही बन गया है। क्योंकि वर्तमान समय में भ्रष्टाचार अब विकराल रूप धारण कर चुका है।

000

नई पुस्तक

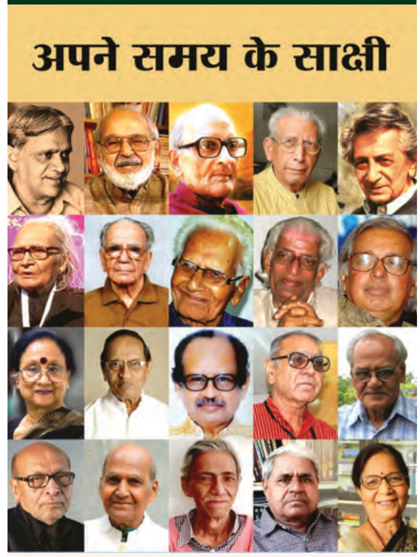

(साक्षात्कार संग्रह)

अपने समय के साक्षी

लेखक : नंद भारद्वाज

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

श्यामाचरण दुबे, स ही वात्सयायन 'अज्ञेय', रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, भीष्म साहनी, काज़ी अब्दुलसत्तार, गोपालदास, नन्द चतुर्वेदी, हरीश भादानी, अशोक वाजपेयी, चित्रा मुद्गल, मरुधर मृदुल, विजय वर्मा, नन्दकिशोर आचार्य, रमेश उपाध्याय, असगर वजाहत, स्वयं प्रकाश, पानू खोलिया, हरिराम मीणा, सूर्यबाला के साक्षात्कारों का संग्रह है यह, और ये साक्षात्कार लिए हैं वरिष्ठ आलोचक नंद भारद्वाज ने। वे इस पुस्तक के बारे में कहते हैं- मेरे ये संवाद अभिलेख से संवाद प्रक्रिया का हिस्सा हैं और मैं आश्वस्त हूँ कि अलग अलग संदर्भों में अपने समय के महत्त्वपूर्ण साहित्य कर्मियों से संभव हुए ये संवाद अपने आन्तरिक अनुशासन में एक दूसरे के काफी करीब हैं। इन संवादों के माध्यम से बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के संधिकाल के इस साहित्यिक परिदृश्य को समझने और उससे जुड़े जरूरी सवालों को सुलझाने में इन संवादों से अगर थोड़ी भी मदद मिल पाती हो तो मैं अपने इस श्रम को सार्थक समझूँगा।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में कामकाजी स्त्री

शोध लेखक : डॉ.कल्पना आर.पटेल

औद्योगिकरण के फलस्वरूप समाज में परिवर्तन आया है। प्राचीन काल में पुरुष अर्थव्यवस्था का कर्णधार माना जाता था। परन्तु समय के साथ मूल्यों में परिवर्तन आया है। इस कारण नर-नारी के आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन हुआ है। समाज में नारी की दयनीय स्थिति का कारण आर्थिक परावलम्बन है। नारी ने अपनी दुर्बलता एवं लाचारी को त्याग कर स्वावलम्बन का मार्ग अपनाया। यद्यपि इसी वर्जित क्षेत्र में प्रवेश करने के कारण उसे कई बाधाओं का सामना करना पड़ा, परंतु नारी ने आत्म-विश्वास से इस कंटकाकीर्ण मार्ग में सफलता अर्जित की।

भारत में ऐसी कामकाजी महिलाएँ भी हैं जिन्होंने अपने कार्य क्षेत्र के बल पर समाज में विशिष्ट कीर्तिमान स्थापित किया है। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा था 'औरत मर्द के फ़र्क में पड़कर मैंने अपने आपको हमेशा इंसान सोचा है। शुरू से जानती थी मैं हर चीज़ में काबिल हूँ। कोई समस्या हो, मर्दों से ज़्यादा अच्छी तरह सुलझा सकती हूँ। मैंने अपने औरत होने को कभी भी किसी कमी के पहलू से नहीं सोचा।'

कामकाजी दुनिया में कदम रख कर स्त्री ने समाज में एक नया आयाम स्थापित किया है। राजी सेठ ने कहा है कि, 'आत्मनिर्भर होने पर सामाजिक स्तर पर उसकी भूमिका स्वत: ही बदल जाती है क्योंकि जो ढाँचा उसके पराधीन होने की वास्तविकता पर खड़ा है वह स्वत: ही ढह जाता है और वह उन मर्यादाओं को अपने आप लाँध जाती है, जो एक पराधीन मानसिकता के कारण पनपती रही है, अतिक्रमण की बड़े एहसासों से जुड़ने की ज़मीन है।'

यद्यपि कामकाजी स्त्री को दोहरी-तिहरी भूमिका निभानी पड़ती है। घर के दायित्व के साथ-साथ समाज की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है और कई बार दोहरी भूमिका निभाते-

डॉ.कल्पना आर.पटेल
प्राध्यापक हिन्दी विभाग
आर्ट्स कॉलेज,
शामलाजी

निभाते दाम्पत्य जीवन में भी संकीर्णता एवं तनाव उत्पन्न होने लगता है। क्योंकि पुरुष कभी भी स्त्री की सफलता को सहज स्वीकार नहीं कर पाता। पितृसत्ता का शोषण करने वाले लोग कभी नहीं चाहेंगे कि स्त्री उनकी क़ैद से मुक्त हो। स्त्री का घर से बाहर जाकर अर्थोपार्जन करना ही पितृसत्ता के बंधन से मुक्ति पाने का कारगर उपाय है। आर्थिक सफलता के लिए पहला साहसिक कदम है जीवन में शिक्षा का महत्त्व। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में पारिवारिक बन्धनों में जकड़ी हुई नारी को पारम्परिक मान्यताओं को छोड़कर आर्थिक स्वावलम्बन के स्वरूप का अंकन किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा ने विज़न उपन्यास में दो ऐसी नारी पात्रों का दिग्दर्शन कराया है। डॉ. आभा एवं डॉ.नेहा, जो नारी शक्ति को नई दिशा देने का एक साहसिक प्रयास है। दोनों में यह समानता है कि आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ कुशल व मेधावी डॉक्टर हैं, परन्तु व्यावहारिक तौर पर दोनों में भिन्नता है। डॉ.नेहा ने पितृसत्ता की घुटन को स्वीकार किया। पुरुष सत्ता के अधीन छटपटाती रही परन्तु मुक्ति के लिए प्रयास नहीं किया। तभी तो वह बेहतर डॉक्टर होने के बाद भी सेन्टर की रिसेप्शनिस्ट बनकर रह जाती है।

कभी पति एवं कभी परिवारजन के द्वारा निरन्तर आभा के कॅरियर पर चोट की जा रही थी। गृहस्थी के बोझ तले आभा की डॉक्टरी प्रतिभा दबी चली जा रही थी तब वह तिलमिला उठती है तथा मुकुल से कहती है, 'बहू तुम्हारे घर के लिए चुनौती बन गई है, इसे झुकाकर ही रहोगे, अब यही तुम्हारे मकसद है मेन एम।' आभा अपने स्वावलम्बन के बल पर उस पति से किनारा कर लेती है जो उनकी स्वतन्त्रता के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर रहा था, फलस्वरूप वह तलाक़ का फैसला लेती है। भारतीय समाज में इस दोराहे पर खड़ी स्त्री की मनोस्थिति एवं समाज के दृष्टिकोण को लेखिका ने आभा के आत्म- कथन से अभिव्यक्ति किया है। 'संसार के सामने सिर उठाकर खड़े होना ही अब ज़िंदगी को जीतना है। जीत पाएगी, उसे पता नहीं। इस रास्ते का अन्धकार कब तिरोहित होगा, यह भी क्या कह सकती है ? जगमगाती पृष्ठभूमि पर कीचड़ पोतकर खड़ी है, कोई दाग़दार कहे तो उसका दोस्त क्या ? अपनी ओर से सोचा हुआ तो सारा कुछ निर्दोष है। निर्दोष, बेदाग़ और उज्ज्वल जीवन की परिभाषाएँ एक सी नहीं होती। उन परिभाषाओं से परिवेश लिपटा रहता है, उस परिवेश पर आदमी को खड़ा करके ही तो विचार करना होता है, कोई न करे तो यह उसका दोष।'

कस्तूरी (कस्तूरी कुंडल बसै) ने पुरुष के बनाए रास्तों के बजाय अपना रास्ता स्वयं बनाया। रास्ते चाहे कष्टप्रद क्यों ना हो संघर्ष एवं आत्म-विश्वास के बल पर उपलब्धि पायी जा सकती है। सच में यह रास्ता कस्तूरी ने चुना और कहा 'देखो हम अपनी तकदीर बदल तो नहीं पाते, सँवार तो सकते हैं।' कस्तूरी ने पिता की मृत्यु के बाद शिक्षा की दुनिया में अपना साहसिक कदम रखा क्योंकि बूढ़े ससुर एवं अबोध बच्ची का दायित्व कस्तूरी पर ही था। उस समय कस्तूरी को समाज की अवहेलना भी सहन करनी पड़ी। 'पढ़ाई-लिखाई का भजन करती हुई दोनों को रौंद रही है। अरे तू द्वार-द्वार डोलेगी तो बच्चे की ऐसी ही गत बनेगी। बनी है महात्मा गाँधी की चेली।' कस्तूरी का संघर्ष रंग लाता है और उसे सरकारी नौकरी प्राप्त होती है। इसी बलबूते पर स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय देती हुए रूढ़िवादी व्यवस्था को चुनौती देती है। जिस समय औरतें पर्दा करती उस समय आदमियों के बीच बैठकर वह अपने विचार व्यक्त करती है। यद्यपि पुरुष समाज अपनी खीज को उस पर व्यक्त भी करता है। क्योंकि पुरुष स्त्री स्वतन्त्रता और उसके वजूद को स्वीकार नहीं कर पा रहा है।

कही ईसुरी फाग में ऐसी महिला का चित्रण किया है जो अपने निश्चय पर अडिग है और समाज की परवाह किए बिना फाग मंडल बनाती है। जिस समय फाग सुनना भी स्त्रियों के लिए अपराध एवं पापपूर्ण माना जाता था, उस युग में ऐसा साहसिक कदम एक कुलीन विधवा सरस्वती देवी ने उठाया। इसे समाज एवं परिवार कैसे सहन कर सकता था इस कारण उन्होंने बार-बार अड़चनें उत्पन्न करने का प्रयास किया 'कभी जलते हुए पेट्रोमैक्स तोड़े, कभी फगवारों को भाँग पिला दी तो तमाम बवाल सहती रही और हमें जता दिया कि कोई काम आराम से नहीं चलता जाता। पर मैं हार नहीं मानने वाली थी, अपना झोला उठाती और आगे चल देती। दूसरे फगवारों को खोजते फिरती।'

मीरासिंह (कही ईसरी फाग) ने अपने संघर्ष के बलबूते पर अपनी आकांक्षा को अंजाम दिया और विवाह उपरान्त स्नातक बने। वह अन्य स्त्रियों से अलग थी। बिन्दी महावर को देखते ही काग़ज़-कलम की बातें करने लगती इसी कारण उसे पागल जता कर पागलखाने भर्ती करा दिया गया। परन्तु उसके आत्म- विश्वास एवं लगन के कारण आँगनवाड़ी में उसका चयन हो गया। 'स्त्री के लिए आँगनवाड़ी से सारा देश जुड़ गया, क्योंकि वह अपने बूते पर बाहर आ गई थी और उसकी हिम्मत देखकर महिला सशक्तिकरण की कार्यशालाओं से उनका बुलावा आता रहा था।'

स्त्री की जिजीविषा तभी सार्थक होती है जब अपने परिवार के साथ-साथ तमाम स्त्रियों के लिए कार्य करे जो स्वतन्त्र होने की इच्छा रखती हैं। कस्तूरी कुण्डल बसै की कस्तूरी इसका सशक्त उदाहरण है। 'महिला मंगल योजना का सर्वोत्तम पुरस्कार प्राप्त, ग्राम सेविका, जिसने बीसियों परित्यक्त विधवा स्त्रियों का उद्धार किया है, क्योंकि ग्राम लक्ष्मियों के पद पर नियुक्ति हुई हैं।' सरस्वती देवी (कहीं ईसुरी फाग) 'समाज सेवा का काम करती है। ख़ास तौर पर स्त्रियों के लिए सहायिका संस्था चलाती है।'

समाज की बदलती परिस्थितियों को देखकर यह नितान्त आवश्यक है कि स्त्रियों को आर्थिक रूप से समर्थ बनकर पुरुष का सहयोग करना चाहिए। क्योंकि अर्थोपार्जन से ही वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकती है। लेखिका ने नारी के आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने का समर्थन किया है जो युगानुरूप है।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

हिन्दी कविता में वैश्विक नारी का सामाजिक चिंतन

शोध लेखक : डॉ.परमजीत एस.पनेसर

वैश्वीकरण ने स्त्री को एक नए स्वरूप में परिभाषित किया है। वैश्विक नारी अपने सम्पूर्ण आत्मबल से घर से निकलकर आज विश्व का संचालन कर रही है। प्रथम विश्व युद्ध के समय से ही नारीवादी स्वर नारियों के मौलिक अधिकारों, मानवाधिकारों को लेकर मुखर हो गया था। वैश्विकरण के शुरुआती वर्षों में नारियों ने पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर उसके प्रति सोच में तब्दीली का आगाज़ किया। आज जीवन यात्रा के क्रम में औरत जिस जगह खड़ी हुई है, वहाँ आश्रिता की परम्परागत भूमिका से हटकर एक नई आत्मनिर्भरता स्वातंत्र्य और नई जीवन पद्धति के दबावों को झेलने की तत्परता उसमें दिखाई देती है। आज की नारी बस्ती में रहने वाली नारी से पूर्णतया अलहदा है। नि:संदेह पिछले दो दशकों में वैश्वीकरण ने एक ऐसी औरत को गढ़ा है जो बाज़ार की तरस्यता और उसके नाम पर नारी देह और स्त्री श्रम का शोषण करने की प्रत्यक्ष व प्रच्छन्न विधियों को ढँक लेती है। यह अधिकार और समृद्धि से सम्पन्न पावर वूमन है। वर्तमान परिवेश में उसकी मुक्ति का आह्वान स्पष्ट सुनाई देता है। आज हिन्दी कविता में स्त्री आवाज़ तीव्र गति से मुखरित हो रही है। कविता में नारीवादी रचनाकार उसके नए रूप और शोषण से परदा उठाते हैं। वैश्विक नारी के सन्दर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं 'नव पूँजीवाद ने स्त्री के वस्तुकरण को बढ़ावा दिया है जिससे बाज़ार में होड़ एवं प्रतियोगिता के साथ पश्चिमी पुरुष के मूल्यों का वर्चस्व बढ़ा हैं।'

वैश्वीकरण एवं भूमण्डलीकरण ने नारी को बाज़ार वाद की एक वस्तु बना दिया है। उसके सामाजिक मूल्य एवं उसकी अर्थसत्ता बिकाऊ हो गई है। पूँजी की संपन्नता के कारण पश्चिमी देशों में प्रवृत्ति बढ़ी है। यही कारण है कि वहाँ उपयोग के लिए हमेशा नए उपकरणों का आविष्कार होता रहा है। विश्वायन में विकास के जो नए आयाम स्थापित किए हैं उनमें नारी के प्रति भोग की सोच दृढ़ हुई है। एशियायी देशों में जहाँ नारी की स्वतंत्रता पर पश्चिम में कहीं ज़्यादा दबाव है, भूमण्डलीकरण की पदचाप ने नारी को वैश्विक रूप दिया है। पाबंदियों, के पैमाने टूट रहे हैं और औरत की ज़िंदगी में नई लहर और ताज़गी देखने को मिल रही है तथापि उसकी स्वतंत्रता अव्यवस्था के घेरे में बनी हुई है। प्रभा खेतान ने इस भूमण्डली नारी का विवेचन इस प्रकार किया है क्या स्त्री ने सच में स्वतंत्रता पा ली है जिसकी आकांक्षा वह करती रही थी। भूमण्डलीकृत संस्कृति का दावा है कि स्त्री को सदियों के दमन से छुटकारा मिल चुका है। आज की स्त्री स्वतंत्र और शिक्षित है। वह क्या नहीं कर सकती है लेकिन स्त्री का मानस कितने छोटे-छोटे मुद्दों से जकड़ा हुआ है इसका हमें अंदाज़ा नहीं है।

वर्तमान की भयावहता के बीच से गुज़र कर ही भविष्य की राह खोजती नारी अन्याय और शोषण की लम्बी परम्परा पर प्रश्न चिह्न लगाती है। चंद्रकांत देवताले समाज की उस हक़ीकत से रू-ब-रू कराते हैं जिसके तहत सीमेंट की प्रतिमाओं की आरती उतारी जाती है, परन्तु उसी देवी के प्रकट होने पर उसे नोच डालने से परहेज नहीं करता। आज की ग्लैमरस और शिक्षित नारी इसका विरोध करती है। ऐसी परिस्थिति में देवी यथ कविता में देवताले का मत इस प्रकार उभरकर सामने आता है- 'खंख होते समय में पत्थर की तरह खड़ा रहा है में देर तक / सोचने लगा जिन औरतों को / नंगा करके सताया और घुमाया जा रहा है / शायद वे भी पत्थर, मिट्टी-सीमेंट की क़ैद से / आज़ाद हुई होंगी।'

भूमण्डलीकरण ने नारी को कहाँ पहुँचाया है ? आज भी सम्पन्न और साधनयुक्त औरत वैश्विक नारी और पावर वूमेन के विशेषण से विभूषित होकर अंदर ही अंदर घुट रही है। ऐसे में सामान्य नारी की दशा सहज ही समझी जा सकती है। विकास के शिखर छूते और पूँजीवाद के आयाम गढ़ते वर्तमान समय में पावरफुल नारी और घरेलू नारी कहाँ खड़ी है, इस विषय में कात्यायनी के बड़ा व्यंग्यात्मक चित्र उपस्थित किया है- 'रात को। ठीक ग्यारह बजकर तैंतालिस मिनट पर / दिल्ली में जीबी रोड पर। एक स्त्री / ग्राहक पटा रही है / बंबई के एक रेस्त्रां में। नीली गुलाबी रोशनी में थिरकती स्त्री ने / अपना आख़िरी कपड़ा उतार दिया है। और किसी

डॉ.परमजीत एस.पनेसर
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
श्री के.आर.कटारा आर्ट्स कॉलेज
शामलाजी, तालुका- भिलोडा जिल्ला-अरवल्ली, राज्य- गुजरात
पिन कोड- 383355

घर में ऐसा करने से पहले / एक दूसरी स्त्री / लगन से रसोईघर में। काम समेट रही है / ठीक उसी रात उसी समय / नेल्सन मंडेला के देश में / विश्व सुन्दरी प्रतियोगिता के लिए। मंच सज रहा है।'

वैश्विक दौर में नारी पुरुष सत्ता से आज़ादी चाहती है। जीवन की विडंबनाओं और सच्चाइयों को वर्तमान हिन्दी कविता विश्वसनीय ढंग से व्यक्त कर रही है। नव पूँजीवाद ने नारी का जो विपणनकारी रूप आविष्कृत किया है उसमें नारी अपना मुकाम हासिल करने हेतु जायज़-नाजायज़ की कतई परवाह नहीं करती। धन और शोहरत को जीवन का धेय मानने वाली वैश्विक ग्लैमरस नारी का चित्रण नीलेश रघुवंशी इस प्रकार करती हैं- 'चमचमाती कार में रंगीन चश्मा, हाथ में मोबाइल / लकदक कपड़ों में नाचती-गातीं / ख़ूबसूरत लड़कियाँ झाँसे में आकर, बनती हैं वो / सोचती भी नहीं जिसके बारे में दूर-दूर तक / काली सूची में दर्ज हैं नाम ख़ूबसूरत लड़कियों के / भीतर लड़कियों के भी है एक सूची / बड़ी ख़ूबसूरती से धकेला जिसने उन्हें, इस संसार में।'

आज की हिन्दी कविता समाज से बीधी बातचीत करती ही है। सम्पूर्ण दैनंदिन समस्याओं और महँगाई से हलकान होते वर्तमान समय में औरत अपनी अस्मत बेचकर जो अर्थार्जन कर रही है उस पर कविता प्रहार करती है, सवाल कर रही है कि क्या इस नैतिक-अनैतिक की बहस के पीछे व्यवस्था ज़िम्मेदार नहीं है। वैश्विकता ने अर्थ की व्यंजकता को नारी को देह के रूप में प्रस्तुत किया है। कुमार विकल ने इस निवेचन यथार्थ रूप में किया है- दो जून की रोटियों के लिए अस्मत बेचती हुई / उघड़ी जाँघों वाली औरत से / नैतिकता का अर्थ पूछते।'

वैश्वीकरण और भूमण्डलीकरण ने नारी को कूड़ेदान की वस्तु बना दिया है। वह आज यूज़ एण्ड थ्रो बन गई है। उसकी परिभाषा में समाज ने परिवर्तन कर दिया है। उसकी वेशभूषा, चाल-ढाल, मानसिक सोच, खान-पान, नाच-गाना, तकनीक और फैशन आदि ने मिलकर काम के भाव को नारी के आंतरिक और बाह्य व्यवहारों को विस्तार दिया है, यह नारी का नव स्वरूप है। यद्यपि औद्योगिकता के मूल्य भारत में वही नहीं है जो पश्चिम के औद्योगिक रूप से विकसित समाजों में। वहाँ के उद्योगवाद ने सामाजिक जीवन में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं तथा नारी को काफी स्वतंत्रता और नए विकल्प दिए हैं। परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए नारी आर्थिक स्थिति सुधारने का ज़रिया बनती जा रही है। बाज़ार केवल अपना स्वार्थ देखला है। भूमण्डलीकरण के अनुरूप बाज़ार ने स्त्री का वस्तु की तरह व्यापार कर दिया है। वैश्वीकृत मीडिया और विज्ञापन जगत् ने समाज में नारी की दावेदारी को मज़बूत किया है। आज स्वयं नारी अपने को बाज़ार में यूज़ करना कहती है। वह इसमें कोई बुराई भी नहीं देखती- 'मैं स्त्री हूँ और जब मैं स्त्री हूँ / तो मुझे दिखना भी चाहिए स्त्री की तरह / मसलन मेरे केश लंबे / स्तन पुष्ट और कटि क्षीन हो / देह हो तुली इतनी कि इंच कम न छटाँक ज़्यादा / बिलकुल ख़ूबसूरत डस्टबिन की तरह जिसमें / डाल सकें वे / देह, मन, दिमाग़ का सारा कचरा और वह / मुस्कुराता रहे- प्लीज़ यूज़ मी।'

सामाजिक परम्परा की वर्चस्ववादी व्यवस्था में नारी की नैतिकता को जिन विशेष सन्दर्भों में परिभाषित करने का प्रयास किया गया वहीं से स्त्री अस्मिता का दु:खद अध्याय शुरू होता है। सामान्य भाषा में नैतिकता एक मूल्य है जो कि स्थान विशेष के अनुसार बदलती रहती है। नैतिकता एक तरह से सांस्कृतिक मूल्य होती है और इसे सार्वभौमिक परिभाषा में बाँधकर व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है। नैतिकता के मध्यकालीन संस्कारों ने नारी को लम्बे समय तक बाँधकर रखने में महारत हासिल की। व्यक्ति गढ़न की ख़ास प्रणालियों का उद्‌भव वास्तव में सोच व विवेक के धरातल पर तय की जाने वाली ऐसी रणनीतियाँ थीं, जो स्त्री को कमतरी के अहसास से बाँधती रहीं। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक की सलाह पर दुनिया के तमाम देशों ने अपनी नीतियों में जो उदारीकरण लागू किया, उससे स्त्री को काम के सभी अवसर मुहैया हुए और उसकी प्रतिभा के विविध रूप सामने आए, स्त्री की सही अर्थों में बुद्धिजीवी के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय पहचान कायम हुई। बावजूद इसके नारियों का बड़ा तबका ऐसा भी था जो प्रगति व विकास के नाम पर भूमण्डलीकृत बाज़ार का शिकार हो गया। आज़ादी के नाम पर वह बाज़ार में विज्ञापन एवं कमोडिटी के रूप में परिवर्तित होती गई। यहीं से उसके व्यक्तित्व का क्षरण आरेखित किया जा सकता है। देह मुक्ति को नारी मुक्ति के पर्याय के रूप में देखा जाने लगा। देह मुक्ति का केन्द्र भी मुख्यतया यौन स्वतंत्रता ही रहा, यद्यपि इसके अन्य सारे अर्थ हो सकते हैं। बाज़ारवाद ने पनपते औद्योगीकरण जीवन को काम पिपासु बना दिया है। पूँजीवादी सत्ता ने नारी शोषण का स्वरूप भी बदला है। नगरों- महनगरों में पनपती पूँजी परक व्यवस्था के तहत नारी पर बाज़ार के प्रभाव को निर्मला पुतुल ने इस प्रकार वाणी दी है- 'जानते हो महानगरों में पनपे / आया बनाने वाली फैक्टरियों का गणित / और घरेलू कामगार महिला संगठन का इतिहास? / बचाओ अपनी बहनों को।'

वैश्वीकृत मीडिया नारी छवि के नए-नए रूपों को सामने लाता गया है। भूमण्डलीकरण की व्यवस्था में स्त्री के लिए तमाम तरह के व्यवसाय पनपते गए। विज्ञापन जगत् में उसे बड़ी रकम मिलने लगी है। कॉर्पोरेट जगत्, फैशन की दुनिया में औरत ने नई बुलंदियाँ छुई हैं। बाज़ार की कतर ब्योंत, काइयाँपन और कूटनीति में नारी पुरुष की तरह तिकड़म बिठाने वाली साबित हुई है। बाज़ार ने जिस प्रकार भूख, निद्रा और मैथुन का इस्तेमाल किया है उसमें भोग केन्द्र में रहा है। इस सबको पश्चिम से पूर्व और पूरी दुनिया में फैलाने की जुगल घुट्टी वर्तमान बाज़ारू इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया बख़ूबी कर रहा है। फिल्मों, विज्ञापनों तथा पत्र-पत्रिकाओं में नारी का जो रूप दिखाया जा रहा है वह वास्तव में आभासी और थोथा है। मीडिया औरत का जो चित्रण करता है उसमें अवांछनीय पक्षों को गहरा रंग दिया जाता है। नारी के बाहरी रूप को मसालेदार, झकास

और मस्त मस्त परन्तु आतंरिक रूप को कुटिल कपटी दिखाया जाता है। बाज़ार इसके पीछे डाइरेक्टर की भूमिका में रहता है। समकालीन कविता समग्र से रूप जीवन और समाज को अंकित करती चलती है। नारी जीवन की सच्चाई को निर्मला पुतुल ने व्यक्त करते हुए लिखा है- 'जहाँ शहर के व्यस्ततम चौराहे पर / इकट्ठे हो हम लगाएँगे उत्तेजक नारे / वहीं दीवारों पर चिपके पोस्टरों में / ब्रा पैण्टी वाली सिने तारिकाएँ / बेशर्मी से नायक की बाँहों में झूलती / दिखाएँगी हमें ठेंगा / धीरे-धीरे ठंडी पड़ जाएगी भीतर की आग / और एक बार फिर / छितरा जाएँगे हम चौराहे से।'

प्रकृति ने वरदान स्वरूप स्त्री को सृजनात्मक शक्ति प्रदान की है। आज बाज़ार इतना हावी हो गया है कि मातृत्व भी बिक रहा है। औरत सरोगेट मदर्स बनकर सामने आ रही है। नैतिकता से जुड़े आग उगलते सवालों पर स्त्री विमर्शकारों, रचनाकारों ने कमर कस ली है। शुचिता, देह दर्शन को नैतिक मापदण्डों पर कसने की प्रक्रिया चालू है। वास्तव में यह बेहद विचारणीय प्रश्न है कि क्या देह अनैतिक है? कविता इस पर विचार-विमर्श करती है। आज हिन्दी कविता इस बात को बख़ूबी उठा पा रही है कि वैश्वीकृत वातावरण में नारी पितृसत्तात्मक व्यवस्था से भी ज़्यादा शोषित हो रही है। भूमण्डलीकरण के चलते नारी पितृसत्तात्मक व्यवस्था से भी ज़्यादा शोषित हो रही है। भूमण्डलीकरण के चलते स्त्रियों की दशा में कितने सुधार हुए हैं ? उनकी सामाजिक, आर्थिक दशा क्या है ? इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि समय की मार ने नारी को कुछ अवांछनीय कार्यों की ओर बढ़ाया किया है। अपनी इज़्ज़त बेचती औरत भी मजबूरी में ही ऐसा करती है। ख़रीद-फ़रोख्त के इस युग में नारी का जो उत्पाद रूप सामने आया है उसके पीछे परिस्थितियों को ज़िम्मेदार माना गया है- 'बिकना नहीं चाहती वह स्त्री भी / जो खड़ी रहती है खम्भे के नीचे ग्राहक के इंतज़ार में / हमारी ख़रीद फ़रोख़्त में कोई नहीं पूछता हमारी मर्ज़ी / कोई नहीं बताता कि कितने में हुआ सौदा हमारा किसके साथ।'

विश्व भर की संस्कृति दिग्भ्रमित करने वाली है। कोई एक विश्व सुंदरी चुनी जाती है तो इसके पीछे सामान्य लड़कियों की पूरी भीड़ को खींचने का लक्ष्य रहता है। मॉडल बनने, अभिनेत्री और सुंदरी चुने जाने की इच्छा में लाखों लड़कियाँ अपना जीवन नर्क बना लेती हैं। यह उनकी चेतना को कुंठित करने की परिणति है। मॉडलिंग करने की ललक में दिशाहीन हो गई तमाम लड़कियों की त्रासद कहानियाँ मीडिया में देखी-सुनी जा सकती हैं, बेहद ऊपरी तौर पर स्त्री के उपयोग के तरीके, रास्ते और साधन कुछ परिवर्तित भ्रम-सा देने लगते हैं, परन्तु अपने वास्तविक रूप में वे पहले से अधिक क्रूर और आक्रामक हो चुके हैं। व्यवस्था इन्हें फँसाने के लिए नरम चारा डालती है तथा अपनी आज़ादी समझकर ये इसमें उलझ जाती हैं। संतोष कुमार चतुर्वेदी पूरी दुनिया में नारी तन का मज़ा लेने की साज़िश का पर्दाफाश किया है- 'न्यूयार्क से टोकियो तक के सारे फैशनों से लबरेज़ होकर / जहाँ तक मुमकिन हो कम कपड़े में / कैमरे के सामने अख़बारों के रंगीन पन्नों पर / लोगों को रिझाने वाले अंदाज़ में / आओ / अपनी तकलीफों को / सीमित रखना है घर की देहरी तक तुम्हें / अपनी भूख प्यास और समस्याओं को / तुम्हें चुपके से इस तरह पी लेना है / कि कोई आवाज़ न हो / झुर्रियों और घावों को / छिपा लेना है / पाउडर-क्रीम तले।'

आधुनिकता और तत्पश्चात् उत्तर आधुनिकता के दौरे में स्त्री को घर-बहर दोनों जगह संघर्ष करना पड़ता है। औरत को औरत बनी रहने के लिए अनुकूलित किया जाता है। वह प्रतिभा, ज्ञान, चिंतन शक्ति जैसी चक्की में पिसती जा रही है। पुरुष सत्ता-संस्थान द्वारा अपने वश में झुका लिए गए पलड़े को सही करने की कोशिश कविता जगत् रचनाओं के माध्यम से करता है। उत्तर आधुनिक विमर्श स्त्री अस्मिता को और अधिक उभार रहा है। ऊपरी तौर पर स्त्री की स्थिति पहले से बेहतर लगती है, जबकि वर्तमान परिवेश की जटिलताओं में दोहरी-तिहरी ज़िम्मेदारियों का निर्वहन करना पड़ रहा है। जिस अनुपात में घर के बाहर की दुनिया बदलती 'दिखा रही है उसी अनुपात में घर के भीतर उसकी भूमिका के प्रति सोच नहीं बदली है। बाहर कंप्यूटर, इंटरनेट पर काम करती तथा ज़िम्मेदार प्रशासनिक पदों को सँभालती नारी से आदर्श पत्नी, बहू और सामाजिक गृहणी की भूमिका की अपेक्षाएँ बलवती ही हुई हैं। बाहर काम-काजी क्षेत्र में शोषण का रूप बदला है तो दहलीज़ के भीतर कोड़ा कसा गया है। घर से अलग उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रहता। -'औरत क्या घर के बिना भी हो सकती है / या फिर कोई और भी चौहद्दी हो सकती है / सुखपूर्वक रहने, खाने- जीने के लिए / घर के अलावा / घर से अलग होकर / एक लम्बा सफ़र तय किया औरत ने पागल खाने तक का।'

निष्कर्षत: वैश्वीकरण ने नारी को परिवार से निकालकर उसे बाज़ार की एक वस्तु बना दिया है। उसने पुरुष सत्ता से आज़ादी पाकर स्वयं की अर्थसत्ता खो दी ही, आज वह विज्ञापन करती है अपनी देह का उसका सामाजिक वर्चस्व ख़त्म होने की कगार पर है। वह एक मॉल बनकर रह गई है। स्त्री विमर्श के नाम पर स्त्री देह को बेचने व नारी को सेक्सुअल अथवा मार्केट के उत्पाद में तब्दील कर दिये जाने की जो पूँजी परक बाज़ारवादी रणनीति काम कर रही है, इस मानसिकता से मुक्त हुए बिना स्त्री-विमर्श उसकी देह की चटकारी बहस बनकर समाप्त हो जाता है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक की यात्रा में नारी का जीवन उतारचढ़ाव का रहा, लेकिन मानव मूल्यों की संवाहक और मानवीयता की गौरव नारी के महान् रूप के समझ सर्वथा नतमस्तक रहते हुए भारतीय संस्कृति में कहा गया है - यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:, गृह लक्ष्मी, अन्नपूर्णा, ऐश्वर्यशालिनी, अयोगिनी जैसी नारी की पारम्परिक छवि वर्तमान युग में बदली है। आज की नारी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली, समाज के विभिन्न क्षेत्रों क्षेत्रों में रचनात्मक भूमिका निभाने वाली आत्म निर्भर और महत्त्वाकांक्षी रूप धारण कर चुकी है।

000

शोध आलेख

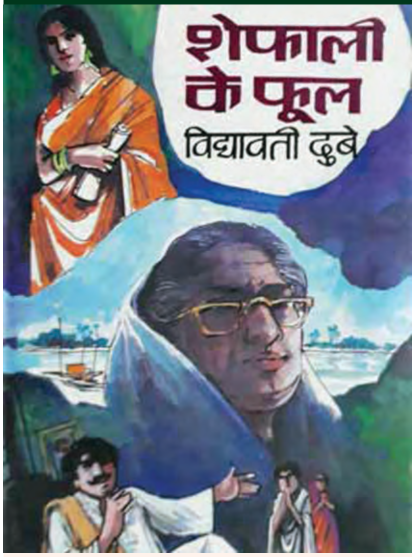

(शोध आलेख)

शेफाली के फूल उपन्यास में अभिव्यक्त स्त्री जागरण के स्वर

शोध लेखक : सरिता मीना

सरिता मीना
हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय
पाटण

विद्यावती दुबे का यह उपन्यास ग्रामीण परिवेश पर केंद्रित एक ऐसी रचना है जिसमें कदम-कदम पर ज़मींदारी, ठेकेदारी, शोषण चक्र, असहाय लोगों का करुण क्रंदन की सामाजिक पारिस्थितिक समस्याएँ आंचलिक रूप लिए हुए साहित्य में मुखरित हुई हैं। जिसमें स्त्री जागरण के स्वर के साथ-साथ भूमंडलीकरण के छूट-पुट प्रवाह भी मौजूद हैं, किन्तु पुरुष प्रधान सत्ता की पैठ ने ग्रामीण समाज को कूपमंडूकता की गर्त में धकेलकर, उसकी आगामी पीढ़ी की जागरण प्रवृत्ति को समय-असमय बाधित किया है। स्त्री जागरण के स्वर बीते दशकों के दौरान कई उपन्यासों में देखने एवं पढ़ने को मिले हैं। उक्त रचना में सावित्री के माध्यम से तमाम स्त्री जागरण के स्वर विविध स्तरों में दिखाई पड़ते हैं, जैसे- स्त्री शिक्षा संबंधित, बाल-विवाह के विरुद्ध, जाति-प्रथा, ज़मींदारी एवं स्त्री-पुरुष के बीच समान व्यवहार आदि पर केंद्रित स्वर सामने आते हैं। साहित्य और साहित्य के इतर क्षेत्रों में भी स्त्री जागरण के स्वर बड़े पैमाने पर हिन्दी, मराठी, बांग्ला, उड़िया, पंजाबी, असमिया आदि रचनाओं में बिखरे पड़े हैं। शेफाली के फूल उपन्यास में स्त्री जागरण के उत्थान के लिए सावित्री के साथ-साथ जिन महिलाओं ने प्रयास किया है। उनमें तारा देवी महिला संगठन एवं मंडल की मुखिया, चंगी देवी वक्ता, यशोदा, सरला, तुलसी, शीला, अंजुम, जमुनी, राधिका आदि प्रमुख हैं। दूसरी और पुरुष पात्र में भरत और विनोद हैं जो स्त्री उत्थान व स्त्री जागरण के स्वर में स्वर मिलाते हुए उपन्यास में चिह्नित हुए हैं। लेखिका ने अपने इस उपन्यास में तमाम ऐसे ग्रामीण स्त्री पात्रों का उल्लेख किया है, जो अपने अधिकारों व हक़ों से वंचित दिखाई देती हैं, तो दूसरी ओर ग्रामीण पृष्ठभूमि में कई ऐसी स्त्री पात्र हैं जो अपने अधिकार एवं हक़ के साथ-साथ अन्य ग्रामीण स्त्रियों के शिक्षा एवं बेहतर स्वस्थ की पैरवी करती हुआ नज़र आती हैं।

शेफाली के फूल उपन्यास को पढ़ते हुए यह आभास होता है कि स्वतंत्रता के पश्चात भी भारतीय ग्रामीण समाज में स्त्री संबंधित प्रसंग में जागरण के स्वर कई कोसों दूर खड़े हुए प्रतिबिंबित हैं। जिसको साहित्य जगत् के रचनाकार विविध प्रसंगों के माध्यम से अपनी लेखनी में उतारने को प्रतिबद्ध रहते हैं। सुधा पत्रिका की संपादकीय के अंतर्गत निराला ने लिखा है, 'मुक्ति का यथार्थ सूत्र स्त्रियों के ही हाथ में है। हमें स्त्रियों की स्वतंत्रता, शिक्षा-दीक्षा आदि पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अन्यथा अब के पुरुषों की तरह उनके बच्चे भी ग़ुलामी की अँधेरी रात में उड़ने वाले गीदड़ होंगे, स्वाधीनता के प्रकाश में दहाड़ने वाले शेर नहीं हो सकते।' इस प्रतिबद्धता की तस्वीर में आज़ाद भारत की 70 प्रतिशत ग्रामीण स्त्रियों की दयनीय स्थिति बद से बदतर दिखाई देती है। इसी संदर्भ में लेखिका कहती है, 'तारा देवी हँसकर बोली, वेरी स्वीट। फिर सावित्री को संबोधित करके बोलीं, यार सावित्री, देखो, लड़कियों को इसी तरह दबा करके कुचल दिया जाता है। जो शोख़ लड़की जमुनी है, देखो, वह कितनी बोल्ड है! पर तुंगी पर पड़ी मार का असर उसे भी कहीं-न कहीं से हीन करता रहेगा। वैसे जमुनी को मार्गदर्शन मिले तो अच्छा चमक सकती है।' दो स्त्री पात्रों के संवाद के आधार पर लेखिका ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पुरानी व्यवस्था और नई व्यवस्था में कुछ ज़्यादा फ़र्क नहीं है, दोनों ही स्तर में स्त्री की स्वतंत्रता को बाधित किया है। ग्रामीण परिवेश की लड़कियों को यदि सही दिशा में मार्गदर्शन व शिक्षा मिले तो जमुनी जैसी बहुतायत स्त्रियों की अकथ पीड़ाओं से उनको मुक्ति मिल जाए। किन्तु बहुत कम ऐसा होता है कि ग्रामीण समाज में पल रही स्त्री को सही राह नसीब हुई हो।

यदि कोई स्त्री ही स्त्री शिक्षा व उन्नत भविष्य की तथा ग्रामीण समाज को जागरण की ओर लेकर जाने की वकालत करती है, तो उसको अपने ही परिवेश में रह रहे लोगों के अटकलों का सामना करना पड़ता है, जिसको उक्त उदाहरण के मध्यम से समझा जा सकता हैं, 'यह तू नहीं, तेरी पढ़ाई-लिखाई कर रही है। नाहक ही तुझे पढ़ाया मैंने।' कथनों से प्रतीत होता है कि पुरानी पीढ़ी के लोगों के लिए शिक्षा और शिक्षित स्त्री दोनों ही पुरुष सत्ता के पतन का कारण बनती जा रही है, इसलिए पुरुष व्यवस्था शिक्षित लड़कियों को बर्दाश्त नहीं कर पाने के कारण उनको और उनकी प्रगति को कोस रहे हैं। अगर सही मायनों में देखे तो स्त्री जागरण के स्वर का अंकुरण ही शिक्षा से हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य में विद्यावती दुबे अपने उपन्यास में लिखती हैं, 'अरे, देखती नहीं दुनिया कितनी आगे निकल गई है! लड़कियाँ तो अब पायलट, सैनिक, पुलिस अफ़सर होने के साथ-साथ अंतरिक्ष में भी जाने लगी हैं।' कथन के माध्यम से लेखिका ने शिक्षा की महत्तता को परिभाषित करते हुए, स्त्री जागरण के साक्ष्य को अभिव्यक्त किया है। आज भारतीय महिलाएँ शिक्षा के दम पर अपने व्यक्तित्व को निखारकर बड़े-बड़े पदों पर विराजमान हैं। लेकिन इसमें क्या ग्रामीण और क्या शहरी दोनों ही क्षेत्र की स्त्रियों में फ़र्क इतना होता है कि उसके पीछे उसका समाज किस तरह कार्य कर रहा है। शिक्षित वर्ग की महिलाएँ सजग और सचेत होने के साथ उचित और अनुचित में फ़र्क करना जानती है, जिसको हम आगामी संदर्भ से समझ सकते हैं, 'शहर की इंटर पास लड़की वैसे ही सास-जिठानी की बात सहे! ऐसी सास-जिठानी की जिनके लिए काला आखर भैंस बराबर हो! उसने भी ठान लिया-आज सासरानी और जेठानी को मुँह की खानी पड़ेगी।' प्रस्तुत पंक्तियों में शहरी परिवेश में शिक्षित हुई स्त्री जब किसी ग्रामीण परिवार की अशिक्षित स्त्रियों के बीच में प्रवेश करती हैं, तो शिक्षित स्त्री को अशिक्षित स्त्रियों के बीच तालमेल बनाने में जो भी कठिनाई होती है, उसको लेखिका ने उल्लेखित किया है। यह भी दर्शाया है कि शौच जैसी समस्याएँ अगर मैदान में करना पड़ें, तो शहरी लड़की की मन:स्थिति दयनीय हो जाती है। आपसी द्वंद्व पैदा होने लगता है। इस आपसी द्वंद्व को पाटने के लिए शिक्षा पर ज़ोर देती है।

लेखिका शिक्षा के बल पर प्राकृतिक साहचर्य से संबंध जोड़ने के लिए समाज एवं उसके बाशिंदों से आग्रह कर रही है। लेखिका उपन्यास के पात्र सावित्री के माध्यम से स्त्री जागरण के स्वर को संबोधित करते हुए कहती हैं, 'सावित्री ने बड़ी दृढ़ता से पूछ लिया-बाबूजी एक स्कूल खोलना चाहती है मेरी संस्था.. बजरंगी बात आधे में ही काटकर बोले, स्कूल खोलो चाहे कॉलेज खोलो पर इतना समझ लेना, मेरे इस घर में कुछ नहीं होना चाहिए, बस। इतना जल्दी में बोलकर बजरंगी गटागट पानी पी गए और बेटी को घूरते हुए फिर बोले किसको पढ़ाएगी तुम्हारी संस्था?' भारतीय ग्रामीण समाज विविधताओं का पुंज है इसमें ऊँच-नीच, अमीर, ग़रीब, कृषक, ज़मींदार और मज़दूर हैं। इन सब के बावजूद एक ज़मींदार की शिक्षित लड़की अपनी शिक्षा के बल पर गाँव के ग़रीब लोगों की लड़कियों के लिए शिक्षा का बंदोबस्त करने अथवा स्कूल खोलने की प्रतिक्रिया के परिप्रेक्ष्य में पिता से आग्रह स्वर में उचित परामर्श करती हुई दिखाई देती है। स्त्रियों के साथ- साथ शिक्षित समाज की बुनियाद मजबूत करना चाहती है ताकि भविष्य में स्त्रियाँ अपने बाल-बच्चों को प्रशिक्षित कर सकें। शिवपूजन सहाय स्त्री जागरण के स्वर की वकालत करते हुए, 'शिक्षा को स्त्री के स्वावलंबन और राष्ट्र के प्रति उसके दायित्व से जोड़ते हैं। शिक्षा तुम्हारी तभी सार्थक होगी जब तुम परिवार और समाज के हित साधन में अपना सारा समय लगा दोगी। परिवार के सुधार से समाज का सुधार होगा, समाज के सुधार से देश का उद्धार होगा। विद्या पढ़ने का तुम्हारा लाभ यह होगा कि तुम स्वावलंबी बन जाओगी। तुम्हारी पराधीनता दूर हो जाएगी। तुमको किसी का मुँह नहीं जोहना पड़ेगा।' इस परिप्रेक्ष्य में उपन्यासकार विद्यावती सावित्री के कथनों के माध्यम से कहती है, 'मैं चाहती हूँ, गाँव में स्कूल खुलें, बच्चे पढ़ें, लड़कियाँ पढ़ें। लोग प्रकृति से भी आनंद लेना सीखें। तितलियों के रंगों में आनंद लें। भौंरे के गूँजने में संगीत सुनें। चिड़िया-चिरोमन की बोली सुनने का प्रयास करें। फूलों की गंध की तरफ अपने मन को सुगंधित करना सीखें।' स्त्री

जागरण के साथ लेखिका प्राकृतिक सौन्दर्य के मनमोहक दृश्यों के साथ जीवन को जीने के लिए स्त्रियों को प्रोत्साहित करती हैं। एक पूरे स्त्री समुदाय को प्रोत्साहित तथा सचेत करने में बहुत से लांछनों और विरोधियों का सामना करना ही नहीं, बल्कि उनके अपमान को सकारात्मक स्वरूप में ग्रहण करना स्त्री जागरण की इच्छा शक्ति को बल देता है।

तथाकथित ग्रामीण महिला के विरोध की परिस्थिति को तारादेवी के माध्यम से लेखिका लिखती हैं, 'अब देखो, तुम कहती हो तुंगी की माँ मुझे ही, मेरे कार्यकलाप को ही देख-कर ऐसा बोलती है, पर मैं समझती हूँ, उसकी तो आदत है, आदत! तारादेवी बड़े इत्मीनान से बोली-सावित्री एक बात बताऊँ! ऐसे लोगों को तो एज़ ए चैलेंज स्वीकार करना चाहिए। इनसे यह न सोचो कि तुम्हारे काम में रुकावट डालेंगे। यह तो अपनी बात से हम जैसों को अतिरिक्त शक्ति प्रदान करते हैं।' एक स्त्री का दूसरे स्त्री के प्रति स्त्री जागरण का कार्य एज़ ए चैलेंज बनकर जब शिक्षित स्त्री के सम्मुख खड़ा होता है तो स्त्री संगठन की महिला मण्डल उसको अपने लिए सशक्त रूप में स्वीकार करती हैं, क्योंकि एक स्त्री ही दूसरी स्त्रियों के जागरण कार्य के मार्ग को बाधित करती है। ग्रामीण लड़कियों को कम उम्र में ही विवाह सूत्र में बाँध दिया जाता है जिसकी वजह से ग्रामीण लड़कियाँ शिक्षित होने से रह जाती हैं। इस कारण भारत की 70 प्रतिशत ग्रामीण लड़कियाँ शिक्षा से महरूम रह जाती हैं, इसलिए शहरी शिक्षित स्त्रियों की ग्रामीण स्त्रियों से वैचारिक टकराहट होती रहती है। इस टकराहट की खाई को लेखिका शिक्षा के मध्य से पाटना चाहती है। इसको इस उदाहरण से समझ सकते हैं, 'गाँव की महिलाओं को जाग्रत करना ज़्यादा आवश्यक है-अब बेचारी तुलसी की छोटी-सी उमर, छोटी-सी समझ और ऊपर से इतना बड़ा बोझ! तुलसी की बात उसके कानों में गूँज गई-दीदी, चुटकी-भर सेंधुरे से कोई पति नहीं बन जाता चुटकी-भर मनवा भी तो मिलना चाही। सारे सिद्धांतों-आडंबरों को झकझोकर रख दिया। यह हम महिलाओं के साथ कितना बड़ा अनर्थ है! जिसके साथ हमारा चुटकी-भर मन नहीं मिलता, उसके साथ पहाड़-सा जीवन काटना पड़ता है।' कथनों से स्पष्ट है कि कई दशकों से ग्रामीण लड़कियों को उनकी मर्ज़ी जाने बिना ही अपने से दस वर्ष बड़े पुरुष से विवाह कर दिया जाता है। इस अनमेल संबंध के कारण जीवन भर की पीड़ा स्त्री को भोगनी पड़ती है। भोगने की पीड़ा से व्यथित होकर अब स्त्री ज़ोर आजमाइश के बंधन से मुक्त होना चाहती है। चेतना की मुक्त अवस्था जागरण की राह से होकर गुज़रती है।

समग्रता:में कहा जा सकता है कि शेफाली के फूल उपन्यास में स्त्री जागरण के स्वर में जो वैचारिक जागरूकता दिखाई पड़ती है। वह समाज के हर तबके के फ़लक को समग्रता में अभिव्यक्त करने वाली है। तमाम कथनों के माध्यम से प्रत्येक स्तर पर स्त्री शिक्षा की बुनियाद को दुरुस्त करने की क्रिया है। ग्रामीण और शहरी इलाकों की स्त्रियों के बीच जो शिक्षा की खाई दिखाई देती है, उसको लेखिका ने सावित्री एवं महिला संगठन के क्रिया-कलापों के माध्यम से पाटने की कोशिश की है। रचना में रचनाकार ने स्त्री जागरण के स्वर में शिक्षा को मूल मंत्र के स्वरूप में प्रस्तुत किया है। शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जो स्त्री की सबलता और दुर्बलता को निर्धारित करते हुए उसके आने वाले भविष्य को रेखांकित करता है। शेफाली के फूल उपन्यास में जितने भी मुद्दे उभरकर सामने आए हैं, उनमें ग्रामीण लड़कियों की शिक्षा का स्वर केंद्र में उपस्थित है। वर्तमान समय में स्त्रियाँ विविध आयामों को प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व को स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज कर रही हैं।

जिस प्रकार उपन्यास की पात्र सावित्री ग्रामीण समाज से लोहा लेते हुए स्त्री जागरण की अलख प्रज्वलित कर अमर हो गई। संघर्ष की प्रक्रिया में सावित्री जैसी बहुत सी ऐसी महिलाएँ उल्लेखित हुई हैं जो महिला सशक्तिकरण के साथ-साथ भावी पीढ़ी को भी सशक्त किया है, जो विद्यावती दुबे के उपन्यास में प्रतिबिंबित है।

000

नई पुस्तक

(कहानी संग्रह)

ज़िंदगी की सबसे सर्द रात

लेखक : कृष्ण बिहारी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

डुबकी, ढाका की मलमल, बादशाह, अकेला चना, सेन चाइल्ड, दो लाख का थप्पड़, सर्वप्रिया, कीमा, अभागी, ज़िंदगी की सबसे सर्द रात, ये कहानियाँ इस संग्रह में संकलित की गई हैं, जो हिन्दी के प्रतिष्ठित कथाकार कृष्ण बिहारी की नई कहानियाँ हैं। वे स्वयं इस कहानी संग्रह के बारे में कहते हैं-साढ़े तीन वर्ष पहले जब कानपुर वापस आया तो नए सिरे से बसना था। लगभग एक वर्ष का समय व्यवस्थित होने में निकला कि अंतर्राष्ट्रीय महामारी ने दुनिया का चक्का रोक दिया। नियमित लिखने का अनुशासन ही है कि सामग्री इकट्ठी होती गई और अब उसका प्रकाशन अपरिहार्य हो गया। ये कहानियाँ पिछले तीन वर्षों में लिखी गई हैं। ये कहानियाँ हंस, पाखी, पुनर्नवा वार्षिकी, वीणा, विश्वरंग, समकालीन वर्तमान साहित्य, देशधारा और दैनिक जागरण में प्रकाशित हुईं। अलग-अलग भावभूमि की इन कहानियों ने पाठकों के दिलों में जगह बनाई है।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

हिन्दी साहित्य में किन्नर जीवन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

शोध लेखक : सुमन

सुमन
हिन्दी विभाग,
जयनारायण व्यास
विश्वविद्यालय,
जोधपुर
राजस्थान

आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों ने किन्नरों का मनोविज्ञान यथा स्थिति प्रकट किया है। उनके बाल रूप और किशोरावस्था की मन स्थिति पर अनेक लेखकों ने अपनी कलम चलाई है। अस्तित्व की तलाश में सिमरन उपन्यास में पाँचवी कक्षा में पढ़ने वाले एक किन्नर की मन:स्थिती का चित्रण किया गया है। इस बालक को स्कूल और दूसरे बच्चों के द्वारा तंग किया जाता है। यह बच्चा जब अपनी पीड़ा माँ-बाप को सुनाता है तो वे उसे दरकिनार कर देते हैं। ऐसे में वह हीन भावना का शिकार हो जाता है। 'मैं..... यह समझ नहीं पा रही थी। मेरे साथ.... यह क्या हो रहा था? पापा सुनना नहीं चाहते थे, माँ समझना नहीं चाहती। ऐसे मेरे हालात थे कि क्या करूँ? ऐसे मेरे हालात थे कि क्या करूँ? रोऊँ भी तो कितना।

किन्नर को जब परिवार और समाज से प्यार नहीं मिलता है तो ये स्वयं को अकेला महसूस करते हैं। उनको लगता है कि दुनिया में इनका कोई नहीं है और यही कारण है कि फिर से ये समाज में केवल अपने जैसे ही व्यक्ति की तलाश शुरू कर देते हैं। इस मानसिकता में अकेलापन और उदासीनता घर कर जाती है - 'वह मुझे मेरे जैसा ही लगा। पहले मैं अपने को अकेली असहाय-सा महसूस करती थी। उसके आने के बाद मेरे अंदर हिम्मत आई, आख़िर मेरे जैसा भी दुनिया में कोई है। पहले मैं अपने को अकेला ना समझती और सोचती थी कि भगवान् ने मुझे ही ऐसा बनाया। अब समझ में आया कि और भी बहुत लोग ऐसे बने हुए है, बस उनके कमाने का तरीका मुझसे बिल्कुल अलग था।

आज भी समाज में लोग हिजड़ों के साथ सैक्स करके अपनी हवस मिटाना चाहते हैं, सिमरन के साथ भी ऐसा ही होता है। एक मज़दूर नेता उसके साथ सेक्स करना चाहता है। इस स्थिति में किन्नर की मन:स्थिति कुछ इस प्रकार चित्रित हुई है -'यह सब सुनकर बड़ा अजीब लगा। कैसी-कैसी मानसिकता के लोग हैं, धिक्कार है ऐसे समाज पर, जहाँ पर ऐसे इज़्ज़तदार लोग रहते हैं जो एक हिजड़े को भी अपनी हवस मिटाने का साधन मात्र समझते हैं। क्या हिजड़े का कोई अस्तित्व नहीं होता? मेरा यह सवाल मेरे दिमाग़ की नसों में ख़ून की तरह दौड़ रहा था, पर जबाब नहीं था मेरे पास। ग़रीब से ग़रीब भी अपनी अस्मिता के लिए जीता और मरता है। क्या हम किन्नर लोग अपने अस्तित्व के लिए जी भी नहीं सकते? क्या हम मनुष्य शरीर नहीं रखते? हमको भी भगवान् ने अनमोल बनाया। मानव देह दी है लेकिन आधे-अधूरे क्यों बनाया? क्या इसलिए बनाया कि लोग अपनी हवस को हम जैसों से पूरा करे?

'मंगला मुखी' उपन्यास में भी किन्नर का अच्छा मनोविज्ञान प्रस्तुत किया गया है। किन्नर जब बच्चा होता है तभी उसको यह अहसास करवा दिया जाता है कि वह इस दुनिया में सबसे अलग है। वह एक बंजर है। ऐसे में वह केवल एकांत वातावरण चाहने लगता है। उसकी दुनिया ही अलग हो जाती है। वह कभी ईश्वर को कोसता है तो कभी अपनी किस्मत को। समाज भी उसे दिमाग़ वाला नहीं मानता। उसे हमेशा यही बोध करवाया जाता है कि तुम हम सबसे अलग हो। तुम हमारे समाज के प्राणी नहीं हो। ऐसे में किन्नर की मनोदशा आम समाज के प्रति बदल जाती है। वह केवल अपनत्व की तलाश करने लगता है, लेकिन कहीं भी उसे स्नेह और प्यार नहीं मिलता -'शकुन के शब्द अब भी उसके कानों में गूँज रहे थे 'आपकी लाडो.......' कब सोचा था मेरी ज़िंदगी में यह दिन भी आएँगे। शायद पूर्व जन्म के कुछ 'संचित पुण्य उधार रह गए थे ईश्वर पर जो यह दिन दिखाए हैं वरना हम कमनसीबों को परिवार का सुख कहाँ नसीब होता है......? हमें तो अर्धनारीश्वर बनाकर हमारे सारे रिश्ते-नाते छीन जाते हैं.... जिस परिवार और समाज में जन्मते हैं वही हमें स्वीकार नहीं करता...... कोई हमें किन्नर कहता है कोई हिजड़ा, समाज के इतने बड़े नातों के शब्द कोश में हमारे लिए महज यही एक शब्द रह गया.....? हिजड़ा। इतना ही नहीं हमारी उपस्थिति भी समाज को स्वीकार्य नहीं, तभी तो जन्मते ही छोड़ दिए जाते हैं.... कभी कहीं ममता का सरमाया शीतल छाँह बरसाना भी चाहे तो समाज के ताने-उलाहने हमसे वह छाया भी छीन लेते हैं। भावनाएँ तो हमारी भी जीवित हैं......। दिल तो हमारे सीने में भी औरों सा धड़कता है। फिर क्यों हमारे मन के आँगन में प्रेम का कोई पुष्प नहीं

खिलता.....? बंजर ज़मीन की तरह ठुकराए जाते हैं। हाँ बंजर ज़मीन हैं तभी तो हमारी कोख़ में कोई बीज अंकुरित नहीं होता, न ममता का वृक्ष ही छाया देता है, न भाई-बदन के प्रेम की अमर बेल ही लहराती है।'

जो लोग यह मानते हैं कि किन्नर की मन:स्थिति ठीक नहीं होती, वे महाभारत के शिखण्डी को भूल जाते है। डॉ. लक्ष्मीनाराण गर्ग ने अपने उपन्याय में शिखण्डी की मनोवृति को रेखांकित करते हुए उसको एक योद्धा के रूप में चित्रित किया है। किन्नर स्वयं को कभी भी दीन नहीं समझते लेकिन समाज उसे हीन बता देता है। वह स्वयं को किन्नर न मानकर माँ-बाप की एक संतान मानता है। शिखण्डी की मनोवृत्ति का विवेचन कुछ इस प्रकार से हुआ है - 'माँ छोड़ो सारी बातें। मैं तो कहूँ, उसे महाराज भी और आप भी ध्यान से सुनें और मेरी कही जाने वाली बातों को मेरी प्रतिमा मानकर विश्वास करें। मेरा पुत्र या पुत्री में नहीं, केवल 'संतान' शब्द में विश्वास है। आपने मुझे जन्म दिया है तो मैं आपकी संतान हूँ। आपकी हर बात मेरे लिए आदेश है। आपने बड़ी सावधानी से मुझे लाड़-प्यार से पाला है और मुझे एक सैनिक के रूप में पराक्रमी योद्धा बनाया है। आपके लिए राज्य और राजपरिवार के गौरव की रक्षा के लिए जान की बाज़ी लगा देना मेरा कर्त्तव्य होगा।' महाभारत का शिखण्डी जब एक पक्ष से शल्य क्रिया (लिंग परिवर्तन) करवाता है, तो उसको मनोदशा बड़ी विचित्र हो जाती है। वह नहीं चाहता कि वह एक शिखण्डी बनकर अपमानित जीवन जीए, इसलिए वह कहता है कि इस शल्य क्रिया के कारण जो मुझे पीड़ा होगी, वो हिजड़ेपन से कई गुना कम ही होगी - वह पीड़ा इस पीड़ा से तो कम ही होगी, जो तीन जन्मों से मैं सहती आ रही हूँ। सम्भवत: भगवान् शिव यही चाहते हैं कि आप के द्वारा उनका वरदान पूर्ण हो। मुझे विश्वास है कि कंठ में गरलधारी शिव मुझे पीड़ा सहने की शक्ति प्रदान करेंगे।

किन्नर शिक्षा चाहते हैं व शिक्षा के माध्यम से अपने समाज का विकास करना चाहते हैं। वे तो यहाँ तक चाहते है कि माँ-बाप अपने बच्चे को डॉक्टर के पास लेकर जाएँ उन्हें चिकित्सा मुहिया करवाएँ, पढ़ाएँ-लिखाएँ। 'किन्नर मुनिया मौसी' उपन्यास में किन्नर मुनिया की सकारात्मक मन:स्थिति चित्रित हुई है। वह चाहती है कि परिवार वाले अपने किन्नर बच्चे को हिजड़ों को न सौंपे - 'सेठ जी आपकी बात ठीक है कि हिजड़ों का न कोई अस्पताल है और न कोई स्कूल। पर आज तक कोई माँ-बाप बच्चों को इलाज के लिए ले जाते भी तो नहीं दिखाई दिए? कोई भी माँ-बाप आज तक ऐसे बच्चे को स्कूल दाखिल कराने ले गए है? माँ-बाप ऐसे बच्चे पालेंगे, तो अस्पताल भी खुलेंगे इनके लिए और स्कूल भी। हमारा बच्चा कहाँ पढ़ें, आवाज़ उठाने पर ही संस्थाएँ और सरकार भी सक्रिय होंगी? शुरूआत अपनी दहलीज़ से होनी चाहिए। आधे-अधूरे (हिजड़े) बच्चे को घर से मत निकालो।'

किन्नर आज संगठित होने लगे हैं। वे अपने वर्चस्व की लड़ाई लड़ना चाहते हैं। इनके साथ ही वे शिक्षा की बात करते हैं। हिजड़ों के डेरे में अपने अस्तित्व और वर्चस्व की मनोवैज्ञानिकता को 'ऐ ज़िंदगी तुझे सलाम' में इस प्रकार विवेचित किया है - 'हिजड़ों को भी आख़िर क़ुदरत ने ही यह स्वरूप दिया है फिर वह क्यों पूर्ण इंसान से अपने को अलहदा सोचता है। वह माँ नहीं बन सकते सिर्फ इसलिए उनको समाज में रहने का कोई हक़ नहीं है।'

स्कूल में जिस तरह किन्नरों का अपमान होता है। वह किसी से छुपा हुआ नहीं है। 'वह' उपन्यास में एक किन्नर बालक का बाल मनोविज्ञान रेखांकित किया गया है। जब स्कूल में किसी बालक को सबसे सामने निर्वस्त्र कर दिया जाए तो उसकी कैसी मन:स्थिति होती है, इसका एक चित्रण देखिए - 'एक दिन मेरी कक्षा की छात्राओं ने, जिन्हें विद्यालय की अन्य छात्राओं का भी समर्थन प्राप्त था, इकट्ठे होकर यह ऐलान कर दिया कि हम किन्नर, हिजड़ा के साथ कक्षा में नहीं बैठेंगे। बात बहुत बढ़ गई तो मुझे प्रधानाचार्य ने अपने कक्ष में बुलाया। वहाँ पहले ही से हमारी कई अध्यापिकाएँ मौजूद थीं, जब मैं वहाँ पहुँची, तो मुझे आदेश सुनाया गया कि मैं अपने सारे कपड़े उतार दूँ। मैंने जब इसका विरोध किया, तो दो अध्यापिकाओं ने मिल कर मेरे सारे कपड़े ज़बरदस्ती उतार दिये। इस प्रकार मुझे निर्वस्त्र करके बहुत देर तक डाँट, उपहास तथा हिकारत भरी निगाहों का सामना करना पड़ा। मैंने अपनी आँखें मूँद ली थी, पर मैं फिर भी महसूस कर रही थी कि उस सब की नज़रें मेरे शरीर के प्रत्येक अंग को बींधती हुई अंदर पहुँच रही है। मेरा ध्यान तब भंग हुआ, जब एक-एक अध्यापिका ने घृणा से मेरे वस्त्र मेरे ऊपर फेंकते हुक्म सुनाया, 'ले पहन' अपनी ड्रेस और अब से तू स्कूल मत आना। चल अब भाग यहाँ से।'

कोई भी किन्नर नहीं चाहता कि वह किन्नर समाज में शामिल हो। उसे किन्नर या हिजड़ा समुदाय के केवल उसके माँ-बाप ही मिलाते हैं। वही उसकी स्थिति के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। एक किन्नर को जब उसका समूह पकड़ कर ले जाता है उसकी मन स्थिति आत्महत्या जैसी हो जाती है - 'अगले दिन मेरी ट्रेनिंग शुरू हो गई। ज़ालिम मुझ पर तरह-तरह के शारीरिक तथा मानसिक अत्याचार करते थे।'

किन्नर समाज में जब एक हिजड़े से देह व्यापार करवाया जाता है, तो वह अन्दर से टूट जाता है। अंजू से किन्नर गुरु देह व्यापार करवाता है। लेकिन अंजू कुछ नहीं कर पाती। लोग अपनी हवस बुझाने के लिए उसके साथ पशु की तरह व्यवहार करते हैं। यहाँ एक आम समाज की घृणित मनोवृति के साथ-साथ एक मजबूर किन्नर की मन स्थिति को भी चित्रित किया गया है, यथा -'जी नहीं, मैं खा-पीकर आई हूँ। आप यह बताइए कि यहाँ मुझे किसलिए लाए हैं?' मैंने उसका हाथ कंधे से हटाते हुए पुछा।

'देख अंजू, तु अगर हमारे साथ कोऑपरेट करेगी तो तेरे लिए ही अच्छा होगा। हमें कोई फ़र्क पड़ने वाला नहीं है। हमने तो रुपये खर्च किए हैं, वसूल कर ही लेंगे।' उसने मुझे समझाया।

किन्नर बच्चा जब घर में अकेला होता है तो उसकी किन्नर मन:स्थिति पूर्ण तरह से

प्रकट हो जाती है। वह लड़कियों वाले कपड़े पहनता है, शीशे में अपनी देह देखता है, अपनी मम्मी के कपड़े पहनने के साथ शृंगार करता है। यह मन:स्थिति प्राय: सभी किन्नरों में पायी जाती है, रेनू बहल ने अपने उपन्यास में एक बाल किन्नर की मन:स्थिति इस प्रकार विवेचित की है - 'जब कभी मैं घर में अकेला होता तो कमरा बंद करके मैं अपने दिल में छिपी इच्छाओं को चोरी-छिपे पूरी ज़रूर करता। अम्मा की अलमारी से उनके कपड़े निकालना। चोली पहनकर ख़ुद को आईने में देखता और ख्वाहिश होती कि किसी तरह छातियों में उभार आ जाए। फिर ब्लाउज़, साड़ी, ऊँची एड़ी वाली सैंडिल पहनकर लचक- लचक कर चलता। अम्मा की बिंदिया, नेल पॉलिश, लिपिस्टिक लगाता, ख़ुद को आईने में निहारता और अपनी ही छवि पर मुग्ध हो जाता। मूझे महसूस होता कि छवि सच है और मैं सिर से पैर तक झूठ छलावा। जी तो चाहता, यह पल नहीं रुक जाए और ऐसे ही मेरा रूप बना रहे, मगर चोर को हमेशा पकड़े जाने का झटका लगा रहता हैं। मैं भी ज़रा सी आहट पर चौंक जाता और ख्वाबों की, हसरतों की दुनिया से निकलकर यथार्थ की दुनिया में लौट आता।'

श्रापित किन्नर उपन्यास में नगगिस एक किन्नर है। इसकी शादी भी अकरम से हो जाती है। लेकिन यह अपनी हीन मानसिकता से बाहर नहीं निकल पाती। उसे हमेशा यही लगता है कि वह अपूर्ण है, सब लोग उससे घृणा करते हैं। एक किन्नर के प्रति समाज जिस तरह का व्यवहार करता है उसकी मन:स्थिति वैसी ही हो जाती है। हालाँकि उसका पति अपनी इस किन्नर पत्नी को बहुत प्यार करता है लेकिन समाज का नज़रिया तो वह नहीं बदल सकता। किन्नरों के साथ बस, रेलवे स्टेशन, सार्वजनिक जगहों पर भेदभाव किया जाता है। 'कुमुज नैस्ट .....' कहानी में जब रेलगाड़ी में किन्नर के साथ भेदभाव किया जाता है तो उसकी मन:स्थिति कुछ हम तरह सामने आती है- 'क्यों नहीं बैठ सकते? सरकार हमें राशनकार्ड देती है क्या? पर हम अन्न तो खाते हैं न! सरकार हमें पहचान पत्र देती है क्या? वोट देती है क्या? वोट देने देती है क्या?' जब तक भारतीय समाज में किन्नरों के साथ इसी तरह का भेदभाव होता रहेगा वे हीनता से ग्रसित होते रहेंगे।

'कबीरन' कहानी में घर से बेदखल एक किन्नर की मन:स्थिति उजागर हुई है। किन्नर का भाई चाहता है कि वह किन्नर बहन को वापिस अपने घर ले जाए। लेकिन कठीरन किन्नर नहीं चाहती कि वह उनकी दुनिया में वापिस जाए, जहाँ-इंसान के साथ भेदभाव होता हो। इस किन्नर ने बड़े ही मनोयोग से अपनी मनोवैज्ञानिकता वर्णित करते हुए समाज के सामने कई ज्वलंत सवाल खड़े किए है - 'मेरा क्या कसूर था जो बापू ने मुझे घर से निकाल दिया? आज मैं दर-दर की ठोकरें खा रही हूँ क्यूँ?'

'मन मरीचिका' कहानी का 'मानव' किन्नर है। वह अपने किन्नरपन से रोज़ संघर्ष करता है। उसकी साथी सुलोचना उसको सांत्वना देती है। वह कहती है कि सब ठीक हो जाएगा। परन्तु मानव अपनी मन:स्थिति से उबर नहीं पा रहा। वह अपनी मनोस्थिति कुछ इस तरह विवेचित करता है - 'सुलोचना! जे मुझमें मेनुफैक्चरिंग हार्मौनल गड़बड़ है, उसका कोई इलाज नहीं। और फिर बात दुनिया के सामने आते ही मखौल उड़ेगा। लोग मेरी भावनाएँ नहीं समझेंगे, बचपन से मज़ाक बनता आया है, बड़ी मुश्किल से मैंने अपने भीतर की मानवी को छिपाना सीखा है।' 'माईकहानी मैं एक ऐसे किन्नर का मनोविज्ञान दर्शाया गया है, जो समाज का सताया हुआ है। वह अपनी ही बिरादरी के ठगे जाने के कारण चोरी भी करने लगता है। इस उपेक्षित किन्नर का विवेचन बड़ी मार्मिता से किया गया है- 'वृद्ध माई बोले जा रही थी, 'बेटा, मैं वक्त की मारी एक किन्नर हूँ। होश सँभालने से लेकर आज तक उँगलियों में गिने जाने वाले तुम जैसे कुछ परोपकारियों को छोड़ मुझे कहीं इज़्ज़त-सम्मान तो दूर की बात हमेशा अपमान और दुत्कार मिला। घर-परिवार और समाज से शोषित, प्रताड़ित, तिरस्कृत और बहिष्कृत रही हूँ। हमेशा उपेक्षा ही मिली।' महेन्द्र भीष्म के अनुसार आज हमें ऐसे छात्रों को अपनाने की ज़रूरत है। उनका मनोविज्ञान पढ़ने की आवश्यता है ताकि ये समाज से उपेक्षित होकर ग़लत काम ने कर सके।

किन्नरों से जब कोई उनका दुख-दर्द बाँटता है तो वे बहुत गंभीर हो जाते है। वे यह नहीं चाहते कि कोई उनसे बीती बातें पूछें। 'निलोफ़र' से जब बाबू उसके जीवन के बारे में पूछता है, तो उसकी मनोवैज्ञानिकता गहरी होती जाती है। एक किन्नर से उसकी आपबीती पूछने पर उसकी मन:स्थिति कुछ इस तरह उजागर होती है - 'बाबू बड़ा दुख दिया है रे तू - आज तूने मेरे सारे ज़ख्म हरे कर दिए..... कैसा ज़ालिम है रे तू...... ज़ख्मों को कुरेद कर दर्द भी देता है और दवा भी।' उसने अपने आँसूओं को पोंछते हुए कहा।'

सामान्य समाज जब एक किन्नर को सताता है तो वह उससे संघर्ष करने के लिए स्वयं को किस तरह तैयार करता है, इसका विवेचन 'पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन' आत्मकथा में प्राप्त होता है। मानोबी जी ने सामान्य समाज से लड़ने के लिए मन:स्थिति को बहुत ही मज़बूत करती है। वह हार नहीं मानना चाहती। एक संघर्षशील किन्नर की मनोदशा इस प्रकार वर्णित हुई है- 'पर ऐसा छलावा भी मेरे भीतर चल रही उथल-पुथल को शांत नहीं कर सका। मैं इसी नतीजे पर आयी कि मैं एक स्त्री हूँ और मुझे किसी भी हाल में, किसी भी दशा में अपने खोल से बाहर आना था।' इस प्रकार किन्नर का मनोविज्ञान असामान्य ही होता है। वह स्त्री-पुरुष की द्वंद्व स्थिति से उम्र भर बाहर नहीं आ पाता। समाज उसे सामान्य होने ही नहीं देता। वह निरन्तर संघर्षशील रहकर अपनी अस्मिता और अस्तित्व को बचाने का प्रयास करता रहता है। आज समाज को इनका मनोविज्ञान समझना होगा तो इन्हें समाज की मुख्य धारा में शामिल करने का प्रयास करना होगा। हिन्दी उपन्यास, कहानी और आत्मकथा में किन्नर मनोविज्ञान यथार्थ रूप में प्रकट हुआ है। यह भी सच है किन्नर समाज में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपनी मन: स्थिति को यथास्थिति परिवर्तित भी करता रहता है।

000

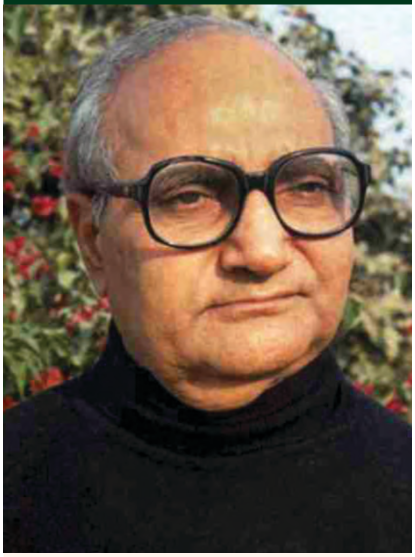

(शोध आलेख)

श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य चेतना

शोध लेखक : पटेल कमलेश कुमार

श्रीलाल शुक्ल हिन्दी व्यंग्य तथा कथा साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। इनका जन्म लखनऊ के मोहनलाल क़स्बे के निकटवर्ती ग्राम अतरौली में 31 दिसम्बर 1925 को एक सुसंस्कृत और विपन्न कृषक परिवार में हुआ था। शुक्ल जी का विधिवत लेखन का प्रारम्भ 1957 में उनका पहला उपन्यास सूनी घाटी का सूरज से होता है। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन में अज्ञातवास, रागदरबारी, पहला पड़ाव, आदि उपन्यासों के साथ अंगद का पाँव, यहाँ से वहाँ, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना, उमरावनगर में कुछ दीन, कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में, ज़हालत के पचास साल, ख़बरों की जुगाली आदि व्यंग्य साहित्य की रचना की। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य में व्याप्त विसंगत और विद्रूप स्थितियों को उन्होंने अपने व्यंग्य का शिकार बनाया है। श्रीलाल शुक्ल जी की पैनी नज़र ने हर क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों को देखा है ओर तीखा व्यंग्य प्रहार किया है।

किसी भी साहित्य में व्यंग्य को प्रस्तुत करने के लिए राजनीति का बड़ा महत्त्व है। आज राजनीति सार्वभौमिक हो गई है। राजनीति का प्रभाव समाज गठन के भी पहले हुआ था। जब समाज के बिना दो-चार लोग एक जगह मिलकर रहते थे तब भी उनमें जो शक्ति के बल पर शक्तिशाली होता था, उसे उस झुंड का नेता बना दिया जाता था। इसी प्रकार दो-चार लोगों के समूह का कबीले में रूपांतरण हुआ और फिर धीरे-धीरे गाँव में फिर शहर में इसी तरह राष्ट्र, देश और विश्व का रूप बनाता गया। पहले अपनी सुविधा तथा सुरक्षा हेतु सरदार या मुखिया का चुनाव किया जाता था, लेकिन आज की बाँझ राजनीति सिर्फ आम जनता का खून चूसना जानती है। जनता की सुरक्षा एवं सुविधा ख़ुद जनता को सोचने पर बाध्य करती है। समाज में फैली राजनीतिक प्रतिस्पर्धा पर कवियों की सदा नज़र रही है। लेखक तथाकथित समय के राजनैतिक परिस्थितियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए दिखे हैं। लेखकों को पता है की राजनीति सिर्फ वोटों और पैसों पर टिकी है आजकल नेता बनने के लिए राजनीतिशास्त्र, नीतिशास्त्र या अर्थशास्त्र आदी विषयों की जानकारी होना ज़रूरी नहीं है बल्कि नेता बनने के लिए पावर, पैसे और दादागिरी की आवश्यकता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में सबसे अधिक ध्यान राजनीतिक सन्दर्भों पर ही दिया गया है। राजनैतिक परिस्थितियों पर किसी भी देश या राष्ट्र की उन्नति टिकी होती है। वर्तमान समय में व्यक्ति जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला तत्व राजनीति है क्योंकि राजनीति से जुड़े राजनेता ही सत्ता पर काबिज होते हैं और वे ही कानून व्यवस्था और नीतियों का निर्धारण तथा संचालन करते हैं जिसके आधार पर सामाजिक तथा व्यक्ति जीवन संचालित होता है। आज राजनीति मात्र देश सेवा के लिए नहीं बल्कि इसमे भी कुछ लोग व्यवसायिक अवसर तलाशते हुए मिलते हैं। राजनीतिज्ञों का क्रिया-कलाप तमाम छल से युक्त होता है। उनकी करनी तथा कथनी में ज़मीन-आसमान का अंतर होता है। विशेष रूप से चुनाव के समय किये गए वादे और सत्ता मिलने के बाद इनका कार्य व्यवहार ज़रा भी मेल नहीं खाता।

मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाओं में एक शीर्षक है एक जीते हुए नेता से मुलाकात जिसमें श्रीलाल जी ने दिखाया है कि जीत हासिल करने के बाद नेता किस कदर लोगों की चापलूसी वाला फंडा अपनाता है अर्थात् लोग अपने-अपने हिसाब की फरियादें लेकर नेता के पास आते हैं, किसी का तबादला कराना है, किसी को क्लर्की की नौकरी दिलवानी है, किसी को चपरासी की, तो किसी को ऐम्बैसेडर बनना है, परन्तु एक जगह लेखक के द्वारा फरियाद के तौर पर यह कहना कि उनके गाँव में अस्पताल तो है पर डॉक्टर नहीं है। इसलिए आप (नेता) डॉक्टर नियुक्त करें। यह बात नेताजी समझ ही नहीं पाते हैं और अपने तरीके से कहते हैं 'तो तुम्हारे लड़के को, भतीजे को, किसको बताओ, जिसको बताओ उसको अप्वाइंट करा दूँ।' तात्पर्य सही तरीके से नेता को, काम करना ही नहीं आता। नेता जी वह चुनाव जीतकर सिर्फ रिश्वत की कमाई करना जानते हैं। लोगों की नज़रों में जाहिल और चापलूसी का नकाब ओढ़ते-ओढ़ते अब यही नकाब उसका वास्तविक वस्त्र बन चुका है। अंत में अपनी ही तारीफ़ के पुल बाँधते मुस्कराते हुए कहते हैं –

पटेल कमलेश कुमार
बालूभाई आर्ट्स कॉलेज
बामणा, ता. भिलोड़ा,
जि. अरवल्ली

'लोगों का यह हाल है कि अपनी बात करने के लिए मेरे बाथरूम तक में जाकर बैठ जाते हैं।' स्पष्ट है कि राजनीति का ही प्रभाव आज के सामाजिक मूल्यों, आर्थिक संकटों और व्यक्तिगत जीवन को बढ़ावा दे रहा है।

श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य नगर विकासमंत्री से संवाद में सुअर के माध्यम से नगर विकास व निगम के अंदर चल रहे भ्रष्टाचार का पर्दाफाश है इसी पाठ से - 'आपका विचार ठीक नहीं है। वे सड़कों पर नहीं, ज़्यादातर गलियों में घूमते हैं। वे गंदगी फैलाते नहीं, गन्दगी खाते हैं। नगर विकास में उसकी एक विशिष्ट भूमिका है।' नगर की सड़कों का विकास केवल मात्र एक सिस्टम का नाम हो चुका है, सुधारने का नहीं। यहाँ दुहाई तो अमेरिका और यूरोप की सड़कों का दिया जाता है, परन्तु काम के समय रीढ़ से हड्डी ही ग़ायब हो जाती है। तो दूसरी तरफ दिखाते हैं कि किस तरह अपने पिता के समस्त राजनीतिक भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ दाग़मुक्त करने व मीडिया पर थोपता है। 'मैं भी वही कह सकता हूँ जो ऐसे मौके पर सभी कहते हैं -कि यह सब मीडिया की शरारत है, पर मैं ऐसा नहीं कहूँगा।' जैसा कि समस्त भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की विशेषता रही है कि जब वे फँसते हैं, तो विपक्षों की चाल या मीडिया की शरारत कहकर अपने आप को निर्दोष साबित करने की कोशिश करते हैं।

साम्प्रदायिक दंगों के पीछे राजनीतिज्ञों के हाथ के बारे में अपना टिप्पणी देते हुए श्रीलाल शुक्ल कहते हैं जुलूस निकालना, भाड़े के गुंडे इकट्ठा करना, शांतिपूर्ण छात्रों पर पुलिस के द्वारा लाठी चार्ज करवाना, बसों को जलाना, दुकानों में आग लगवा देना, लड़कियों का अपहरण करवाना, राह में चलने वाले मुसाफिरों पर बम गिराना, ये तमाम असामाजिक तत्वों को बढ़ावा दिलाने में बड़े-बड़े नेताओं का हाथ होता है, जिनका काम सिर्फ इतना होता है कि शहर में हिन्दू-मुस्लिम धर्म के नाम पर लड़ते रहें। साम्प्रदायिक दंगा चाहे कोई भी करे परन्तु गिरफ्तार निर्दोषों को किया जाता है। इस बात पर श्रीलाल शुक्ल कहते हैं -'गिरफ्तारी तो भाई, उसी की होगी जो अपने को गिरफ्तार कराए, जैसा कि अटलजी ने या जार्ज फर्नांडीज़ ने अभी कराया। असामाजिक तत्व भी अपनी गिरफ्तारी कराएँ तो ऐतराज़ नहीं, उन्हें भी गिरफ्तार कर लेंगे।' श्रीलाल शुक्ल ने दंगा कराने वालों पर खुला व्यंग्य किया है। दंगा कराने वाले तो बच आते हैं, परन्तु गिरफ्तार तो बेचारे बेकसूर लोग, छात्र, मुसाफिर और सच्चे राजनीतिक कार्यकर्ता, हिन्दू-मुसलमान, बच्चे और औरतों को किया जाता है। बेवजह ये लोग कहीं भी गुंडागर्दी करने पर उतर आते हैं।

साहित्य और समाज एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। समाज में जो कुछ भी होता है, साहित्य उस से अछूता नहीं रहता। साहित्य का मुख्य स्रोत समाज ही होता है। साथ ही साहित्य समाज को नई सोच और दिशा भी प्रदान करता है। इसीलिए समाज में व्याप्त विद्रूपताओं और विसंगतियों को व्यंग्यकार जहाँ अपने साहित्य में व्यंग्य के माध्यम से उजागर करता है वहीं वह इन सामाजिक विसंगतियों पर करारी चोट भी करता है। इस तरह व्यंग्यकार को समाज से प्रेरणा मिलती है। व्यंग्य जब जीवन से जुड़कर आता है तो वह हमारी सोच, हमारी जीवनशैली, हमारे जीवन और समाज को बदलने की सोच रखता है। हमारे आस- पास कई प्रकार की विसंगतियाँ बिखरी पड़ी हैं, जिनको देखकर, समझकर ठीक किया जा सकता है। लेकिन प्राय: हम उसे देखकर ही आगे बढ़ जाते हैं। सजग साहित्यकार या रचनाकार इसी स्थितियों को देखकर आगे नहीं बढ़ता लेकिन उसकी जड़ तक पहुँचने का प्रयास करता है। उसे गहराई से समझता है और फिर अपने शब्दों के माध्यम से हमें समझाने का प्रयास करता है। शुक्ल जी ने भी अपने आस-पास की घटनाओं को देखा, समझा और इसमें व्याप्त विकृतियों, विसंगतियों, विरोधाभासों तथा अंतर्विरोधों पर अपने साहित्य के माध्यम से व्यंग्यात्मक रूप से प्रहार किया है।

मनुष्य वर्ण के आधार पर एक दूसरे से दूरियाँ कायम कर लेता है और फिर उन्ही दूरियों को साया बनाकर भेद पैदा करता है। रंग-रूप तथा जाति भेदों के अंतर्गत शुकल जी ने लिखा है कि 'और देखो तो एक बैल काला है और एक सफ़ेद है। पर इनमें काले गोर का भेदभाव नहीं है। ये दोनों एक ही जगह बैठकर खाना खाते हैं। कंधे से कंधा मिलाकर चलते हैं। एक ही बैलगाड़ी में साथ साथ जुतते हैं। इन बैलों से उन बहुत देशों को एक शिक्षा मिल शकती है, जहाँ वर्ण भेद के कारण....।'

स्वातंत्र्योत्तर युग में सामाजिक यथार्थ एवं परम्परागत रीति-रिवाजों का विकास सबसे अधिक हुआ। विशेषकर नारी समस्या, मध्यमवर्गीय समस्या, बेरोज़गारी की समस्या, किसानी समस्या, मज़दूरों की समस्या, नगरीय जीवन शैली की जटिलता, दलित वर्ग की व्यथा पर लोगों का ध्यान सबसे अधिक रहा। श्रीलाल शुक्लजी ने नारी की व्यथा को अपने व्यंग्यों में महत्त्वपूर्ण हिस्से को उभारने का प्रयत्न किया है। बहू दहेज नहीं लाती है इसलिए कुल के लिए कलंकित है।

स्वरोज़गार के नए टिप्स नाम का व्यंग्य में श्रीलाल ने बेरोज़गारी पर ध्यान देते लिखा है 'नौकरियों में भर्ती के घूसखोरी की दलाली ख़ासतौर से हम राज्यों के पब्लिक सर्विस कमीशन के चेयरमैन और मेम्बरों के दल्लों के दलाल बन सकते हैं।' अब नौकरियाँ पाने के लिए काबिलियत नहीं पर पैसा देखा जाता है। स्वामी विवेकानन्द ने भी देश निर्माण के लिए युवकों को, तरुणों को शक्तिशाली, तेजस्वी और आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा दी है क्योंकि उनको पता था कि नई पीढ़ी के नवयुवकों पर भारतवर्ष का पुनरुत्थान टिका है। वास्तव में 'सच्चा स्वाधीन व्यक्ति वही है, जिसका जीवन आत्म के शासन से संयमित हो जाता है, जिसे किसी बाहरी दबाव की ज़रूरत नहीं पड़ती।' आज बाँझ और वर्तमान राजनीति ने नवयुवकों की नई पीढ़ी को लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत कितना स्वार्थी बनने पर मजबूर कर दिया है। आज की पीढ़ी व्यक्तिगत स्वरूप से इन भ्रष्ट नेताओं के चुंगल में फँस चुकी है।

श्रीलाल शुक्लजी के किसान आज की परिस्थितियों की उपज हैं। श्रीलाल शुक्लजी एक स्थल प्रस्तुत मुद्दे की पुष्टि करते हुए दिखते हैं – '1948 में बहुत कुछ बदला है पर

सूदखोरी नहीं बदली, होरी के सिर पर अब दो तरह से क़र्ज़ हैं। एक खेतिहार ऋण और दूसरा असली ऋण-बिरादरी में बेइज़्ज़ती से बचने के लिए लिया जानेवाल ऋण।' अर्थशास्त्र के हिसाब से वित्त मंत्रालयों से जुड़ा ऋण होरी के लिए खेतिहर ऋण है और बाप दादा के ज़माने से चले आ रहे न चुकने वाला ऋण किसानों के लिए दूसरा ऋण है।

संस्कृति जीवन का वह शुभ तत्व है जो मनुष्य को पशु जगत् से पृथक करता है। अपने व्यापक अर्थ में संस्कृति मनुष्य की उस जीवन व्यवस्था का नाम है जिसमे कला, शिक्षा, साहित्य, संस्कार, धर्म, आचार विचार, आस्था-विश्वास, मूल्य आदि सबका सहज समावेश हो जाता है। निरंतर परिवर्तनशील और गतिशील रहना संस्कृति की प्रमुख पहचान है। समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। संस्कृति समाज का अभिन्न अंग है। अत: सामाजिक परिवर्तन के साथ सांस्कृतिक मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहता है। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के प्रभाव से मनुष्य के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में तेज़ी से परिवर्तन हो रहा है। रूढ़िवादी विचारों का विरोध और नई चेतना का स्वीकार सर्वत्र हो रहा है। एक ओर किसी धर्म-विशेष के बदले मानव धर्म को महत्त्व दिया जा रहा है, तो दूसरी और कुछ संकिर्नामती लोग धार्मिक- साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दे रहे हैं।

अपने व्यंग्यों के माध्यम से कला और संस्कृति की बेमिसाल पृष्ठभूमि की रचना करते हुए शुक्ल जी दिखाई पड़ते हैं– अंगद का पाँव नामक व्यंग्य में वे लिखते हैं –'तन ढाँकने को एक धोती बहुत काफी है, पर देखिए बाहर जाने के लिए यह सूट पहनना पड़ता है। यही कोएर्शन है। यही ज़िंदगी है। स्वाद ख़राब होने पर भी दूध छोड़कर काफी पीता हूँ, जासूसी उपन्यास पढ़ने का मन करता है पर काण्ट और हिगेल पढ़ता हूँ, और उपन्यास पढ़ने का मन करता है पर मित्रों के लिए स्टेशन आकर घंटों खड़ा रहता हूँ।' यहाँ श्रीलाल शुक्ल इन पंक्तियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और सभ्यता की बात करने का प्रयास करते हैं जो न चाहते हुए भी इंडिया में परिणत हो चुका है। रेलगाड़ी की सी-सी की आवाज़ के साथ वह खुलकर आगे नहीं बढ़ पा रही है। बस कहीं खड़ी होकर बदलने की, आगे निकलने की आशा रखती है। पश्चिमी सभ्यता का असर पड़ने के कारण भले ही जनता के अन्दर जागृति आई परन्तु पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण ने भारतीय संस्कृति के अंतराल साहित्य और कला पर भी अपना अधिपत्य कायम किया।

भ्रष्टाचार, बेईमानी केवल राजनीति और प्रशासन में ही नही है। शिक्षा के क्षेत्र में भी इसकी विविध घटनाएँ दिखाई देती हैं। नए-नए स्कूल कॉलेज खुल रहे है। सरकार की ओर से इन्हें कोई सहायता मिले न मिले इन्हें कोई कठिनाई नहीं होती। बच्चों को स्कूल में दाखिला करवाना माँ-बाप के लिए बहुत बड़ी समस्या बन गई है। डोनेशन के रूप में इन समस्या पीड़ितों को ख़ूब लूटा जा रहा है। इसके बावजूद बच्चों को अच्छी शिक्षा प्राप्त होगी यह भी तो नहीं कहा जा सकता। आज कई लोग बिना पढ़ाई किए पैसों के बल पर डिग्रियाँ हासिल कर लेते हैं। इस पर शुक्ल जी ने अपनी व्यंग्य रचना झोला छाप में लिखा है – 'कॉलेज यानी एक कोठरी का दफ्तर जहाँ कुछ रजिस्टर, रसीद बुकें, फ़ार्म, रबर की मोहरें, और छपे प्रमाणपत्र भर होने चाहिए। वहाँ दो चार हज़ार रुपये देकर एक डॉक्टरी डिग्री ली जा सकती है। पूरे देश में इसी कोठरियाँ चार सौ से ऊपर हैं।' इस तरह रुपयों के बल पर डिग्रियाँ पाकर पैसा कमाने वालों की कमी नहीं है। आधुनिक युग में ज्ञान के लिए कम पढ़ते हैं और कमाने के लिए ज़्यादा। आज तो शिक्षा एक व्यवसाय बन गई है।

शिक्षा- व्यवस्था और ख़ास तौर पर बुद्धिजीवी कहे जाने वाले प्राणियों से सबंधित रागदरबारी उपन्यास में वर्णित एक प्रसंग दृष्टव्य है जिसमें वैद्य जी द्वारा संचालित एक महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा कहलवाया गया है –'और सच पूछो तो मुझे यूनिवर्सिटी में लेक्चरार न होने का कोई गम नही है। वहाँ तो और भी नरक है, पूरा कुम्भीपाक ! दिन रात चापलूसी। कोई सरकारी बोर्ड दस रुपल्ली की ग्रांट देता है और फिर कान पकड़कर जैसी चाहे वैसी थीसिस लिखा लेता है। जिसे देखो, कोई न कोई रिसर्च-प्रोजेक्ट हथियाए है। कहते हैं रिसर्च कर रहे हैं – हाँ हाँ याद आया – बुद्धिजीवी। तो हालत यह है कि है तो बुद्धिजीवी, पर विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यह साबित करना पड़ जाए कि हम अपने बाप की औलाद नहीं है, तो साबित कर देंगे। चौराहे पर दस जूते मार लो पर एक बार अमरीका भेज दो - ये है बुद्धिजीवी।'

वर्तमान की शिक्षा पद्धति में बहुत सारी कमियाँ दिखाई देती है। हर पाँच-छ: सालों में पाठ्यक्रम बदला जाता है। पाठ्यक्रम बदलने के लिए जिस कमिटी को नियुक्त किया जाता है वे जो पाठ्यक्रम तय करते हैं वही अंतिम निर्णय है। इसलिए इसमे बहुत सारी कठिनाइयाँ दिखाई देती हैं और ऊपर से अंग्रेज़ी ज़बरदस्ती बच्चों पर लादी जा रही है। इससे अमीर बच्चे ही ज़्यादातर स्कूल जा रहे है और ग़रीब बच्चे थोड़े दिनों के लिए स्कूल जाते हैं, पर बाद में वे भैंस चराने या खेतों में घास काटने चले जाते हैं। हमारा मानव संसाधन मंत्रालय यह घोषणा कर रहा है कि सबको साक्षर बनाएँगे। लेकिन फिर भी आज़ादी के इतने सालों के बाद भी हमारे देश में बहुत सारे निरक्षर पड़े हैं। इसीलिए श्रीलाल शुक्ल वर्तमान शिक्षा पद्धति के बारे में लिखते हैं कि – 'वर्तमान शिक्षा-पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है।'

शुक्ल जी ने शिक्षा के नाम पर चल रहे चक्रव्यूह का पर्दाफ़ाश अपने व्यंग्य में किया है। विद्या को जहाँ लोग माँ सरस्वती का दूसरा रूप मानते हैं, वही आज विद्या का व्यापार चल रहा है। डिग्रियाँ बिक्री हो रही हैं। शिक्षा और अशिक्षा में कोई असमानता नहीं रह गई है। शिक्षा अब रिश्वत देकर प्राप्त होती है। निष्कर्षत: कह सकते है की श्रीलाल शुक्ल जी ने अपनी रचनाओं के जरिये राजनीतिक, सामजिक, आर्थिक एवं शिक्षा आदि की विसंगतियों को व्यंग्य का आधार बनाया है।

000

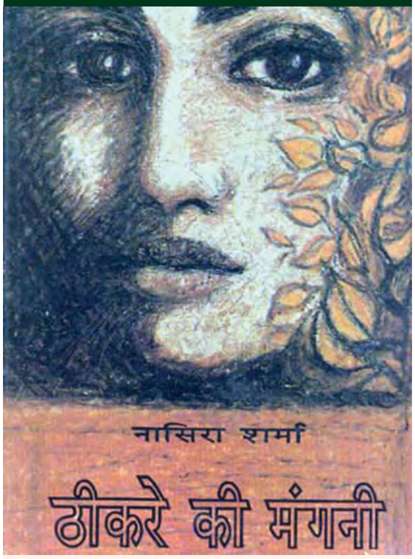

(शोध आलेख)

ठीकरे की मंगनी उपन्यास का तात्त्विक विवेचन

शोध लेखक : डॉ. भरत अ. पटेल

नासिरा शर्मा समकालीन हिन्दी की प्रमुख कथा-लेखिकाओं में से एक है। सात नदियाँ एक समंदर, शाल्मली, ठीकरे की मंगनी, ज़िंदा मुहावरे, अक्षयवट, बूँद आदि उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं तथा शामी काग़ज़, पत्थरगली, संगसार, इब्ने मरियम, दूसरा ताजमहल, बुतखाना, गूँगा आसमान, शीर्ष कहानियाँ उनके चर्चित कहानी-संग्रह हैं। नारी के संदर्भ में भारतीय समाज में प्रचलित परंपरागत विचार, मान्यताएँ, रीति-रिवाज तथा बदलते युग के साथ कदम मिलाने और अपने अस्तित्त्व को कायम रखने की इच्छुक नारी के जीवन-संघर्ष को, उसके अंतस्तल की भाव-भूमि को अभिव्यक्त करना नासिरा शर्मा के कथा-लेखन का मूल उद्देश्य है। इसी उद्देश्य-पूर्ति का सीमा-चिह्न रूप उपन्यास है - ठीकरे की मंगनी। इस उपन्यास का तात्त्विक विवेचन मेरा अभीष्ट प्रयोजन है।

कथानक : ठीकरे की मंगनी उपन्यास की कथा मुख्य रूप से महरुख नामक मुस्लिम लड़की के इर्दगिर्द बुनी गई है। ज़ैदी खानदान में चार पुश्तों से लड़की का जन्म नहीं हुआ था, एकाध बार हुआ भी तो लड़की मुर्दा पैदा हुई या वह ज़्यादा समय जिंदा नहीं रह पाई थी। महरुख जब पैदा हुई तो सब झूम उठे थे। खुशियाँ मनाई गई, मन्नतें पूरी की गई। उसकी पैदाइश के फौरन बाद उसकी ख़ाला (मौसी) शाहिदा ने गंदगी से भरे ठीकरे पर चाँदी का चमचमाता रुपया फेंककर कहा था- खालिदा, आज से यह लड़की मेरी हुई। यह टोटके की रस्म इसलिए की गई थी ताकि लड़की जी जाए। पर सच पूछो तो यह टोटके की रस्म ठीकरे की मंगनी में बदल दी गई थी। महरुख की अम्मा खालिदा और उसकी बहन शाहिदा ने अपने बेटे-बेटी की मंगनी तय कर दी थी और इस खुशी में मोतीचूर के लड्डू बाँटे गए। खालिदा के जेठ और देवरों को यह बात पसंद नहीं आई थी, क्योंकि उनके घरों में भी लड़कों की पलटन मौजूद थी। महरुख ख़ूब लाड़-प्यार में पली थी। ज़ैदी खानदान के इस जहाजनुमा घर में कुल मिला के बाइस बच्चे थे। महरुख की ख़ाला शाहिदा का बेटा रफ़त अलीगढ़ से एम.ए. करना चाहता था और यह भी चाहता था कि उसकी मंगेतर महरुख भी पढ़े, सो महरुख ने बी. ए. में दाखिला ले लिया। वह पढ़ने में अव्वल थी और वजीफ़ा पाती थी। रफ़त महरुख को एम.ए. कराने के लिए दिल्ली ले जाना चाहता है, पर बिना शादी किए महरुख को इसके मंगेतर के साथ कैसे भेजा जा सकता था ! महरुख की अम्मा अपने पति और परिवार को समझा-बुझाकर, छः महीने के बाद शादी करवाने की बात कहकर अपनी बेटी को दिल्ली रवाना कर देती है।

महरुख का छोटे-से क़स्बे से निकलकर दिल्ली जैसे महानगर तक आने का सफर कदम-कदम पर अपने को सुधारने का और बदलने का था, पर उसकी यह कोशिश तब सवाल बन जाती है, जब लड़कियाँ पास खड़े किसी प्रोफ़ेसर से सिगरेट या माचिस माँगकर कश खींचती देखती है। एक जगह रफ़त उसे आगाह करते हुए कहता है- 'कल तुम एक ऐसे शख्स के साथ ज़िंदगी गुज़ारनेवाली हो जो सिर्फ पढ़ा-लिखा ही नहीं, बल्कि इंकलाबी ख़यालात का मालिक भी है।' रफ़त द्वारा दी गई पुस्तकों को पढ़कर तथा रफ़त के व्यवहार और उनके मित्रों के व्यवहार को देखकर वह असमंजस में पड़ जाती है- 'ये शब्द, ये भाषण बिना व्यवहार के बेकार हैं। ऐश व आराम में रहकर ग़रीबी की कश्मकश की बातें करना भूख के दर्द को पहचान सकने की एक सतही कोशिश है। वह यह सब कुछ रफ़तभाई से नहीं कह सकती है, जिनके दोस्तों में से अधिकांश लड़के-लड़कियाँ बड़े दौलतमंद ताजिर घरानों के हैं और ग़रीबी पर बात करना उनके दिल का बहलावा और उनके लिए सोचना फैशन।' ग़रीबी पर भाषण देते हुए वह कम्युनिस्ट पार्टी में भर्ती हो गए। रफ़त महरुख को अनुभव के अथाह समंदर में फेंककर ख़ुद अपनी एम. फिल. की थीसिस लिखने में लिखने में जुट गए। कुछ समय बाद में पीऍच.डी की डिग्री पाने के लिए अमेरिका चले गए। रफ़त के दोस्तों से जब पता चला कि रफ़त वहाँ किसी वैलरी नामक लड़की के साथ लिविंग टु गेदर जैसी ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं। रफ़त का सारा खर्च वैलरी ही उठाती है। महरुख के पाँव तले की ज़मीन खिसकने लगी। इसकी समझ में यह बात आ जाती है कि 'वह रफतभाई के दिल व दिमाग़ में कभी नहीं थी। वह तो रिश्ते के नाम पर एक

डॉ. भरत अ. पटेल
हिन्दी विभाग,
विजयनगर आर्ट्स कॉलेज
जि. साबरकांठा, गुज़रात

पोस्टर थी, एक नारा थी जिसे रफ़तभाई समाज की दीवार पर चिपकाकर अपनी पहचान का झंडा ऊँचा रखना चाहते थे, वरना वह महरुख का हक़ किसी और औरत को क्यों दे बैठते ?' चार फर्स्ट क्लास और एम. फिल. की डिग्री होने के बावजूद महरुख एक छोटे-से गाँव के स्कूल में शिक्षिका बन जाती है। अकेली जवान और ख़ूबसूरत युवती के जीवन के बारे में जानने की उत्सुकता सब में देखने को मिलती है। कुछ समय बाद संजय और इशरत नामक दो नए शिक्षक स्कूल में आते हैं। ये दोनों नापाक हरकतों से महरुख का जीना हराम कर देते हैं, उसे परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ते। फिर भी महरुख अपने जीवन के सत्य के एकाकी-पथ पर डटी रहती है।

अमेरिका से अकेले ही लौटे रफ़तमियाँ महरुख के घर जाकर माफी माँगते हुए फिर से नई ज़िंदगी की शुरुआत करने की बात कहता है, पर महरुख स्पष्ट शब्दों में साफ इंकार कर देती है- 'आप ने मेरा सबकुछ छीन लिया था, ज़िंदगी और वक्त के तकाजों की भूलभुलैया में मुझे भटका दिया था। बड़ी मुश्किलों से अपने को निकाल पाई हूँ ... अब मेरे पास समझ है। मैं अपना भला-बुरा ख़ुद समझ सकती हूँ। ठोस ज़मीन पर ठोस ज़िंदगी जीना चाहती हूँ। मेरी ज़िंदगी पर सिर्फ मेरा हक है।'

तीस साल की नौकरी के बाद रिटायर होकर महरुख अपनी बस्ती में लौट आती है। घर के मर्द एक-एककर के अल्लाह को प्यारे होते चले गए थे औरतें सफेद कपड़े पहने अपने में सिकुड़ती चली गई थीं। बच्चों की किलकारियाँ, क़हक़हों की आवाज़ें और चूड़ियों की झंकार से गूँजता घर अब वीरान सा हो गया है। बुढ़ी अम्मी कभी कहती है- 'मेरे मरने के बाद तेरा कौन वाली होगा मेरी महरुख...! क्या करेगी तू अकेली मेरी लाजो ? मेरा बुढ़ापा तो तूने सुआरत कर दिया मेरी बेटी, मगर तेरी तन्हाई कौन बाँटेगा ?' छोटी चाची के इंतकाल पर सारे भाई-बहन इत्तेफाक से जमा हो गए। उसी समय ताया अब्बा के बेटे तनवीर को रुपयों की ज़रूरत आन पड़ी थी। सभी भाई इस बात पर राज़ी हो गए कि खंडहर जैसा मकान ज़मीन के साथ बेच दिया जाए और पैसे बराबर से बाँट लिए जाएँ। अम्मी के इंतकाल के बाद बाकी भाई-बहनों के साथ महरुख भी वह घर छोड़कर जाने को तैयार हो जाती है। भाई-बहनों से वह कहती है- 'एक घर औरत का अपना भी हो सकता है जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग उसकी मेहनत और पहचान का हो। मेरा अपना घर वही पुराना है, जहाँ मैं पिछले तीस साल रही हूँ। तुम लोग अपने-अपने घर लौट रहे हो, मैं अपने घर लौट रही हूँ। इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है ?' गाँव में महरुख के घर काम करनेवाली लछमिनिया अपनी पतोहू के साथ महरुख का स्वागत करती है और उसकी सेवा में हाज़िर हो जाती है।

ठीकरे की मंगनी उपन्यास की कथा तीन स्थलों से जुड़ी है- एक तो महरुख की अपनी बस्ती, दूसरा दिल्ली का विश्व विद्यालय और तीसरा वह गाँव जहाँ महरुख नौकरी करती है। लेखिका इन तीनों स्थलों की घटनाओं को एक कथा-सूत्र में बाँधने में सफल रही है। कथा में प्रवाहमयता, रोचकता और उत्सुकता अंत तक बनी रहती है।

पात्र-सृष्टि : ठीकरे की मंगनी उपन्यास की कथा में तीन प्रदेश जीवंत हो उठे हैं। पहला स्थान उपन्यास की नायिका महरूख के परिवार से जुड़ा है। उसका जन्म एक मुस्लिम ज़ैदी खानदान में हुआ था। दादा-दादी के चार बेटे, उनकी पत्नियाँ और कुल मिलाकर बाईस बच्चों का भरा-पूरा परिवार है। ऐसे भी मुस्लिम परिवारों में बच्चों का जन्म ख़ुदा की रहमत मानी जाती है। इस प्रकार इतने बड़े परिवार के साथ उनके रिश्तेदार मिलकर उपन्यास में पात्रों का जमघट देखने को मिलता है। दूसरी ओर गाँव के स्कूल के मास्टर, हेडमास्टर, गाँव के कुछ पात्र लछमिनिया और उसका परिवार मिलकर कई सारे पात्र इसमें जीवंत हो उठे हैं। साथ ही दिल्ली के विश्वविद्यालय से जुड़े पात्र भी सम्मिलित हैं। कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि इस छोटे उपन्यास में पात्रों का जमावड़ा देखने को मिलता है, पर कहीं भी क्लेश देखने को नहीं मिलता है। परंतु पाठकों के लिए इतने सारे पात्रों के नाम और उनके रिश्तों को याद रखना थोड़ा-सा कठिन ज़रूर हो जाता है। साथ ही परिवेश को जीवंत बनाने के लिए यह वाजिब भी है।

इस उपन्यास की नायिका है- महरुख। परिवार में उसका महत्त्व और लाड़-प्यार इसलिए ज़्यादा था कि वह ज़ैदी खानदान की चार पुश्तों में पहली जीवित लड़की थी। यही कारण है कि इस रूढ़िग्रस्त मुस्लिम परिवार में लड़की को ज़माने की परवाह किए बिना उच्च शिक्षा प्रदान की जाती है। बचपन में चुलबुली और परिवार के अन्य बच्चों पर धाक जमानेवाली महरुख अपनी जवानी के दिनों में सलीक़े वाली गंभीर युवती बन जाती है। अपनी ख़ाला शाहिदा के बेटे रफ़त से महरुख की सगाई, रफ़त मियाँ के दबाव पर बिना शादी किए महरुख का दिल्ली जैसे महानगर में एम. ए. करने के लिए जाना, महानगर की पश्चिमी संस्कृति और आधुनिक ज़माने की चकाचौंध में अपने को स्थिर रखने का संघर्ष। रफ़त मियाँ का रूखा-सा व्यवहार, अमेरिका जाकर रफ़त का अंग्रेज़ी युवती वैलरी के साथ रहना, अपनी ज़िंदगी के बारे में सँजोए रंगीन सपनों का टूटना पीएँच. डी. का कार्य छोड़कर एक छोटे-से गाँव में स्कूल टीचर बनना, स्कूल के संजय और इशरत जैसे नालायक शिक्षकों की बदनियत और बदतमीज़ी का शिकार होना- ये सारी परिस्थितियाँ महरुख की ज़िंदगी को बदल देते हैं। इतने संघर्षों से जूझती महरुख एक थरथराते सत्य का रास्ता चुनती है जो उसे अकेला तो कर देता है, पर जीवन के पथ पर सशक्त ढंग से खड़ा होना सिखा देता है। वह गाँव के दु:खीजनों का दूर करने की कोशिश में अपने अकेलेपन को भूलाने का प्रयास करती है।

प्रस्तुत उपन्यास का दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र है- रफ़त मियाँ। यह एक काफी महत्त्वकांक्षी और स्वार्थी पुरुष-चरित्र है। वह अच्छी ज़िंदगी जीना चाहता है, इसलिए वह महरुख को भी एम. ए. की पढ़ाई के लिए दिल्ली ले जाना चाहता है। दिल्ली के आधुनिक महानगरीय वातावरण में महरुख छुईमुई के पौधे की तरह सिकुड़ती जाती है। इसके इस

व्यवहार से नाराज़ रफ़त उसे पुरानी बेड़ियों और दकियानूसी तौर-तरीकों को काट फेंकने को कहता है। वह कहता है- 'मैं तुम को एक सिसकती, बेकस औरत के रूप में नहीं देखना चाहता हूँ, बल्कि एक मज़बूत इरादों की तरक्कीयाफ़्ता औरत के रूप में फलता-फूलता देखना चाहता हूँ। यही मेरी ज़िंदगी की सबसे बड़ी तमन्ना है।' रफत के इन क्रांतिकारी विचारों के पीछे बड़े आदमी बनने की इसकी महत्त्वाकांक्षा साफ झलकती दिखाई देती है।

इसके पश्चात् रफ़त पीऍच. डी की उपाधि प्राप्त करने के लिए अमेरिका चला जाता है। वहाँ वह वैलरी नामक अंग्रेज़ी युवती के घर लिविंग टुगेदर जैसी ज़िंदगी गुज़ारने लगता है। लौटने के पश्चात वह फिर से महरुख के साथ ज़िंदगी जीने की कोशिश करता है, पर महरुख साफ इनकार कर देती है। कुछ समय बाद रफ़त बनारस की सुरैया से शादी कर लेता है। पहले एक कॉलेज में लेक्चरर, फिर यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर और उसके बाद यू.जी.सी. के चेयरमैन बनने की महत्त्वाकांक्षा उसे बेचैन कर देती है। इस प्रकार रफ़त एक मौकापरस्त इंसान है जो बड़े लोगों के साथ उठना-बैठना पसंद करता है

लछमिनिया महरुख के घर का काम-काज करनेवाली संवेदनशील और मिलनसार स्वभाव की ग्रामीण औरत है। उसके पति का नाम रामू है, बेटी का नाम सुखिया है तथा लखिया और चंदन उसके बेटे हैं। सलमानभाई, गुलचमन, गणपतकाका, रामदीन, किशोरीलाल, नत्थू धोबी, माँगी, बिंदु, काशी, जुम्मन नाई आदि ग्रामीण पात्र हैं। डॉ. विमला शहर में रहनेवाली डॉक्टर है जो सरल स्वभाव की सेवाभावी और नेकदिल औरत है।

महरुख के अब्बू का नाम अमजद मियाँ और अम्मी का नाम खालिदा है। शाहिदा महरुख की ख़ाला है। महरुख के भाई-बहनों के नाम हैं रेशमा, सनोवर, गुलनार, शहनाज, अब्बास, हैदर।

संवाद: पात्रों के आपसी वार्तालाप को संवाद कहते हैं। संवादों से कथा तो आगे बढ़ती ही है, साथ ही पात्रों की मन:स्थिति और अंतर्जगत् का उद्घाटन भी हो जाता है। इनके कारण कथा में जीवंतता और रोचकता आ जाती है। आलोच्य उपन्यास के संवाद छोटे-छोटे, मार्मिक, अर्थसभर और पात्रानुकूल हैं।

देशकाल और वातावरण: कथाकार किसी प्रदेश-विशेष से, किसी एक समय के, किसी एक समाज के जीवन से कथा का आधार ग्रहण करता है। कथाकार को इसी कथावृत्त के अनुरूप वातावरण की सृष्टि करनी पड़ती है। उपन्यास की कथा का आरंभ ऐसे तो महरुख के जन्म से होता है, जो स्मृतियों पर आधारित है। हमारे भारत देश के बँटवारे के समय महरुख कोई चौदह साल की होगी। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास के कथावृत्त के कुछ अंश बँटवारे के पहले के समय के हैं और ज़्यादातर आज़ादी के बाद के। इस उपन्यास की कथा तीन स्थानों से जुड़ी हुई है- एक तो महरुख के परिवार की बस्ती, दूसरा दिल्ली महानगर (विश्वविद्यालय) और तीसरा महरुख जिस गाँव के स्कूल में नौकरी करती है। इन तीनों स्थान- विशेष के अनुरूप वातावरण की सृष्टि लेखिका ने अच्छे ढंग से की है। नायिका महरूख के मुस्लिम परिवार के रीति-रिवाज, दकियानूसी खयालात, रहन-सहन, खान-पान, ईद-मोहर्रम जैसे त्यौहार, इंतकाल के बाद की रस्में आदि का सजीव और साहजिक चित्रण करने में लेखिका सफल सिद्ध हुई है। नायिका एम.ए. और पीऍच.डी करने के लिए दिल्ली जाती है, तो वहाँ के महानगरीय वातावरण तथा यूनिवर्सिटी के छात्र- छात्रों के व्यवहार- वर्तन और आधुनिक परिवेश की अच्छाइयों-बुराइयों का सही मायने में वास्तविक चित्रण हुआ है। रफत के द्वारा किए गए विश्वासघात से आहत महरुख पीएच.डी. का संशोधन कार्य अधूरा छोड़कर एक गाँव के स्कूल में शिक्षिका बन जाती है। लेखिका ने इस स्कूल के वातावरण और सहकर्मचारियों के वर्तन-व्यवहार तथा ग्रामीण पात्रों, उनकी दिनचर्या और जीवन की अनेकविध गतिविधियों दु:ख-दर्द, तीज-त्यौहार पुत्र-जन्म प्रसंग का नाच-गान आदि का बहुआयामी चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कथा के समय और स्थान-प्रदेश के अनुरूप परिवेश की सृष्टि करने में लेखिका कारगर सिद्ध हुई है।

भाषा-शैली: मनुष्य अपने भावों और विचारों को भाषा के माध्यम से सशक्त ढंग से अभिव्यक्त कर पाता है। अत: भाषा के अभाव में साहित्य की रचना संभव नहीं है। उपन्यास की भाषा सरल, साहजिक और प्रवाहमयी होनी चाहिए। साथ ही संवादों की भाषा पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए। ठीकरे की मंगनी उपन्यास की भाषा परिवेश के अनुरूप अपने रंग बदलती नज़र आती है। जहाँ मुस्लिम परिवार की घटनाओं का जिक्र है, वहाँ उर्दू के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। आलोच्य के उपन्यास की भाषा मुहावरेदार है। इसमें प्रचलित कहावतों का भी साहजिक प्रयोग हुआ है।

उद्‌देश्य : साहित्य का सृजन उद्‌देश्यपूर्ण ही होता है। जो साहित्य सोद्‌देश्य होता है वही शाश्वत और चिरंजीवी होता है। ठीकरे की मंगनी उपन्यास के सृजन में नासिरा शर्मा के भी कुछ उद्‌देश्य निहित है। इसमें विशेषत: समाज में स्त्री के साथ होने वाले अन्याय, मुस्लिम समाज के रीति- रिवाज, रस्में, रूढ़िग्रस्त ख़यालात, लड़कियों की पढ़ाई में संकोच, समाज में अविवाहित और अकेली रहनेवाली युवती के साथ पुरुषों की कामलोलुप दृष्टि और अभद्र व्यवहार तथा उन सबके बीच एक दृढ़ निश्चय युवती का थरथराते सत्य के पथ पर चलना आदि को साहित्य के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति देना लेखिका का मूल उद्‌देश्य है। मुस्लिम समाज की रूढ़िवादी मानसिकता के बीच एक युवती का उच्च शिक्षा प्राप्त करना, नौकरी करना और अविवाहित तथा अकेली रहना काफी संघर्षपूर्ण और साहस का कार्य है। जिसे महरूख जैसी लड़की के माध्यम से समाज के बीच लाना तथा दूसरी अनेक महरूखों का पथ प्रशस्त करना इस उपन्यास की सार्थकता है। इस उपन्यास का शीर्षक ठीकरे की मंगनी मुस्लिम समाज में प्रचलित टोटके की रस्म को उजागर करता है।

000

(शोध आलेख)

बौद्ध कालीन साहित्य और समाज में नारी जीवन की विवेचना

शोध लेखक : डॉ. पवन राजपुरोहित

बौद्ध धर्म को मानव जीवन का मुक्ति मार्ग मान लेना चाहिए। मानव के कल्याण तथा उसके ऊपर लगाये गए बन्धनों को सर्वप्रथम बुद्ध ने ही तोड़ा। बौद्ध धर्म ही नारी मुक्ति की अवधारणा को तटस्थ करता है। विश्व में पहली बार बुद्ध और बौद्ध धर्म नारी को पुरुष के बराबर माना। उनकी दृष्टि में सब जीव बराबर है। बौद्ध कालीन समाज में आदर्श सतीत्व प्रतिष्ठा को प्राप्त थी। उस समय व्यभिचारिणी नारी को अच्छा नहीं माना जाता था, परन्तु वेश्याएँ स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती थी। नारियाँ पतिव्रता को ही श्रेष्ठ मानती थीं। जातक कथाओं से यह बात सिद्ध होती है कि नारियों पर अत्याचार कम होते थे और समाज में मौन अराजकता नहीं थी। उस समय यदि कोई स्त्री किसी कारण वश पति का त्याग करती थी तो वह उसके बारे में अहित नहीं करती थी।

श्रावस्ती के भूमिपति पर डाकूओं ने हमला किया। भूमिपति की पत्नी पर डाकू सरदार आसक्त हो गया, जब वह डाकू भूमिपति को मारने लगा तब उसकी पत्नी ने डाकू से कहा कि यदि तुम मेरे पति को मारोगे तो मैं ज़हर खा कर अपनी जान दे दूँगी तथा किसी भी हालत मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी। इसी प्रकार बौद्ध भिक्षुणी या साध्वी नारी अपने पति को त्याग कर अन्य पर पुरुष का ध्यान या उसके संरक्षक को स्वीकार नहीं करती थी। जातक कथा के अनुसार एक यक्ष जब एक साध्वी से यह कहता है कि या तो तू मेरी इच्छा पूर्ण कर अथवा मृत्यु को स्वीकार कर, तब वह साध्वी जो एक पत्नी थी, मृत्यु का वरण कर लेती है। (देव्या यथा ततमिंद् जगदात्म्य शक्त्या - जगज्जननी की स्तुति)। समाज में कई ऐसे भी कामी पुरुष थे जो वधुओं को धन का लालच देते थे और उनसे अपनी काम पूर्ति करना चाहते थे, तब वधू उन कामियों को धिक्कारते हुए यह कहती है कि वह तो मेरे पति की चरण-धूलि के बराबर भी नहीं है। (जातक-546)। परिव्राजक जब काम मोहित हुआ और राजपत्नी 'मृदुलक्षणा' पर अत्याचार करना शुरू किया तब मृदुलक्षणा ने परिव्राजक से शौच स्थान साफ करवाया फिर उसे लज्जित और अपमानित कर अपने सतीत्व की रक्षा की। (जातक-55)। जातक कथाओं में नारी के सतीत्व रूप को वर्णित किया गया है। पति को जब सभी साथी छोड़कर चले जाते हैं तब संकट काल में उसकी पत्नी ही साथ देती है। पत्नी के बारे में यह विचार किया जाता है कि धरती के चारों कोनों पर उसे पति से प्रिय कोई व्यक्ति नहीं मिल सकता। इसलिए वह पति का पूर्ण साथ देती है। (जातक-267)

बौद्ध कालीन समाज में स्त्रियों की दशा में अभूतपूर्व सुधार हुआ। पहले उन्हें धार्मिक जीवन

डॉ. पवन राजपुरोहित
पत्नी श्री भारत सिंह
वाणिज्य कर विभाग नागौर, राजस्थान
पिन 341001

की स्वतन्त्रता तो प्राप्त थी परन्तु किसी संघ या संगठन में प्रवेश का वर्णन नहीं मिलता। पहली बार बौद्ध धर्म संघ में स्त्रियों को प्रवेश दिया गया। अब स्त्रियाँ इतनी स्वतंत्र हो गई कि वह धर्म के प्रचार हेतु संघ मित्र की तरह सब जगह जाने लगी। देखा जाए तो अब स्त्रियों को शिक्षा, विवाह, धर्म के क्षेत्र में अभूतपूर्व आज़ादी प्राप्त हुई। बौद्ध धर्म-स्त्रियों के धर्म और अधिकारों के लिए आनन्द ने बहुत बड़ी पैरवी की थी। धम्म में स्त्रियों के स्थान और हक-अधिकार के बारे में आचार्य नरेन्द्र देव लिखते हैं - 'आनन्द बुद्ध को बहुत प्रिय थे। आनन्द के आग्रह पर ही बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति दी थी। भगवान् की बहन महा प्रजापति गौतमी ने, जिन्होंने महामाया की मृत्यु के पश्चात् भगवान् का पालन-पोषण किया था, भिक्षुणी होने की इच्छा प्रकट की। भगवान् ने निषेद किया। आनन्द ने गौतमी का पक्ष लेकर भगवान् से तर्क किया और कहा कि क्या स्त्रियों को निर्वाण का अधिकार नहीं है। भगवान् को स्वीकार करना पड़ा कि है। तब आनन्द ने कहा कि क्या भगवान् की विमाता ही, जिन्होंने भगवान् का लालन-पालन किया, इस उच्चपद से वंचित रह जाएगी। इस तर्क के आगे भगवान् अवाक् हो गए और उन्हें अनिच्छा से इसकी अनुमति देनी पड़ी। इस कारण आनन्द शिक्षुणियों में बड़े प्रिय थे। भिक्षुणियाँ उनका सदा पक्ष लिया करती थी और यदि उनको कुछ कहता था, तो वे उनकी ओर से लड़ती थी। आनन्द सुवक्ता थे और लोगों को दुखी देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था। वे सरल हृदय और निस्वार्थ थे। शारि पुत्र से इनकी विशेष मित्रता थी। इसी में आगे आचार्य लिखते हैं - हम देख चुके हैं कि आनन्द स्त्रियों के अधिकार के लिए लड़े थे। एक बार उन्होंने बुद्ध से पूछा था कि स्त्रियाँ परिषदों की सदस्या क्यों नहीं होती, व्यापार क्यों नही करतीं?' डॉ. वल्लभदास तिवारी के मतानुसार - 'स्त्रियाँ राज्य में प्रमुख स्थान रखती थीं। आम्रपाली, पुष्प दासी, कोवरिका आदि नगरों में सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी।'

बौद्ध कालीन समाज में स्त्रियाँ दो विवाह भी कर सकती थीं, थेरी गाथा टीका के अनुसार इद्धि दासी के दो विवाह हुए थे। यहाँ व्यभिचार होने के भी प्रमाण मिलते हैं। इसी व्यभिचार के कारण जातक कथाओं में स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा गया है। कण्डिन 'जातक के अनुसार - धिक्त्थुनं जनपदं यत्थिथी परिनायिका ते चापि धिक्किता सत्ता ये इत्थनिं वसंगता। (सं 18)। उदारणार्थ एक मूर्ख हरिण ने हरिणी पर आसक्ति रखने के कारण अपने प्राण गँवाये। इससे बोधिसत्व ने निष्कर्ष निकला कि उस जनपद को धिक्कार है जिसका संचालन स्त्रियाँ करती है। अनभिरत जातक में उल्लेख हुआ है कि गुरु ने अपने शिष्य को उपदेश दिया कि नारियाँ लोक में नदी, मार्ग, बाज़ार, सभा और मदिरालय की भाँति सबके लिए होती है। यह शिष्य अपनी भार्या के दोष से दुखी था। (अनभिरत जातक सं. - 65) एक कथा के अनुसार ब्रह्मदत्त की पत्नी एक आमात्य से वर्जित संबंध रखती थी, तब बोधिसत्व ने राजा को समझाते हुए कहा कि नारी सर्वगामी होती है, इसलिए वह क्षम्य है। (अनभिरत जातक संख्या-198) उच्छंग जातक के अनुसार - एक नारी के पति, पुत्र तथा भाई को बन्दी बनाया गया। राजा ने कहा कि इनमें से हम एक को छोड़ देंगे, उस नारी ने कहा कि मेरे भाई को छोड़ दीजिये क्योंकि भाई कहीं प्राप्त नहीं हो सकता अत: इसे ही छोड़िये। (उच्छंग जातक संख्या-67)। इन जातकों से यह अर्थ निकालता है कि बौद्ध कालीन समाज में नारी सामान्य उपभोग की वस्तु थी, ग़लत बात है। कुछ कथाओं के अध्ययन मात्र से नारी जीवन को कलकिंत करना ग़लत है। यहाँ केवल नारी की मजबूरी को भी हमें ध्यान में रखते हुए अर्थ - विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। कई जातकों के अनुसार नारी के सतीत्व को भी महिमा मण्डित किया गया है। जय प्रभा ने अपने सतीत्व-पतिव्रत्य धर्म की पूर्ण रक्षा की थी।

बौद्ध कालीन समाज और साहित्य में माता-पिता को देवता के समान बताया गया है। फास-बोल जातक के अनुसार - ब्रह्म हि मात पितरो' (5/331) और पुब्ब देवता नाम माता पितरो (6/334) अर्थात् माता-पिता ब्रह्मा तथा श्रेष्ठ देवता है। बुद्धचर्या में माता-पिता को पूजार्हं कहा गया है। इस प्रकार तत्कालीन बौद्ध समाज में माता को पिता के समान ही श्रेष्ठ माना गया है। समाज पितृ सतात्मक होते हुए भी हुए भी माता (नारी) को एक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

बौद्ध कालीन समाज मे नारी के द्वारा नारी का सम्मान और अपमान किये जाने का भी विवेचन हुआ है। ऐसे अनेक उदाहरण सामने आते हैं जिसमें बहू के द्वारा सास का सम्मान किया गया है। अयुत्तर निकाय की अट्टकथा के अनुसार - धनंजय सेठ अपनी पुत्री विशाखा को सुसराल में पालनीय दस उपदेश देता है। (1/7/2)। थेरी गाथा में ऋषि दासी नाम की थेरी कहती है कि पितृ - कुल में प्राप्त की गई शिक्षा के अनुसार मैं सुबह-शाम सास-ससुर की पद वंदना करती थी और उनकी चरण-धूलि अपने सिर पर लेती थी। थेरी गाथा के मुताबिक जब विशाखा और उसके ससुर में विवाद हो जाता है तब पंचों के द्वारा उसका फैसला किया जाता है। ससुर विशाखा को निर्दोष मानता है और उससे क्षमा याचना करता है। यहाँ पिता तुल्य ससुर के द्वारा अपनी बहू से क्षमा माँगना अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है। यह कथा समाज में नारी के सम्मान और उसके जीवन के महत्त्व पर पूर्ण प्रकाश डालती है।

सास-बहू को लेकर बौद्ध साहित्य ने तत्कालीन समाज का चित्रण किया है। इसमें नारी के द्वारा नारी पर किये गए अत्याचारों का वर्णन भी मिलता है। यहाँ बहू के द्वारा सास का अपमान करना और सास के द्वारा बहू पर अत्याचार का मिश्रित विवेचन हमें प्राप्त होता है। सासुओं के अत्याचार कभी-कभी इतने बढ़ जाते थे कि बहू उनसे छुटकारा पाने के लिए बौद्ध मठों में शरण ले लेती थी वह बौद्ध धर्म स्वीकार कर भिक्षुणी बन जाती थी। कभी-कभी सासुओं ने बहुओं को मूसलों से इतना पीटा कि वे मर ही गईं। इसके अलावा बहू भी अपने सास-ससुर पर अत्याचार करती थी। एक बार चार बहुएँ जब ससुर के अत्याचारों से तंग आ गई तो उन्होंने अपने सुसर को घर से निकाल दिया। (अठकथा-324)। एक अन्य

कथा के अनुसार बहुओं के अत्याचार से दुखी होकर सोण नामक स्त्री भिक्षुणी हो गई थी। (थेरी गाथा सं. 45 की अट्ठकथा)। एक बहू अपनी सासू को मारने की कोशिश करती है, परन्तु दुर्भाग्य से वह बहू तथा उसकी माता दोनों ही मर जाती है। (जातक संख्या - 324)। बौद्ध युगीन समाज में नारी जीवन के दोनों रूप सास और बहू का यथार्थ स्वरूप हमें प्राप्त होता है। यहाँ भी यह बात साबित होती है कि नारी हमेशा से ही नारी की दुश्मन बनी रहती है। परिवार में रहते हुए नारी किसी न किसी विवाद का हिस्सा हो जाती है तथा उस विवाद को मिटाने के लिए या फिर सही न्याय के लिए कई बार उसके प्राण भी चले जाते हैं।

बौद्ध कालीन समाज में प्रेम विवाह का उल्लेख भी मिलता है। लड़की जब जवान हो जाती थी तब उसका विवाह होता था। इसके अलावा 'कन्याएँ' अविवाहित भी रहती थीं। विशाखा और कुण्डकेशा नामक कन्याएँ आजीवन अविवाहित ही रहीं। बौद्ध समाज में बहुविवाह-प्रथा मिलता है। अजात शत्रु की अनेक पत्नियाँ थी। तलाक़ (संबंध विच्छेद) का नियम भी बना हुआ था। राजश्री, सुजाता, ध्रुव स्वामिनी, आम्रपाली, महाश्वेता, कादम्बिनी का चरित्र नारी के उदात्त भावों की स्थापना करने में अपना अहम योगदान देता है। बुद्ध के अनुसार स्त्री भी पुरुष के अनुसार ही पूर्व जन्म के कर्मों का फल प्राप्त करती है। बुद्ध का यह भी मानना था कि स्त्रियों के मुख्य कार्य घर ही है। वे आरम्भ में नारी को संघ में स्थान नहीं देते हैं परन्तु बाद में आनन्द आदि के कारण नारी को बौद्ध धर्म में स्थान दिया। अश्व घोष ने नारियों को भोग विलास की वस्तु मानकर उन्हें आध्यात्मिक उन्नति में बाधक ठहराया है।

बुद्ध की नारी के प्रति नवीन अवधारणा यह थी कि उन्होंने हर जाति धर्म-आदि की नारियों के लिए संघ के द्वार खोल दिये। इसमें विधवा, विवाहित, अविवाहित आदि सभी प्रकार की नारियाँ यहाँ तक कि वेश्या और चाण्डाल नारियाँ भी धम्म को अंगीकार कर सकती थीं। शुरूआती दौर में संघ की स्थापना के पाँच वर्ष बाद नारी को धम्म में स्थान दिया गया था। नारी को जब धम्म में स्थान दिया तब उसके अविवाहित रहने की भी शर्त रखी गई। बौद्ध धर्म दर्शन में भिक्षुणियों को थेरी कहा गया है। थेरी का आशय- 'ज्ञान वृद्धा' से लिया जाता है। इन बौद्ध भिक्षुणियों के आत्मकथन थेरी-गाथा नाम से जाने जाते हैं। आज केवल 73 थेरी गाथाएँ ही उपलब्ध है। इन थेरी गाथाओं में नारियों की सामाजिक स्थिति का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। ये थेरियाँ समाज के सभी वर्गों से संबंधित होती थी। इन थेरियों में राजकुमारियाँ, वेश्या, कुमारियाँ, विधवाएँ, अस्पृश्याएँ, वृद्धाएँ आदि सभी प्रकार की नारियाँ शामिल होती थी। इन थेरियों की आयु में अन्तर होता था।

राजकन्या सुमेधा ने जीवन को क्षण भंगुर मानकर भिक्षुणी के जीवन को ग्रहण कर लिया था, वह चाहती तो वाराणसी की अधीश्वरी हो सकती थी। श्रेष्ठि-पुत्री इषि दासी ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था, वह तीन पतियों की परित्यक्त स्त्री थी। शुभा नामक भिक्षुणी को जीवक ने प्रति प्रतिरूद्ध कर उसके नेत्रों की प्रशंसा करते हुए काम-याचना की, जिस पर शुभा ने अपनी आँखें निकाल कर जीवक को दे दी थी। भट्ठकुण्डल केशा एक स्त्री अपने जुआरी, चोर, लम्पट पति की हत्या कर थेरी बन गई थी। पति-परित्यक्ता उत्पलवर्णा दैवीय विडम्बना के कारण अपनी ही पुत्री की सपत्नी बन गई थी, जब उत्पल वर्णा को इस बात का पता चला तो वह घोर ग्लानिवश थेरी बन गई थी। उब्बीरी की पुत्री की जब मृत्यु हो गई तो वह मृत्यु शोक से शांति प्राप्त करने के लिए थेरी बन गई थी। भगवान् बुद्ध ने लिच्छविराज की जगह वेश्या अम्बापाली का आतिथ्य स्वीकार किया था। वेश्या अम्बापाली ने अपनी सारी सम्पति संघ को भेंट कर थेरी का जीवन अपना लिया था। पद्मावती, अर्धकेशी और विमला ने भी वेश्यावृत्ति त्याग कर थेरी जीवन स्वीकार कर लिया था। राजघराने से संबंध रखने वाली बुद्ध की माता महाप्रजापती गौतमी और बहिन नन्दा, अल्वीनृत, कन्या सेला और लिच्छविवंशीय सिंहा और जयन्ती भी बौद्ध धर्म को अंगीकार कर भिक्षुणी हो गई थी।

बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति देने के बाद स्त्रियों को प्रव्रज्या का निर्देश, देने से पहले उन्होंने आठ शर्तों के पालन का निर्देश दिया, जिन्हें बौद्ध साहित्य में 'अट्ठगुरू' धम्म' कहा गया है। (चुल्लवग पृ. 374-375)। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अष्ट-गुरु धर्मों को प्रजापति गौतमी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। यह समाचार महात्मा बुद्ध को आनन्द से मिला, जब उन्होंने आनन्द से कहा था कि- 'आनन्द यदि तथागत प्रवेदित धर्म नियम में स्त्रियाँ प्रव्रज्या न पातीं तो यह धर्म चिरस्थायी होता, यह सहस्त्र वर्ष ठहरता। परन्तु आनन्द! स्त्रियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की, अत: ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नहीं रहेगा और यह सद्धर्म 500 वर्ष ही ठहरेगा। (चुल्लवग-पृ. 376-377)। धम्म में प्रवेश के बाद नारी की स्थिति में सुधार हुआ ही था। लोग समाज में उन्हें सम्मान देते थे। परन्तु कहीं-कहीं उनके अनादर करने और कलंकित करने का भी वर्णन हुआ है। भिक्षुओं को अपने जीवन इच्छाओं पर नियंत्रण रखना आवश्यक था। चुल्लवग के अनुसार- 'सामाजिक भ्रष्ट नारियाँ भिक्षुणी से गुप्त कार्य भी करवाती थी।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि बौद्ध धर्म में नारी को स्थान देने पर समाज में उसका सम्मान तो बढ़ा ही था। साथ ही जो सदियों की सतायी हुई नारी को जीने का बल भी मिला। बौद्ध कालीन समाज और साहित्य में नारी जीवन को सामाजिक प्रतिष्ठा मिली साथ ही वह धर्म में दीक्षित होकर पुंसवादी प्रवृत्ति को भी तोड़ने का श्रम किया। बौद्ध धर्म में प्रवेश कर नारी पुरुष के बराबर अपना हक जताने में कामयाब हो गई। परिवार में नारी जीवन पहले की भाँति ही गुज़रता रहा परन्तु अब वह अत्याचारी परिवार को त्याग कर धम्म को अंगीकार कर लेने में स्वतंत्र थी। पहले धम्म के न होने से वह समाज में निरन्तर पिसती रहती थी। इस प्रकार बौद्ध कालीन सामाजिक नारी के लिए पहली बार स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का युग साबित हुआ। इस युग ने नारी को समाज में प्रतिष्ठित कर निर्वाण का मार्ग प्रशस्त किया।

000

शोध आलेख

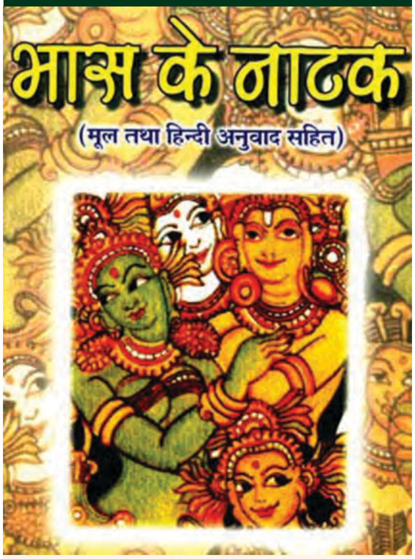

(शोध आलेख)

भास के नाटकों में संगीत

शोध लेखक : डॉ. रीटा एच. पारेख

संगीत मानवीय लय एवं तालबद्ध अभिव्यक्ति है। भारतीय संगीत अपनी मधुरता, लयबद्धता तथा विविधता के लिये जाना जाता है। वर्तमान भारतीय संगीत का जो रूप दृष्टिगत होता है, वह आधुनिक युग की प्रस्तुति नहीं है, बल्कि यह भारतीय इतिहास के प्रारंभ के साथ ही जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में ही भारतीय संगीत के बीज पड़े हैं। सामवेद की ऋचाएं हैं। संगीत वह ललित कला है, जिसमें स्वर और लय द्वारा हम अपने भावों को प्रगट करते हैं। ललित कलाओं में संगीत को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गायन, वादन व नृत्य तीनों के समावेश को संगीत कहते हैं, मगर कुछ लोग सिर्फ गायन को ही संगीत कहते हैं जो उचित नहीं है, भारतीय संगीत में गायन संगीत का एक अंग है जो वादन और नृत्य की अपेक्षा अधिक महत्व रखता है। गायन, वादन तथा नृत्य स्वर और लय पर आधारित है।

सामान्यत: मानव नैसर्गिक रूप से ही कलाप्रिय होता है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होने के कारण समाज का यह कलाप्रेम उसमें प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक है। नाटक 'दृश्य-काव्य' के रूप में साहित्य का भी एक अंग होने की वजह संगीत आदि कलाओं के साथ उसका संबंध बड़ा गहरा होता है। अपना काव्य अधिकाधिक वास्तव और चित्रदर्शी बनाने के लिये नाटककार को चाहिये कि वह अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा को निसर्ग और लोकव्यवहार के मार्मिक निरीक्षण से जोड़ दे और साथ ही साथ विविध शास्त्र और कलाओं का गहरा अध्ययन करे। कवियों का यह शास्त्रज्ञान और विविध कलाओं का ज्ञान प्रसंगवश उनकी काव्य-नाट्यकृतियों में प्रतिबिम्ब होता है और तत्कालीन समाज में उस कला ने कौन सा स्थान प्राप्त किया था तथा उस समय तक कला का कहाँ तक विकास हो चुका था, यह जानने में सहायक होता है।

संस्कृत नाटकों में संगीत का स्थान महत्वपूर्ण है तथा संगीत कला से उनका संबंध अत्यंत निकटवर्ती दिखाई देता है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के 32 वें अध्याय में बताया है कि संगीत ही नाट्य की 'शय्या' होने के कारण, नाट्यकार को नाटक में उत्तम संगीत ग्रथित करने का प्रयत्न सर्वप्रथम करना चाहिये। क्योंकि गीत या वाद्य की मधुर और सुयोग्य योजना करने पर नाटक के यश की कोई चिंता न रहे। गीते प्रयत्न: प्रथमस्तु कार्य: नाटयप्रयोगो न विपत्तिमेति, भास भी इस बात का महत्व जानते थे इसलिये उन्होंने अपने नाटकों में संगीत का उचित प्रयोग किया है।

वातावरण निर्मिति के लिये संगीत : नाटक न केवल किसी अभिरुचि संपन्न विद्वान के लिये होता है, किन्तु अबालवृद्ध तथा सभी श्रेणियों के दर्शकों के लिये होता है। अत: नाटक की सफलता की दृष्टि से उन्हें नाट्यानुकूल परिस्थिति में ले जाना आवश्यक होता है। मानसशास्त्र कि दृष्टि से उसके लिये संगीत जितनी प्रभावी चीज और दूसरी कोई नहीं है। ईष्ट्देवता या ब्राम्हण की स्तुति के लिये किए जानेवाले 'नान्दी-गायन' का यही उद्देश्य था। सभी संस्कृत नाटकों का आरंभ संगीतमय नान्दी गायन से होता था जिससे श्रोतावृंद को मानसिक शान्ति का अनुभव होता था। भास के नाटकों में 'नान्द्यन्ते तत: प्रविशति सूत्रधार:' यह सूचना दिखाई देती है फिर भी आरंभ में सूत्रधार द्वारा गाया जाने वाला मंगल श्लोक वही कार्य करता था।

डॉ. रीटा एच. पारेख
श्री और श्रीमती पी.के. कोटावाला आर्ट्स कॉलेज,
पाटन

इसी उद्‌देश्य से प्रस्तावना में भी संगीत का प्रयोग किया हुआ दिखाई देता है। प्राय: इस गायन का अधिकार सूत्रधार-पत्नी का याने नटी का था। जैसे कि सूत्रधार: आर्ये! गीयतां तावत् ननु गीयते। सूत्रधार: आर्ये, इमेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत्। नाटक जिस ऋतु में खेला जाता था, शायद उसी ऋतु का वर्णन नटी के गायन में रहता था, लेकिन नाटक के संविधान के साथ उसका खास संबंध होना ज़रूरी नहीं था। जैसे कि प्रतिमा नाटक के इस प्रसंग में नटी शरद ऋतु को उद्‌देश्य कर गायन करती है, लेकिन उस ऋतु का 'प्रतिमा' के संविधान के साथ ख़ास संबंध नहीं दिखाई देता।

संगीत का प्रयोग इस प्रकार केवल आरंभ में ही नहीं, किन्तु जहाँ-तहाँ सुयोग्य स्थानों पर किया जाता था। श्रोतावृंद उस संगीत का रसास्वाद लेता था क्योंकि समाज में संगीत कला को काफी लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी थी।

राजगृहों में संगीत : राजगृह का वातावरण संगीत से भरा रहता था। राजपुत्रों के लिये शास्त्रज्ञान के साथ- साथ कलाओं का अध्ययन भी आवश्यक था। इसलिये राजा-राजपुत्र न केवल संगीत-रसिक थे, किन्तु स्वयं गायन तथा वादन में भी कुशल थे। राजा उदयन का घोषवती वीणा वादन से हाथियों को मोहित करना प्रसिद्ध ही है।

राजा उदयन के संबंध में 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम' में आए अधोनिर्दिष्ट उद्‌गार राजा उदयन संगीतज्ञ थे, इस बात के निदर्शक है। जैसे : -वासवदत्ता के पिता महासेनने उदयन के लिये 'गांधर्ववित्तक:' इस विशेषण का प्रयोग किया है। 'गांधर्ववित्तक:' शब्द का अर्थ गांधर्व अर्थात संगीत जिसका धन है, जो संगीत विद्या में प्रवीण है।

-राजा - दर्पयत्येनं दायाध्यागतो गांधर्वो वेद:। परंपरा से प्राप्त संगीत विद्या के कारण उदयन अभिमानी हो गए हैं। राजा के ये उद्‌गार भी राजा उदयन का संगीताधिकार व्यक्त करते हैं।

केवल राजपुत्र ही नहीं, राजकन्याएँ भी संगीत की शिक्षा लेती थीं। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम' 'स्वप्नवासवदत्तम' में इसके लिये पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते है।

वासवदत्ता उत्तरा नामक वीणावादिनी से वीणावादन सीखने को गई थी। फिर भी उसकी माँ चाहती थीं कि उसको किसी अच्छे आचार्य के पास सिखाया जाये। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियाँ भी आचार्या थीं, लेकिन समाज में पुरुष आचार्य अधिक पसंद थे। विवाह योग्य कन्याएँ भी उनके पास संगीत की शिक्षा लेती थीं। वासवदत्ता को भी उदयन को वीणावादन के बहाने ही अर्पण की थी। अग्निसाक्षिकं वीणात्यपदेशेन दत्ता। ६ स्त्रियाँ कभी-कभी अपने पति के पास भी संगीत सीखती थीं। वासवदत्ता विवाह के बाद भी उदयन के पास वीणावादन सीखती होगी। पद्‌मावती ने भी अपने पति उदयन से वीणा सीखने की ईच्छा व्यक्त की थी।७ इस बात से भी इसी बात को पुष्टि प्राप्त होती है।

संगीत शालाएं : राजगृहों में स्वतंत्र संगीतशालाओं की योजना की जाती थी। जैसे – 'प्रतिमा नाटक' में रामचंद्र के राज्याभिषेक के अवसर पर प्रतिहारी कहती हैं : "सारसिके ! सारसिके ! संगीतशालां गत्वा नाटकीयानां विज्ञापय- कालसंवादिना नाटकेन् सज्जा भवतेति।"

राजगृहों में होने वाली ये संगीतशालाएँ, नाट्यशालाएँ और नृत्यशालाएँ भी थीं। वहाँ प्रसंगानुरूप नाटकों के प्रयोग किए जाते थे। इसी संगीतशाला में नृत्य-गायन के प्रयोग भी किये जाते थे, संगीत की शिक्षा भी वहीं दी जाती थी और उसी में संगीत का रियाझ भी चलता था।

संगीत का रियाज़- सभी संगीत प्रकारों में प्रावीण्य संपादन करने के लिये रियाझ की सख्त ज़रूरत है, यह बात उस समय में भी सर्वमान्य थी। वीणावादन के रियाज़ को 'वीणायोग्या' की संज्ञा दी हुई है। ' देवी– केनापि किलेद्धनेन कंचनमालां वीणायोग्यं कुर्वंती प्रेक्षा शिक्षितुकामासीत्। वीणावादन के लिये काफी रियाज़ की ज़रूरत थी। अपनी सखी कांचनमाला को वीणावादन का अभ्यास करती हुई देखकर ही वासवदत्ता को वीणा सीखने की इच्छा होती है।

संगीत की महफ़िलें- अधिकतर संस्कृत नाटक प्राय: राजसभा से संबद्ध होने से हमें ख़ास कर वहीं की प्रचलित स्थिति के दर्शन होते हैं। राजसभा में तो गायन-वादन तथा नृत्य के प्रयोग किए ही जाते थे, लेकिन भास के 'चारुदत्तम' प्रकरण से प्रतीत होता है कि सामान्य जनता में भी संगीत विषयक अभिरुचि काफी थी।

'चारुदत्तम' नाटक से संगीत की प्रत्यक्ष महफ़िलों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है। 'चारुदत्तम' में संगीत महफ़िल से लौटते समय नायक अपने दोस्त से कहते हैं- 'सखे ! उपारुढोडर्धरात्र : स्थिरतिमिरा राजमार्गा :'।

यानी चारुदत्त और मैत्रेय जब महफिल से लौटे, तो आधी रात बीत चुकी थी। राजमार्ग पूरा अंधकारमय हो गया था। इससे पता चलता है कि वर्तमान काल जैसी उस समय भी संगीत की महफ़िलें मध्यरात्रि बीत जाने तक चलती थीं। महफिल में केवल पुरुष ही नहीं, बल्कि स्त्रियाँ भी गाती थीं। क्योंकि रेभिल का गाना इतना मधुर था कि उसकी प्रशंसा करते हुए आर्य चारुदत्त कहते है- 'भित्यन्तरं यदि भवेद् युवतीति विध्याम्। नायक : सर्वथा सुव्यक्तं गीतम्। कुत: सक्तं च तारमधुरं च समं स्फुटं च ....यदि भवेद् युवतीति विद्याम्। अर्थात् वीणा के स्वरों में एकरूप, भावपूर्ण, मधुर, कौशलपूर्ण, तार स्वरों के परिणाम से युक्त और अकारण बहुत अभिनय किए बिना किया हुआ गायन अच्छा समझा जाता है।

निष्कर्ष यह है कि भास के समय संगीत और वाध्यसंगीत संगीत के इन दोनों प्रकारों का काफी विकास हो गया था। राजगृहों में तथा सामान्य समाज में भी संगीत बहुत लोकप्रिय था। चारों प्रकार के वाद्य प्रचलित थे फिर भी वीणा वादन विशेष रूप से लोकप्रिय था। वीणा नाखूनों से और 'कोण' से बजाई जाती थी। संगीत विषयक समीक्षाशास्त्र का भी विकास हुआ था। नाटकों में व्यक्त किये गये गायन-वादन संबंधी विचारों में ख़ास करके 'नारदीय शिक्षा' का आधार दिखाई देता है।

000

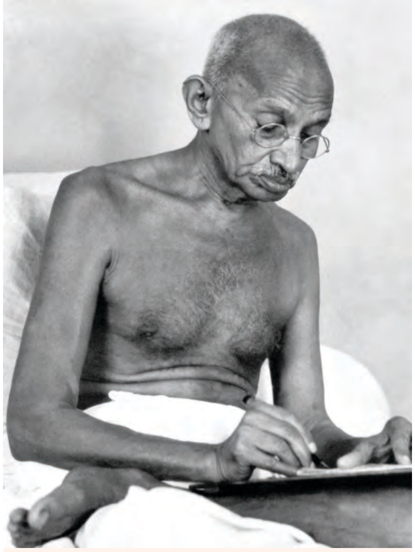

(शोध आलेख)

मानवीय मूल्यों के उद्घोषक : महात्मा गाँधी

शोध लेखक : डॉ. शीतल ए. अग्रवाल

सत्य के सत्यार्थ का साक्षात्कार गाँधी को ही हुआ समग्र स्वरूप में, तभी उन्हें 'ईश्वर सत्य है' की जगह 'सत्य ही ईश्वर है' का सर्वांग बोध हो गया। सत्य का 'स्व' दर्शित होने लगा। इस नैतिक अनुभूति ही उन्हें दार्शनिक ही नहीं, व्यावहारिक दार्शनिक बना दिया। सर्वत्र सत्य की छाया आच्छादित होने लगी, गाँधी का दृष्टि-बोध 'सत्य-स्वरूप-दृष्टिगोचर' हो गया। गाँधी शब्दों के स्वामी थे ! शब्द स्वरूप की कोई भी विधा क्यों न हो? अक्षरों के ताने-बाने से बुने स्वर लहरीवाले शब्द ही गाँधी के कर्ष-कुडेरों के हेतु अभिनंदित होते थे। 'सत्याग्रह' संधीन में न जाने कितने समय की परिधि घूम गई थी, तब जाकर यह शब्द प्रतिश्रुत हुआ। सोचिए, सत्य के लिए आग्रह ! सत्य जो स्वयं में निरापद हैं, उसके लिए इस संसार में आग्रह वैदिक वाङ्मय का यह आप्तसूत्र हैं 'सत्यमेव जयते' अहिंसक प्रतिरोध की प्रविधि के रूप में अश्वशक्ति का संचार हैं, जिसने दुनिया को एक नई शब्द-शक्ति दिया अभिधा के रूप में, व्यंजना के रूप में, लक्षणा के रूप में ! इन त्रयशक्तियों के समाहार स्वरूप सत्याग्रह ने सफलता का सूत्र दिया भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को !

गाँधी ने अंगीकार किया है "सत्य की खोज में ही अहिंसा का साधन मुझे प्राप्त हुआ है।" यदि मेरा कोई सिद्धांत कहा जाए तो वह इतना ही है और मैंने जो कुछ किया है, वही सत्य की अहिंसा की सबसे बड़ी टीका है। "सत्य के संधान में सत्याग्रह मिला, अहिंसा से उसकी प्रतिपूर्ति हुई। अहिंसा हिंसा से परे 'अहिंसा' अपने प्रत्यय बोध में नकारात्मक अर्थ (हिंसा नहीं करना) लेते हुए सकारात्मक तत्वबोध से विभूषित है। जिसे जैनों और बौद्धों ने अपनाया तो ज़रूर लेकिन गाँधी ने उसे समाज बोध की सामाजिकी में पिरो दिया और यह गाँधी की वाग्मिता शक्ति का पर्याय बन गई। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इस अहिंसा शब्द का शब्दार्थ समझा, गाँधी इसका वागर्थ समझ चुके थे, तभी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी काव्य भाषा में इसे बोधित किया ऐसे 'शब्द' ने अनोखे आंदोलन को रूप दिया, परिपुष्ट किया और सफलता तक पहुँचाया। ऐसे 'शब्द' जिन्होंने संख्यातीत व्यक्तियों को प्रेरणा दी और प्रकाश दिखाया, ऐसे 'शब्द' जिन्होंने उन सांस्कृतिक मूल्यों पर जोर दिया, जो आध्यात्मिक तथा सनातन है समय और स्थान की परिधि के परे है और संपूर्ण मानवजाति तथा सब युगों की सम्पति हैं।

निज के नियमन पर ही सत्ता की शुचिता है। स्व की शुचिता है, निजगृह की शुचिता है। स्वराज की शुचिता में स्वशासन का सत्यबोध है, जो हिन्द को स्व के बोध से शासित करना चाहता है, तभी 'हिंद स्वराज' का वागर्थ स्पष्ट होगा। यहाँ यह भी कहना समीचीन होगा कि इंडियन होम रूल का दर्शन-चिंतन समझे बिना 'हिन्द स्वराज' के अंतर्गत अर्थ 'हिंन्द स्वराज' हो जाएगा और अधिक सुधी पाठक 'हिन्द स्वराज' शिकार होकर 'हिन्द स्वराज' को आज तक नहीं समझ पाए। स्वतंत्रता मिली 'हिन्द स्वराज' मिल गया, किन्तु 'हिन्द स्वराज' ओझल गया।

'कुदरती उपचार', 'आरोग्य की कुँजी' शीर्षक उनकी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ अपने विषयानुकूल वागर्थ से भरी हैं। जिनकी व्यवहारिक उपयोग समाजोपयोगी स्वराज-समाज-रचना के हेतु है। यहाँ शब्दों का संगम देखने योग्य है, 'कुदरती उपचार' यहाँ दो शब्द दो भाषा के

डॉ.शीतल ए. अग्रवाल
इतिहास विभाग,
आर्ट्स कोलेज, पाटन
(उत्तर गुजरात)

भावांतक सेतु बनकर शब्द सौंदर्य को पूरित करते हैं,। 'आरोग्य की कुँजी' तत्सम् के साथ तद्भव 'लोक शब्द' का संगमन शब्द सौंदर्य को बहुत आकर्षक करता है।

'वाड्मय' का एक अर्थ होता है वचन संबंधी। यानी जब गाँधी के सम्पूर्ण को समेटता हुआ जो न संपूर्ण गाँधी ग्रंथावली न संपूर्ण गाँधी रचनावली शीर्षक अभिहित हुआ, बल्कि 'संपूर्ण गाँधी वाड्मय' शीर्षक अभिहित हुआ। ध्यान देने की बात है कि 'गाँधी की जितनी भी रचनात्मकता है लगभग सभी वाचिक रचना है, अर्थात वाक्-व्यवहार के संदर्भ में भाषण हो बातचीत हो, पत्र-व्यवहार हो, विचार पत्र हो या कार्य निर्धारण हेतु कार्यवाही हों, सबका सब समसामयिक विचार परंपरा का संवाहक। इसलिए 'गाँधी वाड्मय' शीर्षक सार्थक हुआ और उस संपूर्ण में वचन संबंधी वचन सूत्रता को ही सम्मिलित किया गया।

गाँधी 'जीवन की नैतिक कर्मशाला' हेतु जब 'सात सामाजिक पाप' की उद्घोषणा करते हैं, तो प्रस्तुत शीर्षक-बोध एक बार भी चिंतन के चित्त को विचलित कर देता है। यह विचलन ही 'सात सामाजिक पाप' की दर्शना से परिचित कराता है, यथा कबीर की वाणी भी विचलन से अर्थित होती है, बहूत कुछ गाँधी के वाक्य भी ऐसे ही वचन बद्ध होते हैं– श्रमरचित, संपत्ति, चेतनहीन आनंद, चरित्रहीन ज्ञान, नैतिकताहीन व्यपार, मानवताहीन विज्ञान, सिद्धांतहीन राजनीति, त्यागरहित पूजा, ये सात सूत्र अपने ही शब्दों में शब्दित होकर सार्थक अर्थ-बोध कराते हैं- पाप के पलछिन से मुक्त पवित्र आस्था में बँधने को, जहाँ सु:ख है, शांति है और है भयमुक्त जीवन और इसके 'हेतु बंधन' में बँधने के लिए गाँधी निवेदन करते हैं- आप अपना दिवसारम्भ प्रार्थना के साथ कीजिए और उसमें अपना हृदय इतना उड़ेल दीजिए कि यह शाम तक आपके साथ रहे ! दिन का आरंभ प्रार्थना के साथ कीजिए जिससे आपको स्वप्नों और दु:स्वेदना से मुक्त शांतिपूर्ण रात्रि नसीब हो, प्रार्थना के स्वरूप की चिंता न कीजिए। स्वरूप कुछ भी हो, वह ऐसा होना चाहिए जिससे हमारी भगवान के साथ लौ जल जाए इतनी ही बात है कि प्रार्थना का रूप चाहे जो हो जिस समय आपके मुँह से प्रार्थना के शब्द निकलें, उस समय मन इधर-उधर न भटके। प्रार्थना एक प्रकार का आवश्यक आध्यात्मिक अनुशासन है।

गाँधी के जीवन के प्रार्थना का विशिष्ट स्थान था, वे प्रार्थना के बिना रह नहीं सकते थे, इस अर्थ संदर्भ में वे आध्यात्मिक अनुभूति के व्यक्ति थे। प्रार्थना की लौ उनके जीवन में दोनों पहर लगती थीं। यथा कवि केदारनाथ सिंह मिश्र 'प्रभात' की प्रार्थना की पंक्तिया गाँधी जीवन को आलोकित करती हैं - "रश्मियाँ आती उषा की, भेट देने प्यार की; साँझ की किरणें सजाती आरती मनुहार की"

यानी सुबह की प्रार्थना की शाम की आरती दोनों ही जीवन में अनुषंगी हैं, अस्तु जीवन हेतु गाँधी की प्रार्थना दोनों पहर की खुराक थी। उनकी प्रार्थना सभा 'सर्वधर्म समभाव' के समंवयवादी मूल्य की पोषिता है, जिसमें एकात्म मूल्य की भवधारा का प्रवाह मनुष्यता का सिंचन करती हैं, समन्वय ही संस्कृति की भारतीय परंपरा को पल्लवित करती हैं।

गाँधी साहित्यकार नहीं थे, किन्तु साहित्यकारों के साहित्य-शोधक थे। साहित्य विचार उनकी चिंता में प्रचारित होते रहते थे, तभी तो उनके समय काल के बहुत्तेरे साहित्यकार अपनी रचनात्मकता पर उनसे विचार-विमर्श किया करते थे। साहित्य का एक युग गाँधी के विचार बोध का युग बन गया था। आज भी ऐसी वृत्तियाँ देखने को मिल जाती हैं तो लगता है कि वह व्यक्ति नहीं, युग बोध का कारक हैं। कई बार व्यक्ति अपने वचनों में, कथनों में काव्यमयी हो जाता है, ऐसे ही एक कवि उनकी काशी प्रवास के समय उनके कथन से काव्यमयी होकर गंगा की तरह प्रवाहित होती हैं। "अरुणोदय और सुर्योदय का दृश्य सब स्थानों पर भव्य होता है, किन्तु गंगाजी के तट पर तो यह द्रश्य मुझे नितान्त अद्भुत जान पड़ा। इस भव्य दृश्य को देखने के बाद सूर्य की उपासना, नदियों की महिमा के अर्थ को अधिकाधिक अच्छी तरह समझ सका। इस स्थान पर घूमते हुए मैंने अपने देश और अपने पुरखों के बारे में गर्व का अनुभव किया।"

सत्य का ये अद्भुत स्वरूप गाँधी की गवेषणा की ऊँचाई है, जो गाँधी के पहले किसी दार्शनिक का तात्विक विधान नहीं था। और यह की मनुष्य मात्र ईश्वर का प्रतिनिधि हैं तो ऐसी अवस्था में नैतिक कार्य ही संपादित होंगे, सत्य का पालन होगा, अहिंसा का व्यवहार होगा। मनुष्य यह समझ ले कि ईश्वर सबके अंदर ही नहीं, मनुष्य मात्र इश्वर का प्रतिनिधि है, गाँधी की रामराज्य की परिकल्पना साकार हो जाएगी। राम भी मात्र ईश्वर के ही प्रतिनिधि थे। जीवन का सहज स्वरूप ही ईश्वरोचित हैं, तभी सहज की कसौटी पर कसा हुआ मन भी सार्थक होगा और पलकों की भाँति जीवन का गतिमान भी गतिशील रहेगा। यहाँ गाँधी साहित्य का दर्शनतत्व से साक्षात्कार कराते हैं।

आस्था, सहिष्णुता और सहजता गाँधी के जन्मजात गुण हैं। इस नई मानवीय मूल्य-व्यवस्था से गाँधी परिपोषित थे, वरना मोरित्सबर्ग स्टेशन पर उतार दिए जाने पर वे भारत लौट आए होते और सत्याग्रह का जन्म न होता। ईश्वरीय आस्था के सम्पोषक गाँधी विचलन से विशेष प्राप्त कर स्थिर हो जाते थे, यह उनकी आस्था की सफलता होती। यहाँ आस्था की आग लग गई वहाँ इससे परे कुछ नहीं, क्योंकि

"आस्था तर्क से परे की चीज़ है। जब चारों ओर अँधेरा ही दिखाई पड़ता है और मनुष्य की बुद्धि काम करना बंद कर देती है, उस समय आस्था की ज्योति प्रखर रूप से चमकती है और हमारी मदद की जाती है। यथा- जब चारों तरफ अँधेरा हो, जीवन को मृत्यु ने घेरा हो। जब एक किरण भी आशा की आती ही नहीं नज़र।"

प्रार्थना जीवन की अद्भुत आस्था और अनुशासन है, प्रार्थना गाँधी के जीवन हेतु आस्था का प्राणतत्व हैं। गाँधी की यह आस्था की अनुभूति हर कालखंड में सफलीभूत हुई है एक दार्शनिक कर्मचेता के भाँति।

000

(शोध आलेख)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वेदकालीन न्यायिक महत्ता

शोध लेखक : डॉ. बी.बी. चौधरी

डॉ. बी बी चौधरी
संस्कृत विभाग
आर्ट्स कॉलेज, पाटन (उत्तर गुजरात)

वैदिक समाज में विविध प्रकार के अपराधों के लिए दण्ड व्यवस्था थी और साथ ही लोगों के परस्पर विवाद उपस्थित होने पर न्यायाधीश से न्याय प्राप्त करने की रीति प्रचलित रही। इस समय "न्यायालय के लिए 'सभा' शब्द का प्रयोग होता आ रहा है।" न्यायालय के लिए सामान्यत: 'सभा' और न्यायाधीशों के लिए "सभासद्' शब्द का प्रयोग मिलता है। गौतम धर्म सूत्रकार के अनुसार "यदि लोक व्यवहार की हानि होती है तो उसका दोष साक्षियों, सभासदों राजा और अपराधी सभी पर जाता है। जहाँ पर राजा द्वारा नियुक्त होकर ऋक यजु और सभा के ज्ञाता तीन ब्राह्मण बैठते हैं उसे आचार्य मनु ने 'सभा' कहा है।"

सर्वप्रथम गौतम धर्म सूत्रकार ने अभ्यर्थी को विनम्रतापूर्वक न्यायालय में न्यायाधीश के पास जाने का निर्देश किया है, "क्योंकि किसी भी मुकदमे का प्रारम्भ वादी, अर्थीया अभियोग्यता द्वारा प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करने पर होता था, जिसमें वर्ष, मास, पक्ष, दिन, मान, तिथि, जाति, पता आदि का सम्पूर्ण विवरण होता था, जिसे उस काल की न्यायिक भाषा में भाषा-वाद कहा जाता था। सर्वप्रथम न्यायाधीश प्रार्थना पत्र का मनोयोग पूर्वक निरीक्षण करता था और यदि वह अभियोग की श्रेणी में आता था तो उसे स्वीकार करता था और जो अभियोग की सीमा में नहीं आते थे उसे अस्वीकृत कर दिया जाता था।" इसके बाद न्यायाधीश या प्रतिवादी के सामने उसके कथन को लिखा जाता था, इसे 'प्रतिज्ञापत्र' कहते थे। इसके बाद प्रतिवादी या अभियुक्त प्रत्युत्तर देता था, उसे उत्तरपाद कहा जाता था। शुक्रनीतिसार में उल्लेख मिलता है कि जिस व्यक्ति घर मुकदमा दायर किया गया है, उसे मोहर लगे राजकीय पत्र द्वारा सेवक भेजकर न्यायालय में न्यायाधीश के सामने उपस्थित होने को कहा जाता है। इसके बाद साथी के साक्ष्य की प्रक्रिया आती थी, जिसे

'सिद्धिपाद' कहा जाता था। अन्त में न्यायाधीश के द्वारा दिए गये निर्णय को 'निर्णयपाद' कहा जाता था।

"वैदिक काल में राजा के अतिरिक्त सभा भी न्याय करती थी।" संभव है सभा के द्वारा नियुक्त उपसमिति न्याय विभाग का उत्तरदायित्व विशेष रूप से करती हो। "गाँवों में ग्रामवासी न्याय करते थे। न्याय के लिए भूमि, खेल में धोखा-धड़ी, ऋण उगाहना, उत्तराधिकार चौरी, आक्रमण और हत्या संबंधी विषय आते थे।

जुए में ऋणी होने पर दास बनने का दण्ड भोगना पड़ता था। न्याय की प्रक्रिया सरल थी।" साक्षियों का महत्त्व कम था। शपथ लेकर अपने को निर्दोष सिद्ध करने की रीति थी। कभी-कभी नागरिक भी अपराधी को अपनी ओर से दण्ड दे सकते थे। ऋण देने वाला ऋणी को द्रुपद नाम के खम्भे से बाँध कर उसे अथवा उसके संबंधियों को शीघ्र ही ऋण चुकाने के लिये बाध्य भी कर सकता था।

चोर भी बाँधे जाते थे। छान्दोग्य उपनिषद में एक स्थल पर उल्लेख मिलता है कि "चोर को न्यायाधीश के पास पकड़कर लाया जाता था तथा परशु को शीघ्र ही अग्नि में तपाया जाता था और अभियोगी को उसे हाथ में लेना पड़ता था। यदि अभियोगी जल जाता था तो उसे मार दिया जाता था और न जलने की स्थिति में उसे छोड़ दिया जाता था। लोगों की धारणा थी कि सत्यदेव ही उस व्यक्ति के सच्चे होने पर उसकी रक्षा करते हैं। हत्या के अभियोगों 10 गाय से 1000 गाय और एक बैल का दण्ड हत्यारे को देना पड़ता था। इसका नाम वैरदेय था।"

वैदिक न्याय व्यवस्था को कठोर न्याय व्यवस्था कह सकते हैं। कौटुम्बिक परिधि से लेकर राजकीय परिधि तक सर्वत्र कठोर दण्ड का प्रावधान था। प्रजा की भेड़ों को मार डालने वाले ऋजाश्व की आँखें उसी के पिता ने फोड़ दी थीं। सजा से विद्रोह करने की स्थिति में पुरोहित को मत्यु दण्ड दिया जाता था। इस युग में दैवीय दण्ड विधान भी प्रचलित था। किन्तु यह तभी कार्य करता था, जब साधारण विधि से अपराधी को दण्ड देना कठिन या असंभव हो। कुछ इसी प्रकार का उल्लेख अथर्ववेद में भी प्राप्त होता है। "इन्द्र उन सभी लोगों के हृदय में अग्निदाह उत्पन्न करता है जो ब्राह्मण को मृदु समझकर उसे मार डालते हैं, जो देवताओं की निन्दा करते हैं अथवा अनुचित धन की कामना करते हैं। ऐसे व्यक्ति से पृथ्वी और आकाश घृणा करते हैं।"

वैदिक काल में राजा देश का सर्वोच्च पदाधिकारी, सेनापति तथा न्यायाधीश होता था। राजा राज की सम्पूर्ण सत्ता का केन्द्र बिन्दु था। उस समय यह प्रथा थी कि मारे गये व्यक्ति के संबंधियों को धन देकर उसको प्राण के बदले में उऋण हुआ जा सकता था। एक स्थान पर एक व्यक्ति के प्राणों के मूल्य के रूप में सौ गायों के दिए जाने का उल्लेख है। यद्यपि मृत्यु दण्ड भी प्रचलित था तथापि अधिकांश मामलों में शारीरिक दण्ड ही उपयुक्त समझा जाता था। ऋण न देने पर बहुधा ऋणी को ऋणदाता का दासत्व स्वीकार करना पड़ता था।

वैदिक काल में राष्ट्र कई प्रशासनिक इकाइयों में बँटा था। ये प्रशासनिक इकाइयाँ थीं- ग्राम, जन, विश एवं राष्ट्र। विभिन्न ग्रहों के समुदाय को, जो सुरक्षा की दृष्टि से एक दूसरे के पास-पास बनाए गये थे, ग्राम कहा जाता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी और उसका प्रमुख 'ग्रामणी' कहलाता था। राज्य की दूसरी बड़ी प्रशासनिक इकाई 'जनपद' थी। इसमें एक विशेष समुदाय के लोग होते थे। राज्य की सबसे बड़ी इकाई राष्ट्र था जिसका शासक राजा होता था। एक राष्ट्र में कई जनपद होते थे। अनेक जनपदों से मिलकर राष्ट्र बनता था। "राष्ट्र के सभी लोगों को 'विश' कहा जाता है। ऋग्वेद में 'आर्यविश (10-11-4) और दासीविश (3-34-9) का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार वैदिक न्याय व्यवस्था राजा के इर्द-गिर्द घूमती नजर आती है। राजा को ही सर्वोच्य व ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे।"

सामायिक सन्दर्भ में वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था बहुत उपयोगी एवं प्रासंगिक है। आज न्याय का आधार कानून है। तत्कालीन समय में न्याय का आधार धर्म था। धर्म के विपरीत कार्य करने वाले को पापी समझा जाता था और उसे सजा दी जाती थी तथा धर्म का साथ देने वाले को राजा द्वारा पुरस्कृत किया जाता था। वास्तव में आज हम न्याय व्यवस्था को धर्म एवं नैतिकता से अलग नहीं देख सकते। वर्तमान समय में कानून का जो स्वरूप विद्यमान है उसका भी आधार कहीं न कहीं धर्म, अध्यात्म एवं परम्पराएँ ही हैं।

वैदिक साहित्य के एक सूक्त में प्रजापति की जुड़वाँ पुत्रियों के नाम सभा एवं समिति का उल्लेख मिलता है। यह सभा एवं समिति नामक संस्थाएँ न्याय पालिका एवं न्याय परिषद की ओर संकेत करती हैं। आज भी भारत सहित विश्व के अनेक राष्ट्रीय राज्यों में धर्म पालक संस्थाएँ विद्यमान हैं, जो न्याय देने का कार्य करती हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज की नयाय व्यवस्था वैदिक न्याय व्यवस्था का ही प्रतिरूप है और वह कभी भी धर्म के प्रतिकूल नहीं हो सकती।" यद्यपि आज व्यक्तियों को दण्ड के भय से न्याय का पालन कराया जाता है। उस समय लोग स्वत: ही न्यायप्रिय होते थे क्योंकि उनको यह पता होता था कि अधर्म का पालन करने पर वे नरक की भागीदार होंगे। ऐसे में आज वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था जो कि धर्म के नजदीक थी, महती आवश्यकता है। यदि व्यक्ति उन्हीं संस्कारों से सुसज्जित हो स्वत: न्यायप्रिय हो जाये तो हमारे लिए दण्ड के विधान की आवश्यकता ही न के बराबर होगी।

वास्तव में आज भी न्यायाधीश न्याय देते समय धर्म व अधर्म के विवेक से कानून की व्यवस्था करता है एवं परस्थितिपरक न्याय एवं दण्ड का विधान करता है। कहना मात्र इतना ही है कि हम अनुशासित होंगे तो किसी अनुशासक की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। वैदिक न्याय व्यवस्था की पृष्ठभूमि को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि हमें रक्त संयमित अनुशासित एवं न्यायप्रिय हो जाना चाहिए जो स्वत: वैदिक न्याय व्यवस्था की उपादेयता को सिद्ध करती है।

000

(शोध आलेख)

समय की सलवटें और 'समय सरगम' : कृष्णा सोबती

शोध लेखक : डॉ. अनिता भट्ट

डॉ. अनिता भट्ट
हिन्दी विभाग
आर्ट्स कॉलेज, पाटन

कृष्णा सोबती जी का उपन्यास ज़िंदगीनामा, डार से बिछुड़ी एवं मित्रों मरजानी पढ़ने के बाद एक बार इनका उपन्यास समय सरगम पढ़ने का अवसर मिला था एवं जो कुछ भी भाव मेरे मन में समा पाए उन्हें आप सबके सामने प्रस्तुत कर रहा हूं। इस उपन्यास में उठे कुछ प्रश्नों की पृष्ठभूमि में यह कहना चाहूँगा कि आँचल में दूध और आँखों में 'पानी' लेकर स्त्री ने मातृत्व की महानता के बहुत परचम गाड़े पर जल्द ही उसे समझ आ गया कि यह केवल समाज को गतिमान रखने की प्रक्रिया है। महानता से इसका कोई लेना देना नहीं है। आज नई पीढ़ी के बच्चे आत्मनिर्भर होते ही माँ-बाप की ज़रूरत को महसूस नहीं करते। मातृ ऋण, पितृ ऋण चुकाने की झंझट में न पड़कर आत्म ऋण से सजग होकर वाद-विवाद करके माँ-बाप से पल्ला झाड़ लेते हैं। पैदा होने का अधिकार माँगते हैं। नई पीढ़ी के युवाओं का यह अतिप्रश्न मुझे उषा प्रियंवदा जी की कहानी "वापसी" के नायक गजाधर बाबू की मन:स्थितियों की बरबस ही याद दिला देती है, जब वे अपने अतीत को याद करते हुए डूबती और डबडबाती आँखों में आँसू लिए अपने ही घर से पराए होकर एक दूसरी दुनिया में पदार्पण करने के लिए बाहर निकल पड़ते हैं। इस पोस्ट के माध्यम से नई पीढ़ी के युवाओं से मेरा अनुरोध है कि वे कुछ इस तरह का संकल्प लें एवं आत्ममंथन करें कि किसी भी बाप को गजाधर बाबू न बनना पड़े अन्यथा उनका भी वही हाल होगा जो गजाधर बाबू का हुआ।

मैं उस सदी की पैदावार हूँ जिसने बहुत कुछ दिया और बहुत कुछ छीन लिया। यानि एक थी

आज़ादी और एक था विभाजन। मेरा मानना है कि लेखक सिर्फ अपनी लड़ाई नहीं लड़ता और न ही सिर्फ अपने दु:ख, दर्द और खुशी का लेखा जोखा पेश करता है। लेखक को उगना होता है, भिड़ना होता है। हर मौसम और हर दौर से नज़दीक और दूर होते रिश्तों के साथ, रिश्तों के गुणा और भाग के साथ इतिहास के फ़ैसलों और फ़ासलों के साथ। मेरे आसपास की आबोहवा ने मेरे रचना संसार और उसकी भाषा को तय किया। जो मैंने देखा जो मैने जिया वही मैंने लिखा "ज़िंदगीनामा", "दिलोदानिश", "मित्रो मरजानी", "समय सरगम", "यारों के यार" में। सभी कृतियों के रंग अलग हैं। कहीं दोहराव नहीं। सोचती हूँ कि क्या मैंने कोई लड़ाई लड़ी है? तो पाती हूँ लड़ी भी और नहीं भी। लेखकों की दुनिया भी पुरुषों की दुनिया है, लेकिन जब मैंने लिखना शुरू किया तो छपा भी और पढ़ा भी गया। ये लड़ाई तो मैंने बिना लड़े ही जीत ली। कोई आंदोलन नहीं चलाया, लेकिन संघर्षों की, संबंधों की, ख़ामोश भावनाओं की राख में दबी चिंगारियों को उभारा उन्हें हवा दी, ज़ुबाँ दी।"
- कृष्णा सोबती

हिंदी कथा साहित्य में चेतना संपन्न कई उपन्यासों की रचना हुई है, इसमें कृष्णा सोबती का नाम भी प्रसिद्धि प्राप्त है। एक नारी होने के नाते उन्होंने नारी मन को सही ढंग से समझाया है। अपने अनुभव जगत् को रेखांकित करतीं वे अध्यात्म तक पहुँची हैं। उनके साहित्य में जीवन की सच्चाई है। भारतीय सहित्य के परिदृश्य पर हिंदी के विश्वसनीय उपस्थिति के साथ वह अपनी संयमित अभिव्यक्ति और सुधरी रचनात्मकता के लिए जानी जाती हैं। उन्होंने अब तक नौ उपन्यासों की रचना की है, इनमें समय सरगम वर्ष 2000 में प्रकाशित हुआ। कृष्णा सोबती जी की यह विशेषता है कि वह हर बार एक नया विषय और भाषिक मिज़ाज लेकर आती है। उनके अन्य उपन्यासों की तुलना में "समय सरगम" एकदम हटकर है। पुरानी और नई सदी के दो छोरों को समेटता प्रस्तुत उपन्यास जीए हुए अनुभव की तटस्थता और सामाजिक परिवर्तन से उभरा, उपजा एक अनूठा उपन्यास है। दूसरे शब्दों में कहें तो भारत की बुज़ुर्ग पीढ़ियों का एक साथ नया पुराना आलदान और प्रत्याख्यान भी है। परंपरा और आधुनिकता का समन्वय ही समय सरगम है। हमें यह बात स्पष्ट पता है कि परंपरा ही हमें वह छत उपलब्ध कराती है जो हर वर्षा, धूप, जाड़े तूफ़ान से रक्षा करती है और आधुनिकता वह सीमाहीन आकाश है जहाँ मनुष्य स्वच्छंद भाव से उड़ान भरता है और अपने 'स्व' का लोहा मनवाता है। अब स्त्रियाँ परंपरा रक्षित उस घर में क़ैद रहना नहीं चाहती हैं जो उनके सुरक्षा के नाम पर बंदी बनाता है। इसीलिए द्वंद्व की यह स्थिति उत्पन्न होती है। उन्होंने "समय सरगम" लिखकर उल्लेखित द्वंद्व की स्थिति का समाधान किया है। इस उपन्यास में आरण्या प्रमुख नारी पात्र है। वह पेशे से लेखिका है। उपन्यास के लगभग सभी पात्र जीवन के अंतिम दौर से गुज़र रहे हैं। जीवन की सांध्य-वेला में मृत्यु, भय तथा पारिवारिक सामाजिक उपेक्षा को महसूस करते इन पात्रों में उदासी, अकेलापन, अविश्वास घर करते जा रहा है, ऐसे में आरण्या ही एकमात्र पात्र है, जो मृत्यु भय को भुलाकर जीवन के प्रति गहरी आस्था के लिए जी रही है। उनका विवाहित और अकेले रहने का फैसला इस उम्र में उसकी समस्या नहीं बल्कि स्वतंत्रता है। आज की नारी केवल माँ बनकर संतुष्ट नहीं है वह एक स्वतंत्र व्यक्तित्व की भाँति स्वयं को प्रतिष्ठित करना चाहती है। आरण्या ने परंपरा को चुनौती दी है। आज तक के हमारे साहित्य, धर्म, दर्शन में मातृत्व का इतना बढ़-चढ़ कर वर्णन हुआ है कि मातृत्व प्राप्त स्त्री देवी के समान पवित्र एवं पूजनीय मानी जाती है। जितना उसका स्थान ऊँचा, पवित्र एवं वंदनीय है उतना ही अन्य रूप तिरस्कृत भी है।

उपन्यास में आरण्या जीवन के अंतिम पड़ाव पर खड़ी एक ऐसी स्त्री है जो नाती-पोतों के गुंजार से अलग एकाकी होने के एहसास को जी रही है, पर उसमें अकेलेपन की व्यथा नहीं है, जीवन को भरपूर जीने का संदेश है। घर परिवार के लिए होम होती रहने वाली आलोच्य उपन्यास की दमयंती और कैरियर के लिए परिवार के झंझट से दूर रहने वाली कामिनी, दोनों का एक जैसा त्रासद अंत इस तथ्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति है कि उद्देश्य की प्रधानता के साथ मानव अस्तित्व की कोई और भी सार्थकता है। आरण्या ने अन्य स्त्रियों के माध्यम से इस बात का अनुभव किया है। वह अपने व्यक्तित्व की पुनर्रचना करती जिंदगी के हर पल को जीना चाहती है दुख, दर्द एवं पीड़ा से वह दूर रहना चाहती है। इस उपन्यास के सभी पात्र मृत्यु भय से इतने अधिक त्रस्त हैं कि अनजाने ही मृत्यु को भोग रहे हैं। इन सबकी सोच, व्यवहार, प्रत्येक क्रिया कलाप के मूल में कहीं न कहीं मृत्यु भय है। इस उपन्यास में लेखिका ने नायक की अवधारणा को बदला है। नायक कभी-कभी खलनायक लगने लगता है। समाज की स्थिति में जबरदस्त परिवर्तन ने साहित्य में भी परिवर्तन कर दिया है। साहित्य में पुरुष जब तक महिमामंडित था, मानवीय गरिमा से संयुक्त था, परंतु स्त्री को तमाम अतींद्रिय शक्तियों को खोना पड़ा है। वह शासित और प्रताड़ित महसूस करने लगी है। आरण्या का व्यक्तित्व जिस तरह उपन्यास में खुलकर सामने आया है, उसकी आज़ादी, स्वतंत्रता एवं मुक्त जीवन के कई उदाहरणों को स्पष्ट करता है। ये सारे उदाहरण सिर्फ आरण्या के जिंदगी के नहीं बल्कि वर्तमान स्त्री जीवन की अस्मिता एवं उसकी सामाजिक रूझान की क्षमता को प्रकट करते हैं।

इस उपन्यास आरण्या और ईशान ऐसे ही चरित्र हैं, जो एक उम्र जी चुके हैं। लेखिका ने बुजुर्गों की कथा के माध्यम से जीवन के अंतिम छोर पर जी रहे लोगों की उलझनों, मानसिक द्वंद्वों, जीवन-शैली, मृत्युमय आदि कई विषयों पर दार्शनिक चिंतन प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही नारी जीवन की बदलती सोच एवं अपने अधिकारों के प्रति सजगता को भी रेखांकित किया है। सार संक्षेप यह है कि इस उपन्यास में सोबती जी ने स्त्री चरित्र की नई भाषिक सृष्टि के आयाम को एक संवेदनशील रचनाकार के रूप में अपने मनोभावों के आयाम को विस्तृत करने का ज़ोरदार प्रयास किया है।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यासों में नारी संवेदना

शोध लेखक : डॉ. अर्जुन के. तड़वी

उपन्यास कथा साहित्य की अति प्राचीन एवं अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधा है। रचनाकारों ने अपने वैयक्तिक उद्‌गार मात्र ही नहीं अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक महत्व के अहम मुद्‌दों, तत्वों व कारकों को अभिव्यक्त करने के एक सशक्त माध्यम के रूप में इस विधा का उपयोग किया है। स्त्री विमर्शवादी अवधारणा को भी हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रखर संवेदनात्मक दृष्टि के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्‌देश्य हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपनी अहम पहचान रखने वाली लेखिका मेहरुन्निसा परवेज़ के औपन्यासिक स्त्री पात्रों का माध्यम से उनके स्त्रीवादी विचारों, चिन्तन एवं दर्शन को समग्र रूप से विश्लेषित करना है। साथ ही वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में स्त्री संबंधी वैयक्तिक-पारिवारिक-सामाजिक-नैतिक रूढ़ मान्यताओं को समूलत: नष्ट कर समतावादी समाज की स्थापना हेतु मेहरुन्निसा परवेज के प्रयासों को रेखांकित करना भी उक्त शोध पत्र का विशेष प्रयोजन है।

प्राचीन भारतीय वाड्मय से लेकर वर्तमान समय तक नारी चेतन किसी न किसी रूप में साहित्य का विषय रही है। विनय कुमार पाठक के अनुसार, "आज से लगभग सवा सौ साल पहले श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास 'भाग्यवती' (1877) से लेकर आज तक स्त्री विमर्श ने आगे कदम बढ़ाया ही है, छलांग भले ही न लगाई हो। अलग-अलग पैमानों पर ही सही प्रगति हुई है।"

हिन्दी उपन्यास साहित्य पर यदि नज़र डालें तो स्वतंत्रता पूर्व हो या स्वातंत्रता के बाद का युग हो, नारी चित्रण उसका एक अविभाज्य अंग है। महिला उपन्यासकारों के साथ-साथ पुरुष उपन्यासकारों ने भी नारी समस्या एवं नारी के विभिन्न रूपों को अपने उपन्यासों के केन्द्र में रखा है।

भारतेन्दु युग में पहली बार उपन्यासकारों का ध्यान नारी की सामाजिक दशा की ओर आकृष्ट हुआ। स्वयं भारतेन्दु नारी की दयनीय स्थिति में सुधार लाने के पक्षधर थे। द्विवेदीयुगीन उपन्यासकारों का प्रमुख लक्ष्य सामाजिक कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना ही रहा है। हरिऔध का अधखिला फूल उपन्यास इसका सशक्त उदाहरण है।

प्रेमचन्द युग विचार के क्षेत्र में संक्रान्ति और संघर्ष का काल था। यथार्थ जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अपना प्रतिपाद्य बनाने पर भी प्रेमचंदयुगीन लेखक परम्परागत भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति अपने मोह को छोड़ नहीं सके और उसकी परिणति आदर्शोमुख यथार्थवाद में की। साहित्य में स्त्री को लेकर इस युग में परम्परावादी दृष्टिकोण ही विद्यमान रहा। जयशंकर प्रसाद तथा भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में जागरूक नारी के चित्रण की कोशिश उल्लेखनीय है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास 'सुनीता' (1935) की सुनीता व 'कल्याणी' (1939) उपन्यास की कल्याणी आदि नारी पात्रों के माध्यम से नारी के आंतरिक जगत का विश्लेषण करते हुए नारी की समस्याओं व उनकी अस्मिता को भिन्न रूप में उपस्थित करने का अनुपम प्रयास किया। अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' (1940) उपन्यास की शशि और 'नदी के द्वीप' (1951)की रेखा सशक्त नारी पात्र हैं। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल (1954) की कमली एवं लक्ष्मी आदि नारी चरित्र अपनी इच्छा को महत्व देने वाली सजग स्त्रियां हैं। रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ की प्यारी और कजरी भी नारी चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाले नारी पात्र हैं। जैनेन्द्र का 'दशार्क उपन्यास नारी सशक्तता का समर्थन करता है। 'त्यागपत्र की मृणाल जहाँ आत्मपीड़न का शिकार है वहीं 'दशार्क' की रंजना टूटती नहीं है, वह अपना रास्ता स्वयं बनाती है।

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में महिला लेखिकाओं के आगमन ने स्त्री विमर्श को नई दिशा दी। उषा प्रियम्वदा, मृदुला गर्ग, मन्नू भण्डारी, कृष्णा

डॉ. अर्जुन के. तड़वी
एसोशियेट प्रोफेसर,
आटर्स कॉलेज, पाटन, 384265
(उ. गुजरात)

सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, मेहरुन्निसा परवेज़ एवं नासिरा शर्मा आदि लेखिकाओं के उपन्यासों में ऐसी पढ़ी- लिखी, स्वावलम्बी, चेतनासम्पन्न स्त्री प्रतिपाद्य बनी। जिसमें परम्परागत सामाजिक-नैतिक मान्यताओं तथा सदियों के व्यवहार द्वारा पोषित नारी संहिता के प्रति तीव्र नकार है। राधिका (रुकोगी नहीं राधिका-1967), रत्ती (सूरजमुखी अंधेरे के-1972), शकुन (आपका बन्टी-1971), शाल्मली (शाल्मली-1987), प्रिया (छिन्नमस्ता-1993), महरुख (ठीकरे की मंगनी-1989), मंदा (इदन्नमम-1994) एवं सारंग (चाक-1997) आदि नारी चेतना के संवाहक कुछ ऐसे स्त्री चरित्र हैं जो मर्यादा पालन के नाम पर अपनी अस्मिता की तिलांजलि देने के स्थान पर प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अपनी पहचान बनाते हैं।

आधुनिक हिन्दी उपन्यास लेखन में स्त्री विमर्श को वैचारिक दृढ़ता एवं संवेदनात्मक गहराई प्रदान करने वाली लेखिकाओं में मेहरुन्निसा परवेज़ का नाम अन्यतम है। प्रस्तुत शोध पत्र में मेहरुन्निसा परवेज़ के औपन्यासिक स्त्री पात्रों के अध्ययन के माध्यम से उनके नारीवादी चिंतन-दर्शन को समझने एवं विश्लेपित करने के साथ-साथ उनके उपन्यासों के सशक्त, सजग तथा संवेदनशील चरित्रों में सन्निहित सूक्ष्म चारित्रिक विशेषताओं को आत्मसात् कर स्त्री विमर्श सम्बन्धी संतुलित दृष्टिकोण के सृजन का प्रयास किया गया है।

मेहरुन्निसा परवेज़ हिन्दी साहित्य जगत् का एक जाना-माना नाम है। हिन्दी कथा साहित्य में इनका प्रवेश बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक में होता है। इनकी रचनाओं में जहाँ आदिवासियों की गरीबी व शोषण की समस्या को विशेष रूप से स्थान दिया गया है, वहीं स्त्री संबंधी संवेदनाएँ भी मेहरुन्निसा परवेज़ की कथा संवेदना का मुख्य आधार बनीं। इनके औपन्यासिक स्त्री पात्र सशक्त एवं संवेदनात्मक रूप से सबल हैं। वे अति विसंगत स्थितियों में भी जीने और बेहद कठिन चकव्यूहों से निकलने की क्षमता रखते हैं। मेहरुन्निसा परवेज़ के स्त्री पात्र घर, परिवार, गाँव व समाज में जीते हुए उनसे ऊपर उठते दिखाई देते हैं। उनकी क्षमताएँ घर, परिवार, गाँव, समाज और देश का कायाकल्प करने का जीवट लिए हुए हैं। वे स्त्रीत्व को देह की संकीर्ण परिधि से मुक्त कर निजता एवं अस्मिता से संबंध करने को प्रयत्नरत हैं।

मेहरुन्निसा परवेज़ के पहले उपन्यास 'उसका घर' (1972)से लेकर सभी उपन्यासों की पृष्ठभूमि मध्य प्रदेश का बस्तर क्षेत्र है। "इन उपन्यासों में विशेष रूप से 'कोरजा' (1977) में बस्तर का क्षेत्र अपनी सारी भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ उपस्थित है।"

मेहरुन्निसा परवेज़ ने मुख्यतः मुस्लिम समाज को आधार बनाकर स्त्री की पीड़ादायक सामाजिक स्थिति, उसके भावनात्मक अकेलेपन एवं सन्नाटे को आत्मीयतापूर्ण सच्चाई के साथ उजागर किया है। मेहरुन्निसा की विशेष औपन्यासिक पहचान मुस्लिम समाज में पुरुष समाज द्वारा स्त्री के देह शोषण के संवेदनापूर्ण अंकन में निहित है।

मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यास 'कोरजा' की साजो का चरित्र इसका सशक्त प्रमाण है। पति उस्मान के इस दुनिया से चले जाने पर साजो अत्यन्त विपरीत स्थितियों में जीती है। अपना और अपने तीन बच्चों (रफीक, शफीक व मुन्न) के पेट पालने की लाचारी एवं बेरहम समाज में सिर से छत न छिन जाने की मजबूरी बेवा साजो को जुम्मन के पलंग पर ला पटकती है। अपने बच्चों को सुंदर एवं सम्मानजनक भविष्य देने के लिए उसे यह मौन समझौता करना पड़ता है। संसार की इस कटु सच्चाई से यदि वह जूझ रही थीं, तो केवल अपने बच्चों को पढ़ाने लिखाने के लिए ही, लेकिन जब मास्टर साहब रफीक और शफीक की दो महीने की फीस जमा न होने तथा उनके पास किताबें न होने के कारण उन्हें स्कूल से वापस भेज देते हैं तो साजो तमतमाए हुए चेहरा लिए कहती है- "इस तरह बच्चे बिना पढ़े रह जाएँ यह मुझसे नहीं देखा जाएगा।"

परिस्थितिगत विवशता के नाम पर पुरुष समाज की निरंकुशता झेलती साजो अपने भीतर की पीड़ा को शब्दों में अभिव्यक्त करती अम्मा से कहती है- "क्यों सुसराल का उलाहना देती हो? यहाँ कोई तुम्हारा दिया नहीं खा रहे, मैं भी अपना शरीर बेच-बेचकर यह दीवारों का सहारा रखे हुए हूँ, वरना सड़क पर बैठने की नौबत थी तुम लोगों की।" मगर रब्बो आपा नसीमा और अम्मा भी यह जानती हैं कि, "अगर साजो खाला ने यह कदम न उठाया होता तो पता नहीं आज हम सब कहाँ मारे-मारे फिरते।" पिछड़े मुस्लिम समाज की एक स्त्री द्वारा प्रचलित सामाजिक संहिता को ताक में रखकर अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति बारम्बार ऐसी टिप्पणी करना चौंकाता है।

'कोरजा' की राबिया के व्यक्तित्व में भी परिवर्तन की झलक दिखाई पड़ती है। नसीमा की रब्बो आपा देखने में भले ही ख़ूबसूरत थी, किन्तु उन्होंने जीवन में आरम्भ से ही अनेक कठिनाइयाँ झेली थीं। रब्बो के पैदा होते ही उसकी माँ ने दुनिया को विदा कह दिया। बाप ने दूसरी शादी कर ली, दादी चल बसीं। बारह साल की हुई कि बाप का साया भी उठ गया। घायल बचपन की दुखद स्मृतियों से पीछा छुड़ाती रब्बो एहसान की ओर आकर्षित हुई। किशोर मन की भावनाएँ कब प्रेम में बदल गईं, पता ही न चला। रब्बो एहसान संग जीवन बिताने के सपने देख रही थी, इसलिए गोंदिया वालों का रिश्ता आने पर घर में अपने विवाह की चर्चा चलते देख वह घबरा उठी। इस बीच कम्मो के माध्यम से उसे पता चलता है कि एहसान ने उससे विवाह करने से इंकार कर दिया, तो एक बार फिर बाल्यकाल की वे सारी स्मृतियाँ जीवित हो उठीं, जिसकी काली छाया से अभी भी उसका किशोर मन मुक्त नहीं हो पाया था। तिस पर इस मर्दवादी दुनिया के वीभत्स यथार्थ को झेलती साजो ख़ाला की स्थिति, इस सबको देख राबिया फैसला करती है कि -

"सुख का इंतज़ार करते-करते मैं नानी पर बोझ नहीं बनूँगी। मेरे नसीब में जो है उसे हँसकर सहूँगी बस।"

000

(शोध आलेख)

हिंदी आत्मकथा साहित्य में किन्नर जीवन

शोध लेखक : डॉ. सनोज पी.आर

डॉ. सविता सिंह के अनुसार "किसी व्यक्ति द्वारा अपने बारे में लिखी गयी पुस्तक / आत्मकथा अपने ही मुख से या अपना लिखा हुआ जीवन वृतांत, आत्मचरित, आपबीती"। आत्मकथा नाम से ही स्पष्ट है कि लेखकीय जीवनी है, जिसमें वह 'मैं'बनकर केन्द्रीय भूमिका का निर्वाह करता है। अपनी ज़ुबानी में स्वत: लिखने की एक विधा है।

बनारसी दास जैन द्वारा लिखित 'अर्धकथा'(1941) को हिंदी की पहली कृति माना जाता है। इस कृति से शुरू होकर आत्मकथा साहित्य एक नदी की तरह प्रवाहमय बन गयी है। स्त्री, दलित, आदिवासी एवं विकलांग पर भी अनेक आत्मकथाएँ चर्चित रही हैं।

मूलत: किन्नर साहित्य में सहानुभूति परक रचनाएँ ज़्यादा हैं स्वानुभूति का नहीं। इसका मुख्य कारण यह है शिक्षा का अभाव। शिक्षा ग्रहण करना, नौकरी पाना आदि किन्नरों से बहुत दूर की बात है। बचपन से ही किन्नरों को अपने परिवारों से अलग होना पड़ता है।

हिंदी आत्मकथा के क्षेत्र में किन्नर पर आधारित मौलिक आत्मकथा संख्या में नहीं है। "मैं पायल" महेंद्र भीष्म द्वारा रचित एक आत्मकथात्मक उपन्यास है। मराठी भाषा में लिखित लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी जी की आत्मकथा 'मैं हिजड़ा,...मैं लक्ष्मी' एक अनमोल रचना है। इसके साथ मानोबी बंध्योपाध्याय की 'पुरुष तन में फँसा मेरा नारी-मन' भी किन्नर पर केंद्रित आत्मकथा में महत्वपूर्ण है। इसके साथ रेवती की "हमारी कहानियाँ, हमारी बातें" और "मैं पायल"जैसी रचनाओं में लेखक खुद किन्नर की व्यथा को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

यहाँ किन्नर पर आधारित दो उल्लेखनीय आत्मकथाओं का विवेचन किया जा रहा है।

'मैं हिजड़ा ... मैं लक्ष्मी' - लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी द्वारा लिखित "मैं हिजड़ा ...मैं लक्ष्मी"(2015) पहली किन्नर आत्मकथा है जिसमें लक्ष्मी के बचपन से लेकर अब तक की यात्रा का वर्णन है। यह आत्मकथा किन्नरों के तमाम जीवन के विषय में बारीकी से किया गया अवलोकन है। इसके ज़रिये लक्ष्मी जी के जीवन के कई पड़ाव इसमें दर्ज हुए हैं। लक्ष्मी जी 2008 में संयुक्त राष्ट्र में एशिया का प्रतिनिधित्व करने वाली पहली किन्नर व्यक्ति है। यह आत्मकथा मूलत: मराठी में लिखी गयी बाद में गुजरती और अब अंग्रेज़ी और हिन्दी में भी प्राप्त है। इसका हिन्दी अनुवाद डॉ. शशिकला राय और सुरेखा दोनों ने मिलकर किया है।

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा की शुरुआत होती है -"पूर्वी उत्तर प्रदेश के सरयूपारीण ब्राह्मण चन्द्रदेव चंडीनाथ त्रिपाठी के बड़े बेटे लक्ष्मीनारायण उर्फ राजू के बचपन की यादों से... ठाणे शहर में सिद्धेश्वर तालाब के किनारे एक कच्चे घर में माँ, पापा, बड़ी बहन, मिंटू, छोटा भाई शशि और राजू। राजू का पूरा बचपन अस्थमा की बीमारी में ही बीता। कमज़ोर होने के नाते बहुत भागदौड़ की मनाही के बावजूद उसे नृत्य का बेहद शौक था अकेला था,

डॉ. सनोज पी.आर
असिस्टेंट प्रोफेसर - हिन्दी विभाग
सेंट जोसेफ़ कॉलेज देवगिरी
पीओ- कालीकट मेडिकल कॉलेज
कालीकट, केरल
मोबाइल- 9746078553

बीमार था, फिर भी मुझे नृत्य करना बहुत पसंद था... शायद मेरी बीमारी में यही मेरे दिल बहलाने का जरिया"

यह सत्य है कि जान-बूझकर कोई किन्नर नहीं बनता। यह एक सरल बात भी नहीं है, लेकिन समाज की नज़र पर वह नाचनेवाला था। उसे छक्का, बायकया, मामू कहकर लोग चिढ़ाने लगे। "हिजड़ा बनना बहुत बड़ी और कठिन प्रक्रिया है। असल में वह मानसिक होती है और बाद में उसे आध्यात्मिक और सामाजिक अधिष्ठान दिया जाता है। किसी पुरुष को, विशेष रूप से वह औरत है, ऐसा लगने लगता है कि पुरुष के रूप में उसका जीना मुश्किल हो जाता है और वह हिजड़ा होने का फैसला करता है।"

लक्ष्मी जी के जीवन में डांस ने उनको एक नया मोड़ दिया। डांस लक्ष्मी के अंदर था- "एक कलाकार, डांसर के रूप में इससे पहले मैं सहज ही लोगों के सामने जाती थी, पर अब मैं हिजड़ा थी। मेरी कला मेरे साथ थी ही, पर उसके साथ ही समाज में रहकर हिजड़ों के लिए काम भी करना था। सिर्फ कला पूरी पड़नेवाली नहीं थी उसके साथ एक्टिविज़्म को जोड़ना था।'

एक आम किन्नर की तरह लक्ष्मी अपनी जिंदगी को सामाजिक उपेक्षा और कलंक का निशाना नहीं बनाना चाहती थी बल्कि अपनी शिक्षा और कला के बल पर वह समाज में दूसरों की तरह जीने का दृढ़ निश्चय करती है। लक्ष्मी भी अपने समाज के पिछड़ेपन का कारण शिक्षा का अभाव ही मानती है। लक्ष्मी स्वयं पढ़ी-लिखी है और उसी प्रकार अपने समाज के किन्नरों को शिक्षा देना चाहती है। वह कहती है- "मुझे प्रोग्रेसिव् हिजड़ा होना है... और सिर्फ मैं ही नहीं अपनी पूरी कम्युनिटी को मुझे प्रोग्रेसिव बनाना है"

लक्ष्मी ने अपने समाज के नियमों का पालन करना बधाई माँगना, नाचना, भीख माँगना आदि कामों का विरोध किया। वह एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में कार्य करना चाहती है। लक्ष्मी का मानना है जो सम्मान उसे मिल रहा था, वही सम्मान उसके जैसे अन्य लोगों को भी मिलना चाहिए। इस उद्देश्य से अन्य साथियों से मिलकर 'दाई वेलकेयर सोसाइटी'के छात्रों के साथ नया काम शुरू किया। लक्ष्मी उस संस्था की पहली अध्यक्षा भी बनी। लक्ष्मी ने किन्नरों द्वारा स्वयं के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के हल एवं उसके प्रति सचेत होने के उद्देश्य से अन्य संस्था भी शुरू की। इसका नाम 'अस्तित्व' रखा गया था।

लक्ष्मी सिर्फ अपने ही विकास, अपनी ही भलाई की चिंता नहीं करती अपितु अपने संपूर्ण समाज के लिए संघर्ष करती है। सन् 2007 में वह 'अस्तित्व'को रजिस्टर करके प्रोजेक्ट शुरू करते हुए किन्नरों की तरफ देखने व व्यवहार करने का समाज का नज़रिया तबदील कर दिया, दूसरा मई 2007 में ट्रांसजेंडर फिल्म फेस्टिवल में लक्ष्मी द्वारा अभिनीत फिल्म 'बिटवीन द लाइन्स' दिखाकर किन्नर को प्रेरणा भी दिया।

अंततः यह कहा जा सकता है कि लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी आत्मकथा' एक ऐसी अमूल्य कृति है जो उनके ज़रिए किये विभिन्न कार्यों, संघर्षों और उस संघर्षों से मिले सम्मान व प्रसिद्धि प्राप्त करने को दर्शाती है। किन्नर को प्रेरणा देनेवाली यह एक अनुपम साहित्यिक सृष्टि है। यह कृति नकार को स्वीकार में बदलते जीवन का सच्चा दस्तावेज़ है।

पुरुष तन में फँसा मेरा नारी-मन

एक ऐसी ही चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण आत्मकथा है 'पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन।' यह मूल रूप से अंग्रेजी में 'A Gift of Goddess Lakshmi' नाम से लिखा गया है। जिसका हिन्दी का शब्दबद्ध करने का श्रेय सिमयी मुखर्जी पांडेय को है। मानोबी जी अपने जीवन में काफी सफलता हासिल कर पाई। उसके लिए उन्हें जो मदद मिली है, उनको यह आत्मकथा समर्पित करते हुए वे लिखती हैं कि "उन सबके नाम जिन्होंने मुझे अपमानित किया और अवमानव कहकर जीवन के हाशिए पर धकेला दिया। उन्हीं के कारण मुझे लड़ने की ताक़त मिली और मैं जीवन में आगे बढ़ पायी।"

सोमनाथ से मानोबी बनने तक की यात्रा कितना संघर्ष पूर्ण रही यह आत्मकथा पढ़ने से पता चल जाता है। मानोबी के शब्दों में - "मीडिया का कहना है कि कोई ट्रांसजेंडर पहली बार कॉलेज के प्रिंसीपल पद पर नियुक्त हुई जो अपने- आप में एक उल्लेखनीय कदम है।'

आत्मकथा की सबसे महत्त्वपूर्ण बात शिक्षा को ले कर आयी है। अपनी शिक्षा के द्वारा सोमनाथ ने अपनी ज़िन्दगी की कठिन परिस्थितियों का मुकाबला किया। उसने अपनी शिक्षा के बल पर ही अध्यापन का क्षेत्र चुना, न कि गाने-बजाने, नाचने या धंधा करने का- "मैंने अपनी वैकल्पिक लैंगिकता के बावजूद के लिए उच्च शिक्षा अर्जित की थी।"

उन्होंने अपनी पीएॅच.डी की शिक्षा पूर्ण की। सन् 2012 में राज्य ने प्रधानाचार्य पद की नियुक्ति का विज्ञापन दिया। मानोबी बंघोपाध्याय भारत की पहली प्रिंसीपल तक पहुंचनेवाली किन्नर हैं। सामान्य तौर पर हम मानते हैं कि किन्नर जो हैं पढ़े-लिखे नहीं होते हैं थोड़ी बहुत उनकी जानकारी होती है बस, लेकिन मानोबी जी ने इस मिथ को तोड़ा और महिला कॉलेज में प्रिंसिपल तक बनी। जिस सामान्य रूप में हम किन्नरों को जानते हैं कि वे भीख माँगते हैं, लोगों को तंग करते हैं, पैसे हटते हैं, मानोबी ने जीवन में ये सब कभी नहीं किये।

मानोबी का जन्म चितरंजन के घर में होता है। पिता समझते हैं कि दो बेटियों के बाद दुर्गा प्रसाद भी लाया है तो पुत्र का नाम सोमनाथ रख देते हैं। जैसे-जैसे सोमनाथ बड़े होता है वह नारी बनने के लिए छटपटाने लगता है। उसे महसूस होता है कि मैं स्त्री हूँ, मेरे अंतर, मेरे हाव-भाव में, मेरी आत्मा में एक स्त्री का निवास है। अपनी दोनों बड़ी बहनों के कपड़े मानोबी अपना लेता है। घर में वह स्त्रियों के कपड़े पहनता है। उसके हाव-भाव, चलने का ढ़ंग, बात करने का तरीका सबकुछ स्त्रियों जैसा ही रहता है। उसे नृत्य बहुत पसंद होता है संगीत बहुत पसंद होता है जैसे यह उसके जन्मजात गुण हो।

स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वह भाग लेता है। पढ़ाई में वह होशियार था। लोग

सोमनाथ के बारे में उल्टी-सीधी बातें तो करते हैं। माँ पुत्र को समझाती है कि लड़के स्त्रियों जैसा व्यवहार नहीं करते हैं, स्त्रियों के कपड़े नहीं पहनते हैं। सोमनाथ का जवाब होता है "माँ तुम क्यों नहीं जानती हो कि मैं स्त्री ही तो हूँ, स्त्री बनना चाहता हूँ, मुझे ऐसे ही रहने दो" माँ निरुत्तर हो जाती है।

घर में संपन्नता थी। आर्थिक रूप से कोई दिक्कत नहीं थी, लेकिन कभी भी सोमनाथ चैन से नहीं रह सका। हमेशा उसके अंतर स्त्री बनने की ललक रहती है जो नहीं था वह वही बनना चाहता था। वैसा ही व्यवहार करना चाहता था।

सोमनाथ परेशान होता रहता है। पहली परेशानी होती अपने अंतर की बेचैनी को दूर करने की, अपने अंतर के स्त्री को सामने लाने की, दूसरी बेचैनी होती है लोगों का सामना करने की। सात-आठ साल की उम्र तक उसके हाव भाव बिल्कुल लड़कियों जैसे हो गये थे। संभवत: अपनी इसी भावना को जताने के लिए ही वह लड़कों को अपनी ओर आकर्षित करता था। "पाँचवीं कक्षा तक आते-आते, मैं सुंदर नौजवानों की ओर आकर्षित होने लगी थी।"

एक आम धारणा है कि किन्नर मतलब सिर्फ किन्नर। हम लोगों से कई यह नहीं जानते हैं कि किन्नर बहुत प्रकार के होते हैं जिनमें कुछ लैंगिक कमज़ोर रहते हैं, कुछ वे जो विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित रहते हैं जैसा कि सोमनाथ था। पुरुष तन था, लेकिन स्त्री बनना चाहता था। कई ऐसे किन्नर भी होते हैं जो स्त्री तन में रहते हैं, लेकिन पुरुष बनना चाहते हैं। उनके अंदर हॉर्मोनल बदलाव होते रहते हैं और ये सब कुछ जन्म से ही होते हैं।

आज विज्ञान ने इतनी तरक्की कर ली है कि लिंग परिवर्तन हो जाता है। लिंग परिवर्तन के साथ ही हॉर्मोन के इंजेक्शंस दिये जाते हैं जिसके बाद जिस लिंग में व्यक्ति को परिवर्तित किया जाता है व्यक्ति का उसी तरीके से उसका शरीर सही रेट करने लगता है। त्वचा वैसी ही बनने लगती है। व्यक्ति वैसा ही दीखने लगता है और जो लिंग परिवर्तन कराके अपने मनोवांचित रूप में आते हैं उसे ही किन्नर कहते हैं। सोमनाथ भी किन्नर बनने के लिए, अपना ऑपरेशन कराने के लिए बेचैन रहता है। अपने चित और लगन के बल पर सोमनाथ अपना ऑपरेशन करवाने में सफल होता है, लेकिन तब उनको पता चला कि यह रास्ता कितना मुश्किल था। सिर्फ ऑपरेशन कराना काफी नहीं था। इस दौरान शरीर में बहुत सारे बदलाव होते हैं। हर बदलाव मन तक पहुँचता है, मानसिक रूप से भी कई तरह का भेदभाव झेलना पड़ता है। इसके लिए एक मानवशास्त्री से भी उन्हें मिलना पड़ता था। मन और शरीर पर विजय पाने के बाद उसका सामना समाज से होता है। समाज अब तक उसे पुरुष समझता था। अब स्त्री के रूप में समाज के सामने जाना और समाज का सामना करना बहुत कठिन था।

नया तन पाने के बाद उसने अपना नया नाम 'मानोबी बंधोपाध्याय' रखा। इस 'मानोबी'यानी कि 'सर्वश्रेष्ठ माता'। इस आत्मकथा में मानोबी ने अपने यौन जीवन के बारे में भी सब कुछ खुलकर लिखा है। इतना खुलापन आपको अन्य आत्मकथाओं में नहीं मिलेगा। स्त्रीपन की तलाश में सोमनाथ कितने लोगों से संबंध बनाता चला गया। शुरुआत में लोगों ने उसका काफी शोषण किया फिर उसकी इस आदत में शामिल होता चला गया। "यह सब यहीं समाप्त नहीं हुआ। वह उस आदमखोर बाघ की तरह था जिसने इंसानी लहू चख लिया था, वह हमेशा इसी मौके की ताक में रहता है कि मुझे अकेले में कैसे घेरा जा सकता था। धीरे-धीरे हम दोनों के लिए यह सब नियमित होता चला गया।"

मानोबी ने पूरी ईमानदारी से अपनी चंचल और अस्थिर मनोवृत्ति के बारे में बताया है। उसने किन्नरों के यौन व्यवहार के बारे में भी खुलकर लिखा है।

यह ऐसी आत्मकथा है जो समाज के हिस्से के बारे में भी बता देते हैं जिसके बारे में हम बिल्कुल नहीं जानते थे। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन'आत्मकथा हरेक किन्नरों में चेतना जगाने का प्रयास करती है।

000

नई पुस्तक

(कहानी संग्रह)

पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ

लेखक : वीणा वत्सल सिंह

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

पॉर्न स्टार, सरोज की डायरी के कुछ पन्ने, बॉडी मसाज, मैनिकिन कभी कुछ नहीं बोलती, अना, मालविका मनु इन कहानियों का संकलन है यह कहानी संग्रह। विशिष्ट कथाकार वीणा वत्सल सिंह की नई कहानियों का संग्रह। वे स्वयं अपने इस कहानी संग्रह के बारे में कहती हैं- भारतीय समाज अपनी जटिल संरचना के कारण अपने अंदर कई तरह की विडम्बनाएँ सृजित करता है और इसी सर्जना ने इस संग्रह की कहानियों को जन्म दिया है। कहानियों के सभी चरित्र आधुनिक समाज के सुंदर मुखौटों से निकले हुए हैं। चाहे वह कहानी 'पॉर्न स्टार' की मीशा उर्फ मीनाक्षी हो या इसी कहानी का पुरुष पात्र अकी उर्फ अक्षय हो। आधुनिकता की अंधी दौड़ में संग्रह की कहानियाँ आपको ठिठक कर सोचने को मजबूर कर देंगी और यह ठिठकना आज के समाज के लिए कितना आवश्यक है यह कहानियों के पात्र अपनी मुखरता से आपको अवगत करायेंगे।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

गाँधी से आज़ादी के अमृतकाल तक आधी आबादी: जयप्रकाश चौकसे के नजरिये से

शोध लेखक : सीमा जोधावत

सीमा जोधावत
शोधार्थी
महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविधालय,
अजमेर, राजस्थान

संकेताक्षर-आदर्शोन्मुखी जीवन, मनोवैज्ञानिक शिक्षक, सिंहनाद, मर्दानी, जीवनादर्श, अनुगामिनी

''जग जीवन पीछे रह जाये''
यदि नारी दे पावे न स्फूर्ति,
इतिहास अधूरे रह जाए
यदि नारी कर पावे न पूर्ति,
क्या विश्व-कोष में रह जाएं
होए न अगर नारी विभूति।''

इतिहास की धारा को अपने नैतिक बल द्वारा सही दिशा देने वाले बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी महात्मा गाँधी के विचार शिक्षा, समाज, नीति, राजनीति, धर्म, दर्शन, अर्थ तंत्र, लोक प्रशासन सभी क्षेत्रों में बहुत उपयोगी एवं सार्थक हैं। ये मात्र विचार नहीं वरन् उनके व्यावहारिक क्रियान्वय से साकार ठोस कार्य हैं।

स्त्री सशक्तिकरण का समर्थन गाँधी की कार्य-सूची में महत्त स्थान रखता हैं। गाँधी के सत्य के प्रयोग में स्त्री के माँ, भगिनी, भार्या, दुहिता, सखी, सहयोगी, सहकर्मी सभी रूपों के प्रति उच्च सम्मान भाव दिखता हैं। गाँधी का दृढ़ विचार था कि स्त्री को न देवी न दासी वरन् एक इंसान के रूप में मान्यता मिले, जिससे वे बराबरी का दर्जा पा सके। समकालीन जयशंकर प्रसाद की विश्वास रजत नग पग तल में, जीवन के सुंदर तल में पीयूष स्त्रोत सी बहती श्रद्धा रूपी नारी या आँखों में पानी, आंचल में दूध लिए राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त की अबला नारी से सर्वथा परे एक व्यावहारिक धरातल पर खड़ी गाँधी की नारी आधुनिक नारीवादी विचारों में रची बसी दिखायी देती हैं। श्री राज कपूर के अन्यतम मित्र जयप्रकाश चौकसे नेहरू के तिलस्मी व्यक्तित्व से अभिभूत एवं गाँधी के आदर्शों पर सदा श्रद्धावनत रहे। भारतीय सिनेमा के सौ वर्षों पर उनकी महात्मा गाँधी और सिनेमा पुस्तक में आजादी से 2012 तक यानी आजादी के पैंसठ सालों के समाज और सिनेमा पर गाँधीजी के असर को जिस रचनात्मकता से शब्दबद्ध किया है वह अद्भुत है। असहयोग आंदोलन, समाज की आवाज, गाँधीवादी आंदोलन, नारी जागरण, एक आध्यात्मिक त्रासदी, नेहरू युग, सिनेमा का स्वर्ण काल, आजादी की प्रतिनिधि फिल्में। सर रिचर्ड एटनबरो, मोहनदास से महात्मा तक का सफर, गाँधीगिरी की लहर ग्यारह अध्यायों में देश-दुनिया, समाज,सिनेमा की पूरी नब्ज़ पूरी निपुणता के साथ टटोली गई है साथ ही श्री सलीम खान द्वारा लिखित संक्षिप्त प्राक्कथन महत्व रखता है।

आज़ादी की अमृत महोत्सव काल में भी यह पुस्तक देश, समाज, महिलाओं, वंचितों सभी का सभी की वस्तु स्थिति का सटीक आंकलन प्रस्तुत करती है। ''सच तो यह हैं कि सच्चे मन से

गाँधी के आदर्श को स्वीकार करते ही मनुष्य बदल जाता हैं। हृदय परिवर्तन का गाँधी का कीमिया का रहस्य कोई रसायनशाला आपको नहीं बता सकती।''1

अपनों के लिए समर्पण, परिवार की सेवा, अपनी जरूरतों का त्याग इत्यादि अच्छे संस्कार अवश्य हैं, निश्चय ही नारी इन सब में परम संतोष का अनुभव पाती हैं किंतु अपनी चाहतों को दफन करना, जुल्म को चुपचाप सहना, दूसरों के लिए अपनी खुशियों की बलि देने का परम्परावादी विचार स्त्री के कोमल मन को विस्मित व्यथित अवश्य करता हैं। भारतीय संस्कृति ही नहीं वरन् दुनिया के हर कोने में पुरूष को स्त्री का मालिक समझा गया हैं। चौकसे ने वैश्यावृत्ति पर लिखे अपने आलेख 'फिल्मों में तवायफनामा' में लेकर लिखा हैं ''आध्यात्मिक भारत में भी देवदासी और नगरवधु परम्पराएँ रहीं हैं। सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ और पुरूष की असीमित लम्पटता से उत्पन्न इस प्राचीनतम व्यवस्था के साथ कलाकारों का भावुक नजरिया जुड़ा हुआ हैं। मानव सभ्यता के इतिहास में सिक्के के ईजाद से पहले औरत का शरीर सिक्के की तरह चलाया गया हैं।''2 आज यौन उत्पीड़न की बेतहाशा बढ़ती घटनाएँ मन को विचलित करती हैं। कलयुग हैं ऐसा कहा जाता हैं जबकि सत्य तो यह है कि नारी के लिए तो हर युग कलयुग ही रहा हैं। नारी को नरक का द्वार कहा जाता हैं। सीता, द्रोपदी जैसी रानियाँ तक अपने पति के हाथों ही लुटती रही हैं पति का सहारा, सहायता, सद्भाव कुछ भी नहीं पा सकी। साधारण स्त्रियों का तो हश्र ही क्या होगा ? मनु हो या तुलसीदास औरत तो ताड़न की अधिकारी ही बतायी जाती रही हैं। मौन मूक खूटे से बंधे पालतू नवर से भी प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाता हैं किंतु अहर्निश गृहकार्यों में उलझी, परिवार की सलामती के लिए व्रतोपवास में लीन, अपनों के लिए बड़े से बड़े बलिदान देने को तत्पर, खुद आधे में ही संतुष्ट, अपने बच्चों के लिए त्याग करती, तपस्वी-सा जीवन जीती स्त्री के साथ उपेक्षा, प्रताड़ना सहज रूप से सदियों से चले आ रहे हैं। आजादी से पहले बाल विवाह, बहुविवाह, सती प्रथा, विधवा जीवन, बहुपत्नी प्रथा, वेश्यावृति, दहेज, देवदासी प्रथा पूरे चरम पर थी। राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे, राम मनोहर लोहिया, डॉ.भीमराव अम्बेडकर, महात्मा ज्योतिराव फूले, आचार्य विनोबा भावे, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे महान् विचारकों व समाज सुधारकों ने इस दिशा में गंभीर प्रयास किये। इसी काल खण्ड में महात्मा गाँधी ने भी नारी की समानता की पुरजोर वकालत की। नारी अधिकारों के प्रखर हिमायती गाँधी लैंगिक असमानता को किसी भी रूप में स्वीकार करने का विरोध करते हैं। सदियों से स्त्रियाँ नागरिक की परिधि में स्वयं को वैधानिक पहचान दिलाने की जो जद्दोजहद कर रही हैं, वह अद्यतन उसी रूप में चली आ रही हैं। नर और नारी का शारीरिक भेद प्रकृति प्रदत्त हैं किंतु लिंग भेद सभ्य समाज के लिए अग्राहय होना चाहिए। सदियों से चली मानसिकता में सकारात्मक बदलाव स्वप्न हकीकत का जामा पहन पाए इसके लिए सुसंस्कार एवं सही राह दिखाने का काम गाँधी जी ने किया। गाँधी जी का विश्वास था कि भौतिक जगत या समाज में इच्छित बदलाव मानस की शक्तियों व आत्मबल द्वारा ही संभव हो सकेंगे। गाँधी के जीवनादर्श व आदर्शोन्मुखी जीवन पद्धति समाज के नागरिकों के मन को उद्वेलित कर पायी। गाँधी जी ने कहा ''प्राचीन नियम ग्रंथ उन रचयिताओं द्वारा बनाए गए जो पुरूष थे, इस वजह से महिलाओं के अनुभवों को उसमें प्रतिनिधित्व नहीं मिला। जुल्म सहती नारियों को सदा आदर्श के रूप में दर्शाया गया।

जुलम सहे भारी, सीता जनक दुलारी, राम की प्यारी, फिरे है मारी मारी, गगन महल का राजा देखो कैसे खेल दिखाये।3

दृढ़ शब्दों में पुरूष व स्त्री में से किसी को भी उच्चतर या निम्नतर नहीं कहा जाना चाहिए। येन केन प्रकारेण पुरूषों का युगों से महिलाओं पर आधिपत्य रहा हैं। इसलिए महिलाओं में एक हीन ग्रंथी विकसित हो गई हैं। उसने पुरूषों के इस प्रिय उपदेश के सत्य में विश्वास कर लिया हैं कि वह उनसे हीन हैं। हमें उन सम्बन्धों को दृढ़ रूप से चुनौती देनी होगी जो कि सामाजिक रीतियों में मजबूती से जमे हुए हैं तथा जो कुछ को अधिपति जबकि अन्य को हीन व अधीनस्थ को मजबूर करते हैं। नारी पर अधिकार जमा कर रखना यानि स्त्री पर स्वामित्व बोध नर के मानस में सहज रूप से पैठे हुए संस्कार हैं। जिन पर पुनर्विचार करना या कुछ खुले रूप से सोचने की कोई आवश्यकता ही कभी महसूस नहीं गई। एक ही तर्क हमेशा रखा जाता हैं स्त्री के विभिन्न रिश्तों यथा पुत्री, भगिनी, भार्या, माता का पुरूष पर आश्रित होना अत: उन्हें सुरक्षा देना पुरूष की जिम्मेदारी हैं। इन्हीं के साथ शांति, शुचिता, संस्कार, सौहार्द को भी जोड़ दिया जाता हैं। यानि यदि स्त्री इस कथित सुरक्षा घेरे से बाहर पग धरने की सोचती हैं तो स्वाभाविक रूप से वह पतित, अस्वीकार्य, अंहकारी मान ली जाएगीं। स्त्री का परिवार के सुरक्षित वातावरण से बाहर निकलना आगे बढ़ने की वांछा, चाहे वो शिक्षा प्राप्त करने की कामना हो या आजीविका के लिए जद्दोजेहद, चाहे अपने सपनों को यथार्थ के धरातल पर साकार करने की चेष्ठा हो या समाज के लिए कुछ करने की चाहत, कोई भी ऐसा उपक्रम जो समाज की स्थापित मान्यताओं से हल्का सा भी दायें बायें होने लगे वह पुरूष-ग्रंथि को कचोटता हैं। नारी सम्भवत: नैसर्गिक रूप से कभी भी पुरूष को नीचा दिखाने के लिए आगे नहीं बढ़ना चाहेगी। उसके पंख फैलाने को, उसकी सपनों की उन्मुक्त उड़ान को नरवादी सोच अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण समझती हैं। पुरूषोचित दम्भ नारी के आगे बढ़ने से अपना स्थान पीछे हो जाने के डर से, उसे आगे बढ़ने से रोकता हैं। पिता, भाई, पति, पुत्र आदि रिश्ते नारी को भी तो प्रेम की डोरी में बाँधते हैं। उनका प्यार, सहजने की भावना, अनहोनी रोकने की कवायद, सुरक्षा देने का भाव नारी को सम्बल देते हैं। यह सुकून जीवन की जरूरत हैं इनसे महरूम कोई नहीं होना चाहेगी। किंतु पुरूष यह भी तो समझे कि एक सीमित दायरे में बाँधकर रखना स्त्री के मानव होने के अधिकार का भी हनन हैं। सृष्टि ने नर और नारी दोनों के समान मस्तिष्क दिया हैं,

एक समान दिल, दिमाग, मन, विचार दिए हैं।"दुनिया की उपेक्षित आधी आबादी, जिसे कहा तो केयर जेंडर जाता हैं पर जिसके साथ जरा भी फेयर प्ले नहीं किया जाता है।"5 स्त्री को भारतीय समाज में लक्ष्मी रूप माना गया है। गाँधी जी ने गृहणी के लिए मितव्ययता एवं अपरिग्रह का सदा आग्रह किया हैं।

गाँधी ने स्त्री-पुरूष की भिन्नता व पूरकता का समर्थन किया।6 परम्परा के नाम पर अन्याय अस्वीकार्य किया जाना चाहिए।आजादी पाने की ललक में आधी आबादी का उत्साहपूर्वक योगदान गाँधी को अभिभूत कर देता हैं। पुरूष की अनुगामिनी नहीं अपितु सहचरी नारी की मानसिक क्षमताएँ व शक्तियाँ मर्द से किसी भी रूप में कमतर नहीं हैं। नारियाँ पुरूषों से अच्छी सत्याग्राही सिद्ध हो रही हैं। नारी प्रधान फिल्में एवं साहित्य भी गाँधी के विचारों को समर्थन देती है। लैंगिक असमानता, नारी उत्पीड़न, घरेलू हिंसा पर चलचित्र रचा जाता रहा है। अभिनेत्री विद्या बालन अभिनीत लघु फिल्म नटखट में एक मां अपने बेटे को समाज को देखने का नया नजरिया देती है। वह कहानी के जरिए अपने पुत्र को समझाती है कि उसके आसपास समाज के जो पुरुष है उसे उन जैसा नहीं बनना। अंतराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में ऐसी फिल्में प्रदर्शित किए जाने पर समाज में हल्ला मचने लगता हैं। इनके विरोध का यह कहकर ये फिल्में दुनिया के सामने भारत देश की छवि को धूमिल करती है जबकि फिल्मों में दिखाए जा रहे मुद्दे तो इसी देश की भयावह सच्चाई है। सत्यों एवं तथ्यों से आँखें चुराने, इन पर रचे सिनेमा का विरोध करना समस्या को समाप्त नहीं करेगा बल्कि अपनी सोच को ही सही दिशा देनी होगी। अंतराष्ट्रीय फिल्म समारोह में नियमित रूप से भाग लेते रहे चौकसे जी की समझ अंतराष्ट्रीय पटल पर प्रदर्शित देशी विदेशी फिल्मों को देख बहुत विकसित हो गई थी। उनके आलेखों में इस तरह की सिनेमाई एवं साहित्यिक कृतियाँ अपना स्थान अवश्य पाती रही हैं।

स्त्रियों की घरेलू दासता को जंगलीपन मानने वाले समाज-वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक शिक्षक गाँधी ने सामाजिक जनजागरण के उस युग में नारी चेतना का सिंहनाद किया। आधी आबादी के लिए किए कार्यों की लम्बी सूची में बाल विवाह का पुरजोर विरोध, विधवा विवाह समर्थन, शादी के लिए दोनों पक्षों की सहमति, दहेज को श्राप मानना, पुरूष का अधिनायकवादी रवैये, दम्पति के मध्य इच्छा विरूद्ध ससंर्ग का विरोध, लिंग भेद की अस्वीकार्यता, ब्रह्मचर्य पालन आते हैं। गाँधी जी का कहना था

कि "यदि मुझसे पुनर्विवाह के सम्बंध में नियम के बारे में पूछा जाए तो वह नियम स्त्री व पुरूष दोनों के लिए समान होना चाहिए।" पर्दा प्रथा पर गाँधी का कथन था कि पवित्रता कोई ऐसी चीज नहीं हैं जिसे जबरन लादा जा सके।बकौल चौकसे हमारे विचार तंत्र का स्थायी भाव हमेशा रूढ़िवादी ही रहा है। महिला के वस्त्रों की बाहें घटती बढ़ती रहती है। फैशन चक्र का क्षेत्रफल महिला की बाँह तक ही सिमटा है विचारों की संकीर्णता का हाल भी कुछ इसी तरह है। 7 राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त ने "पंचवटी" में पुरूष वर्ग के स्वार्थ की पोल खोल दी हैं-

"नरकृत शास्त्रों के बंधन हैं
सब नारी ही को लेकर
अपने लिए सभी सुविधाएँ
पहले ही कर बैठे नर।"

गाँधी ने स्त्री-पुरूष की भिन्नता एवं पूरकता की सच्चाई को समर्थन दिया हैं।

इंसान के रूप में दोनों ही समान सम्मान व स्वायत: के अधिकारी हैं। स्त्री समाज द्वारा निर्धारित अपने प्राथमिक उत्तरदायित्वों घर, परिवार का लालन पालन पूरे मन से करें किंतु उसका पूरा समय सिर्फ इन्हीं घरेलू कामों में खपाना उन्हें गलत लगता था। सन् 1933 में बंगाल में जन्मी नमिता लुम्बा का कथन हैं कि यदि अगणित नारियों को दुनिया के झूठे आँसूओं से विराग हो जाएँ तो वे अवश्य ही अपने विश्वास के दम पर अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगी। हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा में लिखा हैं कि उनके भीतर की स्त्री प्रबल हैं। शेखर कपूर ऊँचे कॉर्पोरेट पद को छोड़ अपने भीतर की स्त्री की खोज में चल दिए थे।

इन हस्तियों से भी पहले गाँधी जी ने अपने भीतर सुषुप्तावस्था में विद्यमान स्त्री का अस्तित्व महसूस किया था। आम जीवन में प्रकट रूप में अपनी कोमलता को स्वीकार कर गाँधी जी ने बहुत मानसिक बल एवं संवेदनात्मक सामर्थ्य को पाया था। इस महात्मा के जीवन की सबसे बड़ी ताकत हैं इनका आत्मबल। गाँधी का संयम हमें उपवास में भी दिखाता हैं। यही संयम नियम, नैतिक, सदाचार के साथ मिल जब ब्रह्मचर्य का रूप लेता है तो गाँधी का व्यक्तित्व खरा सोना बन जाता हैं। गाँधी के जीवन पर उनकी माँ पुतली बाई के आध्यात्मिक संस्कारों का प्रभाव ताउम्र दिखाई देता हैं। कस्तुरबा का साथ एवं सहयोग ने ही सच्चे अर्थों में गाँधी को गाँधी बनाया। यदि सहधर्मिणी का पूरा साथ न होता तो बापू का महात्मा बनना सम्भव न हो पाता। सैंतीस वर्ष की कम उम्र में जब पत्नी ने भी गाँधी के दाम्पत्य के शारीरिक रिश्ते को समाप्त कर सामान्य पर अति विशिष्ट सहयोगी का रिश्ता निभाना स्वीकार किया तो यह कस्तूरबा के चारित्रिक उज्ज्वलता एवं नैतिक ऊँचाई को सहज ही दर्शाता हैं। पति के साथ रहकर भी दूर रहना भी एक तपस्या ही है।

गाँधी का विश्वास था कि सदियों से शोषित स्त्री उचित शिक्षा का अवसर पाकर राख में दबी चिंगारी की भांति ज्वाला में अवश्य परिवर्तित होगी। यही अग्नि आज़ादी की मशाल की लो को और ज्यादा प्रज्ज्वलित कर भविष्य की राह प्रशस्त करेगी। साहित्य एवं सिनेमा में सक्षम महिला पात्रों को देखने पर महसूस होता है कि यहाँ गाँधी जी की भावनाओं को आत्मसात् किया गया हैं। गाँधी ने बाल विवाह का सदैव पुरजोर विरोध किया शादी के लिए वे दोनों पक्षों की पूर्ण सहमति को अत्यावश्यक मानते हैं। दहेज को उन्होंने सामाजिक श्राप माना। माता-पिता के बच्चों के लालन पालन में समान प्रेम भावना रखनी चाहिए। बालिका को उपेक्षा भाव नहीं मिलना चाहिए। लिंग आधारित तिरस्कार पूरी तरह अस्वीकार्य हैं। आज इक्कीसवी सदी में दम्पत्ति के मध्य इच्छा विरूद्ध संसर्ग एक

ज्वलन्त मुद्दा बन रहा हैं। गाँधी जी ने आज से सौ साल पहले ही इस बारे मे अपने सुस्पष्ट विचार रखे थे। उन्होने स्त्री की इच्छा के बिना पति द्वारा उसे छूने तक को गलत करार दिया। घरेलू हिंसा यानि स्त्री पर अधिनायकवादी रवैया रखने वाले पति व ससुराल पक्ष को लोगों को गाँधी ने चेताया। महिला का सम्मान सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता हैं। "सभी पुरूषों को शर्म से फाँसी पर लटक जाना चाहिए तब तक, जब तक कि एक भी महिला को वासना की दृष्टि से देखा जाता हैं।" वसु सी शीतल, अंशुमालि सदृश्य तेजोदीप्त नारी अनन्त गुणों की आगार हैं। रहस्यात्मक प्रकृति ने भी संसार में जीव को जन्म देने का महत्व दायित्वपूर्ण कर्तव्य नारी के खाते में उसकी क्षमताएँ देख कर ही डाला हैं। प्रशासक, कवयित्री, साहित्यकार, राजनयिक, राजनीतिज्ञ, न्यायाधीश, चिकित्सक, शायरा, विधिवेत्ता हर कार्यक्षेत्र में महिलाओं ने अपनी योग्यता को सिद्ध किया हैं। भानुमती, लीलावती, विद्योमा, मैत्रेयी, गार्गी, लोपामुद्रा अपनी ज्ञान एवं विद्वता के लिए जानी गई थी। चौकसे के अनुसार कामिनी, मोहिनी, जादूगरनी, मायाविनी, रूपगर्विता, सद्यस्नाता, षोडशा, मासंल सौन्दर्य, दिलकश हाव भाव, सम्पूर्ण श्रंगार किए पुरूष को लुभाती रिझाती नारियाँ बीते जमाने का भ्रम थी। आधुनिक गाँधीयुगीन नारी सक्षम, समर्थ होगी। यह गौरतलब हैं कि किसी स्त्री के साहस के कारण उसे मर्दानी कहा जाता हैं गोया कि साहस केवल पुरूष ही दिखा सकते हैं। हमारे लिंग भेद की मानसिकता की जड़े बहुत गहरी हैं। पुरूष स्त्री से कम बलशाली हैं और अपनी इस कमजोरी को छुपाते-छुपाते वे स्वयं इसे हिंसा द्वारा उजागर कर देते हैं।8

सशक्त चरित्र व मजबूत व्यक्तित्व की महिलाओं के प्रति सम्मान भाव स्वाभाविक रूप से जागता हैं किंतु अपने आपको हीनता-दीनता के (अनावश्यक) आवरण में लपेटे रहने वाली उन नारियों के प्रति आपने मन में आदर भाव नहीं जाग पाता, जो अपने आप में जीत का विश्वास नहीं जगा पाती। सामाजिक ताने बाने, पुरूष प्रधान समाज, विपरीत परिस्थितियों को अपना भाग्य मान चुपचाप अश्रु जल पीते ऐसी अबलाएँ समझौतों मे जीवन बीताने को ही अपना प्रारब्ध मान अपनी निजता एवं आत्मसम्मान को हालात की संदुकची में बंद कर उस पर अपने मौन का ताला जड़ अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर बनी रहती हैं। हिम्मत ए मर्दे-मदद-ए-खुदा इस कहावत में मर्द केवल पुरूष के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ हैं। अपितु मानवमात्र के लिए कहा गया हैं। हर व्यक्ति चाहे वो जिस लिंग का हो, जिस धर्म, समुदाय, जाति, पंथ, वय, आयु, विचारधारा, देश, काल, प्रांत, स्थान का हो, सभी को अपना जीवन जीने लायक बनाने का प्रयास तो अवश्य करना चाहिए। महिला स्वतंत्रता वस्तुतः बहुआयामी अवधारणा हैं। जहाँ आज़ादी मात्र राजनैतिक या आर्थिक नहीं हो सकती इसमें सामाजिक व सांस्कृतिक पक्ष भी सम्मिलित होगें। इंसानी समानता के बुनियादी अधिकार के आधार पर आधी आबादी भी सबल, सक्षम बने। स्त्री विमर्श मात्र तन के लिए नहीं वरन् एक स्वतंत्र सम्पूर्ण इकाई स्त्री की अस्मिता, निजता के लिए आवश्यक हैं।

स्वायता को गाँधी यूँ मानते है कि नैतिक व्यक्ति होने के नाते प्रत्येक मनुष्य को अपनी गरिमा बनाये रखने का अधिकार हैं किंतु साथ ही दूसरों की गरिमा बनाये रखने का कर्तव्य भी उससे जुड़ा हैं। गाँधी का भारतीय राजनीति में आना और दुनिया पर छा जाना जग प्रसिद्ध हैं। इतिहास की धारा को अपने नैतिक बल के द्वारा सही दिशा देने वाले गाँधी को परम्परा के नाम पर अन्याय अस्वीकार्य है। गाँधी ने स्त्री-पुरूष की भिन्नता व पूरकता का समर्थन किया। लैंगिक समानता के धुर समर्थक गाँधी ने जो शुभ सुंदर सदाश्या स्वस्तिमयी सकारात्मक हैं उसी को नारीत्त्व माना हैं। सदियों से इंसान की परिभाषा में स्वयं की स्वीकार्यता के लिए संघर्षरत स्त्री को गाँधी के सबल विचारों व कर्मों ने अपनी वैधानिक पहचान दिलाने का गुरू काम सहज ही किया। गाँधी का स्त्री विमर्श एक स्वस्तिमयी आश्वस्ति हैं।

000

नई पुस्तक

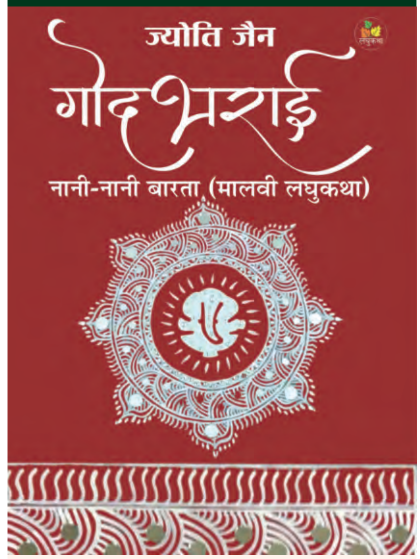

(मालवी लघुकथा संग्रह)

गोद-भराई
नानी-नानी बारता

लेखक : ज्योति जैन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कथाकार, उपन्यासकार ज्योति जैन द्वारा लिखी गई मालवी लघुकथाओं का संकलन है यह। मध्यप्रदेश के मालवा अंचल में बोली जाने वाली मालवी बोली की मिठास को इस संग्रह में महसूस किया जा सकता है। इस संग्रह के बारे में बात करते हुए मालवी और हिन्दी के वरिष्ठ लेखक श्री नरहरि पटेल लिखते हैं- सुपरिचित कथाकार ज्योति जैन की मालवी गद्य में आमद बड़ी संभावना लेकर हुई है। उनके लघुकथा संग्रह गोद-भराई की जितनी प्रशंसा की जाए कम है। ज्योति की बोली-बानी, घर-आँगन और जीवन दर्शन में मालवा का लोक संस्कार स्पंदित होता रहा है। 'गोद-भराई' के ज़रिए उन्होंने मेरी उस बात को आगे बढ़ाया जिसमें मैंने कहा है कि नये गद्य लेखकों को, नये तेवर के साथ दस्तक देनी होगी। ज्योति जैन की लघुकथाओं में हमारी माँ, भाभियों, बहुओं, और बेटियों के भावुक मन का इज़हार है। उसमें ख़ुशी भी है, अभावों की बानगी भी।

000

Research Article

(Research Article)

Impact of Globalisation on Employment of Employees

Research Author : Dr. Love Kumar

Dr. Love Kumar
Assistant Professor (Commerce)
Shaheed Mangal Panday
Rajkiya Mahila P G-college
Madhav Puram Meerut
Mobile- 9368235941

Across the developed world, women form an Increasing Proportion of the labour force, and women's Participation rates are up. In some countries women's employment rates are nearing men's, and more women than ever before traditional roles to Pursue careers once thought exclusively masculine. But there are still Pressure fou women to limit there economic activities.

For Example- By working Part-time or "scaling back "in other ways to accommodate care, and most women (some men) face challenges in reconciling work and family life.

Indeed, care giving work remains Predominantly women's work, and many women continue to subordinate employment to family responsibilities in various ways. It is true that the care of children and others defendant on Care is Part shifting to Institutions other then the family a subject taken up in greater detail later in this Paper: but it must be noted that in order to accommodate care, women still work Part-Time or drop out of the labour force all together at for higher rates then do men.

Impact of Globalisation on Employment in the formal and Informal Sectors.

The Impact of Globalization on Employment in the formal and Informal sectors would require establishing the position and trends

Prior to liberalisation up to 1991. Legal rights in the two sectors could hardly be more different if they belonged to different countries. The bulk of labour ligislation deliberately

excludes the Informal sector.

For Example - The factories Act 1948, which covers working conditinos health and safety like Toilets, working hours, Prohibition of child labour and night work for women, workplace creches, and much more, does not apply to Informal workers, Similarly the Employees.

State Insurence Act – 1948 Providing for accident compensation and sickness and maternity benefits, does not apply to work places with less than twenty workers with out Power.

This provides employers with a variety of ways to avade these laws splitting up an establishment Into smaller units which are supposedly Independent of one another, creating artificial breaks in employment so that worker newer become permanent, employing large numbers of Contract workers who are deemed to be employees of labour Contractors and there fore do not appear on the Payroll of the company or subcontracting Production to smaller workplace. The Payment of Bonus Act 1965 Employees Provident fund and miscellaneous Provision Act 1972 and Payment of Gratuity Act 1972.

Are likewise not applicable to informal workers.-

This does not mean that there is no protection whats ever for workers in the Informal sector.

For Example- The contract Labour (Regulation and Abolition) Act 1971, does Provide this category of workers with some minimal rights,

Child Labour -

The widespread occurrence of child labour is another characteristics of the informal sector. Reliable Statistics of the number of child workers in India are hard to come by, according to ILO estimates, the number is at least 90 million, while some NGOs Put it even higher the Child labour (Prohibition and Regulation) Act 1986 represents a half-hearted attempt by the Grovenment to deal with this problem. Its aim is not to abolish child labour but only to Prohibit its use in hazardous Industries.

Erosion of Job Security in the formal sector While employment Conditions in the informal sector have not changed significantly-and, indeed, could hardly have got which was characterised by high levels of Job security. In other Industries like Pharmaceuticals and Personal care products, although there was rapid automation, downsizing and an Increasing sense of insecurity amongst workers.

Employer Responses to Globalisation.

Must responses to globalisation by employers in the formal and Informal sectors have ranged from outright resection to qualified acceptance with only a small number of the best managed and most competitive companies showing a readiness to confront the challenges.

The first Category of Employers - Those who reject globlisation and want India to leave the WTO. represented politically by the extreme Right-wing Hindu nationalist RSS (Rashtriya sway sevak sandh) and its affiliates such as the SJM (Swadeshi Jagran manch).

Garment manufactures,for example are heavily dependent on exports and oppose protectionist measures by other countries against their own Products.

Trade unions in the formal sector workers -

When the demand for an “Exit Policy” began to be articulated shortly after the liberalisation of 1991, trade unions fought back, and succeeded in defeating any plans for change, How ever when employers began using Strategies like VRS instead, unions were less successful in fighting them.

A key element of this employers strategy, as we saw was the transfer of Production to in formal workers.

000

Bibliography

Sen India "Industrial Restructuring and women Workes. A case study the structural context for empowering women in India, FES and UNDP 1996

Vivekanandan "v" outright Rejection or strategic use ? A Repor" Environment and Globalisation centre for Education and Communication, New Delhi 1996.

Women in software Production in Kerela" Journal of International Development 2002.

Mitter, Swasti. Asian women in the digital economy Policies for Participation, Kuala Lumpur UNDP 2001.

https://www.europarl.europa.eu >ge
20 August 2019

https://www.researchgate.net
16 march 2020

Research Article

(Research Article)

Impact of capacity Building to Promoting Human Resource

Research Author : Rani Pal

Most countries, in addition to Shortcomings in the Availability of specialised expertise in the Areas of housing, settlement management, Land management, infrastructure, construction, energy, transport, and Pre disaster Planning and reconstruction, face three cross-sectoral human resource development. and capacity - building shortfalls. First is the absence by an enabling policy environment capable of Integrating the resources and Activities of the Public. sector. the private sector and the community, or social sector;

Second is the weakness of specialized training. and research Institutions, and third is the insufficient Capacity for technical training and assistance for low In Come Communities, both urban and rural.

Objective

The objective is to improve human resource development and capacity-building in all countries by enhancing the Personal and Institutional capacity of All Sectors. Particularly indigenous people and women, involved in human settlement development.

In this regard, Account Shouldl be taken of traditional cultural Practices of indigenous people and their relationship to the environment.

Activities

Specific human resource development and Capacity-building Activities have been built into each of the Programme areas of this chapter. More generally however, additional steps should be taken to Rain force Those Activities. In order to do so, all countries, as Appropriate, should take the following action.

(a) Strengthening the development of human resources and of capacity of Public sector Institutions through technical assistance and International Co-opration so as to achieve substantial Improvement in the efficiency. of governmental Activities;

(b) Creating an enabling Policy Environment supportive of the partnership between the Public, Private and Community sectors;

(C) Providing enhanced training and technical assistance to Institutions Providing training for technicians, Professionals and administrators, and appointed, elected and Professional members of local governments and Strengthening their capacity to address Priority. training needs, Particularly in regard to social economic and environmental aspects of human Settlements development.

(d) Providing direct assistance for human settlement development at the community level.

(I) Strengthening and Promoting Programmes for social mobilization and raising awareness of the Potential of women and youth in human settlements Activities.

(II) Faciliting coordination of the Activities of women youth,

Rani Pal
S.S.V. PG college Hapur
43 Rajeev vihar Hapur
Email-ranisarveshpal@gmail.com
Mobile- 8791271540

community groups and non-governmental organizations in human settlements development

(III) Promoting research on women's Programmes and other groups, and evaluating Progress made with a view to identifying bottlenecks and needed assistance.

(e) Promoting the inclusion of Integrated environmental management into general local Government Activities.

Both International organisations and non Governmental organizations should support the above activities by inten alia, strengthening subregional training Institutions, Providing updated training materials and disseminating the results of success you human resource and capacity building activities, programmes and Projects.

Human Resource Development and capacity Building

Developing countries should be assisted by International Support and funding agencies in upgrading the technical and managerial capacities of the small.

Entrepreneur and the vocational skills of opratives and supervisors in the Building materials Industory. Using a variety of training methods. These countries Should also be assisted in developing Programmes to encourage the use of non-waste and clean technologies through appropriate transfer of technology.

General Education Programmes should be developed in all countries, as appropriate to increase builder awareness of Available. Sustainable technologies.

Local authorities are called upon to play a pioneering role in promoting the increased use of environmentally sound building materials and construction technologies by pursuing an innovative procurement Policy.

All Countries Should

(a) Promote the free exchange of information on the entine range of Environmental and health aspects by construction, including the development of databases on the adverse environmental effects of building materials through the collaborative efforts of the Private and Public Sectors.

(b) Promote the development and dissemination of databases on the adverse environmental and health expects of building materials and Introduse. Legislation and financial incentives to promote recycling of energy - Intensive materials in the constraction Industory and conservation of waste energy in building materials Production methods,

(c) Promote the use of Economic instruments, such as Product charges to discourage the use of constraction materials and products that create Pollution during their life cycle.

(d) Promote information exchange and appropriate technology transfer among all countries, with Particular attention to developing countries, for resource management in Construction, particularly for non-renewable resources.

(e) Promote research in Construction Industries and related activities, and establish and strengthen Institutions in this sector.

(f) Developing countries should conduct training Programmes on disaster-resistant constraction methods for Contractors and builders who build the majority of housing in the developing countries.

Focus on the small business enterprises, which build the majority of housing in the developing countries.

(g) Training Programmes should be extended to Governmental officials and Planners and community and non Governmental organizations to cover all aspects of disaster mitigation, such as early warning techniques Pre-disaster Planning and Constraction, post disaster Constraction and rehabilitation.

This study seeks to Explore how Capacity building has been discussed in the field of HRD along with the challenges faced by HRD Professonals. while implementing capacity building.

000

Bibliography

Bryant Bunfan: Environmental Justice issue, Policies and solutions, washington, DC Island Press, 1995

http://www.research gate.net 09 sep 2021.

Deke T, Human Resource Development

VIPH Delhi 2013

GB.Kashyap, Environment and Development of Economics.

VIPH Delhi 2012.

Angel, Bradley: toxic threat to Indian Lands: A Greenpeace Report, San Francisco Green Peace, 1991.

http://www.coastalwiki.or9> wiki

Research Article

(Research Article)

Salt trade in the Chittagong Division

Research Author : Sanjeev Kumar Dey

Since long time salt has been an apple of cord in between the Indians and the colonial rule. British imposed restrictions to stop the Indians consume salt, the most valuable item in food. Nevertheless it was Mahatma Gandhi who launched the Dandi March to break the British made salt law. On the other part in Chittagong there was a huge transportation of salt through the Chittagong port which speaks itself of its importance, it was also used as medicine. Trade on salt was lucrative to the colonizers and this led to huge trade in the port.

Keywords: salt, Chittagong, import, export, colonizer

Introduction

An important item quite prominent and available in some regions of Chittagong Division was salt. Edward John Waring recorded some of the bazaar medicine including rock Salt used by the natives and the Europeans in the latter part of the nineteenth century. In view of this salt turned out to be one of the most vital medicines during those days. It was used for the cure of diseases, sometimes mixing with other herbal plants. Salt also served in many instances to get rid of diseases and this is why the understanding of salt in terms of colonial rules and regulations is important. Salt was also a common item of consumption to the natives and was definitely part and parcel of the daily life of the natives. British government forbid Salt-making in 1862 and because of this imported from Liverpool (Hunter: 189) became necessary. This was a turning point when salt was made to buy in the southeast of Asia from Europe i.e. supply from the civilized world to the uncivilized world and this was undertaken for profit motive.

Statement of the problem:

The study covers period from 1872 to 1898 mostly river-borne traffic on salt is used to understand the motive of the colonizer and their trade on salt. Salt has been an important item of consumption and the politics involved in the salt trade is in fact a matter of study. The idea of salt trade and the gains and politics involved in the system generated for exploitation of the indigenous people turn out to be an important item of study.

Study Area

For the study area the region of Chittagong division is taken as a matter of study. Chittagong lies in the southeastern region of undivided India and now in the present scenario it became a part of Bangladesh. This region including the southeast Asia mattered a lot to the colonizers whether it was British, Portuguese, Dutch, or French. The strategic position of this region and its corridor to the other regions like Myanmar, Cambodia, Vietnam, Indonesia, Thailand and other countries, make it very important. The Chittagong port has been a gateway to these strategic regions full of spices and other items which were time to time transported to the civilized world.

Methodology

Archival record of West Bengal and Assam is immensely used to frame this paper. The primary document sources is the backbone of the study. The study is qualitative in nature and lead to eye opening facts of the colonial regime. Salt is an important item used to make food delicious was gradually controlled and finally exploited by the so called civilized people for their own benefit. Furthermore, there was import and export trade on salt from Calcutta to Chittagong division and from Chittagong division to Calcutta form time to time.

Salt in Chittagong Division

Sanjeev Kumar Dey
Associate Professor,Government Kamalanagar College,Affiliated to Mizoram University (A Central University), Aizawl, Mizoram

It was certainly not that the natives of Chittagong Division were unaware on the technique of the production of salt. It was Dr. Francis Buchanan who mentioned in his diary about salt production in several parts of Chittagong Division of the province of Bengal. He mentioned that the district was very fertile and that Meenday and Santasheela (Coastal villages between Bulua and Noakhali, now washed away) were the places of salt making and the salt produced here was sold by the East India Company and that it was not very pure and in general it contains earth of about 5 percent of its whole weight. The natives at Jogdya (Village at the mouth of the Little Feni river, now washed away by the sea) make salt and use the leaves of the Hogla and Cog as fuel. While passing the little Fenny, the Dandara, and great Fenny (The Little Feni river, a stream in pargana Dandara to its east, and the Feni river which forms the boundary with the district of Chittagong) Buchanan also observed salt making at great Fenny and at the Gooroobatta creek. He stated that the poor people make salt by soaking straw in sea water and then burning it.

Salt-making enactment of 1862 eventually increases in salt supply to natives of Chittagong Division from Liverpool. Increase is also perceptible in the quantity and value of the staple imports during the year 1872-73 as compared with 1871-72. The staple imports consist of Liverpool salt and earth oil from British Burmah. It appears that 9,457 tons of Liverpool salt, valued at Rs. 12,87,217, were imported in 1872-73, against 5,577 tons, valued at Rs. 7,59,100, in 1871-72; and that 1,953 tons of earth-oil, valued at Rs. 2,79,968, were imported in 1872-73, against 1,525 tons, valued at Rs. 2,08,217, in 1871-72.

Fifteen vessels arrived at the port direct from Europe, laden with Liverpool salt, in 1872-73, against eight vessels in 1871-72; and the tonnage of these vessels amounted to 8,717 in the last year, against 4,593 in the preceding year. The marked improvement in the rice trade attracts an increased number of boats from neighboring districts, and these boats generally return to their respective districts with a cargo of salt. It is thus that a large quantity of salt finds its way to adjoining districts than heretofore, and this circumstance tends to develop the salt traffic of the port. European vessels direct from Europe were all salt-laden, and exhibit an increase of 7 vessels, or 4,124 tons.

Salt imports from Liverpools for the years 1871-72 in quantity was 1,51,820 mounds, and 5,577 tons and valued Rs. 7,59,100 whereas in 1872-73 it was 2,57,443 mounds, 9,457 tons and valued Rs. 12,87,217 Liverpool salt import was 12,87,217 rupees worth in 1872-73 increased in value at Rs. 5,28,117 since 1871-72. Salt imported into from Calcutta to Chittagong division in 1894-95 was 1,85,902 and in 1895-96 was 1,56,520 . The difference in the quantity of salt imported from Calcutta to Chittagong division was 29,382, the table shows that the import decreased considerably from 1894-95 to 1895-96. The quantities of salt carried to Chittagong division from Calcutta in 1893-94 was 1,31,400 mounds, in 1894-95 it was 1,85,902 mounds, and in 1895-96 it was 1,56,520 mounds. It shows that there was a hike in import of salt from Calcutta to Chittagong division since 1893-1894 to 1894-1895 which was of about 54,502 but the import decreased considerably by 29,382 since 1894-95 to 1895-1896.

Import of salt into Chittagong in 1893-94 by coasting and foreign vessels was 3,62,083 mounds which valued Rs. 3,45,456, in 1894-95 by coasting and foreign vessels was 2,79,082 mounds which valued Rs. 2,64,377, and in 1895-96 by coasting and foreign vessels was 3,69,296 mounds which valued Rs. 2,71,536. In terms of export of salt from Chittagong in 1893-94 by country boats it was 2,06,818 mounds which valued Rs. 6,72,158 and by coasting and foreign vessels was 98,681 mounds which valued Rs. 1,40,577 the total quantity of mounds stood at 3,05,499 and valued Rs. 8,12,735. In 1894-95 by country boats it was 2,51,935 mounds which valued Rs. 7,87,297 and by coasting and foreign vessels was 42,739 mounds which valued Rs. 71,100 the total quantity of mounds stood at 2,94,674 and valued Rs. 8,58,397. In 1895-96 the quantity of mounds exported by country boats was 2,79,532 which valued Rs. 8,73,537 and by coasting and foreign vessels was 71,649 mounds which valued Rs. 71,743 the total quantity of mounds exported was 3,51,181 and valued Rs. 8,95,280. It shows the amount of salt imported to and exported from Chittagong. It is seen that the amount of salt imported exceeds exports both in terms of quantity and value. Due to the unavailability of record with Assam State Archives imports of salt by country boats is not known. However, exports by country boats was highest in 1895-96. In case of imports by coasting and foreign vessels was highest in 1895-96 but in case of export it was highest in 1893-94. Nevertheless, the total of imports and export of salt by country boats and coasting and foreign vessels was highest in 1895-96.

Export of salt from Calcutta to Chittagong division in 1895-96 was 1,56,520 mounds, in 1896-97 was 1,36,330 mounds, and in 1897-98 it was 1,15,259 mounds. Highest mounds of salt was exported from Calcutta to Chittagong was in 1895-96 and the least was recorded in 1897-98. Total traffic of salt imported into Chittagong during the year 1895-

96, by coasting and foreign vessels was 3,69,296 mounds which valued Rs. 2,71,536 in 1896-97 imports by coasting and foreign vessels was 56,622 mounds which valued Rs. 78,395, and imports in 1897-98 was 6,57,662 mounds which valued Rs. 6,59,313. In terms of export in 1895-96 by country boats it was 2,79,532 mounds which valued Rs. 8,73,537, and by coasting and foreign vessels it was 71,649 mounds which valued Rs. 71,743 the total quantity of mounds imported in this year was 3,51,181 and valued Rs. 9,45,280. Export in 1896-97 by country boats it was 3,02,605 mounds which valued Rs. 10,59,117 and by coasting and foreign vessels it was 1,08,589 mounds which valued Rs. 1,04,714 the total quantity of mounds exported amounted to 4,11,194 mounds which valued Rs. 11,63,831, and in 1897-98 export by country boats it was 1,44,466 mounds which valued Rs. 4,69,516 and by coasting and foreign vessels it was 99,633 mounds and valued Rs. 99,635 the total quantity of mounds exported stood to 2,44,099 mounds and valued Rs. 5,69,151. Highest quantity of salt imported into Chittagong was in 1897-98 and lowest in 1896-97 whereas highest quantity of salt export from Chittagong took place in 1896-97 and lowest in 1897-98.

"The total importation of salt into Chittagong during 1897-98 was abnormal, the receipts having increased from 3,59,442 maunds in 1895-96 and 54,118 maunds in 1896-97 to 6,57,172 maunds in the past year. In his report the Collector remarks that the large increase in the import of salt is attributable to the smaller importation in the previous year, and to a cargo of Hamburg salt imported during the year under report. Hamburg salt was last imported into this port in 1892-93, and then the importation ceased, as the local consumers preferred the Liverpool Pungah. The decrease in revenue is attributed to smaller clearances of salt for local consumption, due apparently to the scarcity prevailing consequent on the last two years' bad rice crops and to the loss the people suffered by the cyclone of October last".

Conclusion:

There was huge transportation of salt from and to Chittagong since the British occupation of the region. The import and export of this indispensable item, necessary almost in every food, gave British huge economic gains and also reveals the exploitation of the region when one tries to understand this from the lenses of Marx. Politics on salt also brings us close to the understanding of Michel Foucault governmentality. Archival records showed that there was import and export of salt from and to Chittagong for which Chittagong port was used. Liverpool salt created a situation in the politics of salt in India including the colonial Chittagong. However, it can be witnessed that huge amount of salt through different means was traded in Chittagong.

000

Reference:

Willem van Schendel (ed.), Francis Buchanan in Southeast Bengal (1798) His Journey to Chittagong, the Chittagong Hill Tracts, Noakhali and Comilla, pp. 10-47.

General Department, 1873, Annual Report, Chittagong Port Fund, No. 82, dated Camp Comillah, the 20th June 1873, from H. Hankey, Esq., Officiating Commissioner of the Chittagong Division to the Secretary to the Government of Bengal, General Department, State Archives West Bengal, Kolkata.

General Department, 1873, Annual Report, Chittagong Port Fund, No. 82, dated Camp Comillah, the 20th June 1873, from H. Hankey, Esq., Officiating Commissioner of the Chittagong Division to the Secretary to the Government of Bengal, General Department, State Archives West Bengal, Kolkata.

No. 67, dated Chittagong, the 31st May 1873, from C. Marshall, ESQ., Conservator of the Port of Chittagong, to the Commissioner of the Chittagong Division. General Department, 1873, SAWB, Kolkata.

No. 67, dated Chittagong, the 31st May 1873 to the Commissioner of the Chittagong Division, General Department, 1873, State Archives West Bengal, Kolkata.

The annual report of the Chittagong Port Fund for the year 1872-73. Dated Calcutta, the 81st July 1873, Assam State Archives, Gauhati.

Report on the river-borne traffic of the lower provinces of Bengal and on the inland trade of Calcutta, and on the trade of Chittagong port for the year 1895-96, Calcutta, Bengal Secretariat Press, 1896, p. 26, Assam State Archives, Gauhati.

Report on the river-borne traffic of the lower provinces of Bengal and on the inland trade of Calcutta, and on the trade of Chittagong port for the year 1895-96, Calcutta, Bengal Secretariat Press, 1896, p. 46, Assam State Archives, Gauhati.

Report on the river-borne traffic of the lower provinces of Bengal and on the inland trade of Calcutta, and on the trade of Chittagong port for the year 1895-96, Calcutta, Bengal Secretariat Press, 1896, p. 55, Assam State Archives, Gauhati.

Report on the river-borne traffic of the lower provinces of Bengal and on the inland trade of Calcutta, and on the trade of Chittagong port for the year 1897-98, Calcutta, Bengal Secretariat Press, 1899, p. 32, Assam State Archives, Gauhati & Report on the river-borne traffic of the lower provinces of Bengal and on the inland trade of Calcutta, and on the trade of Chittagong port for the year 1897-98, Calcutta, Bengal Secretariat Press, 1899, p. 54, Assam State Archives, Gauhati.

Report on the river-borne traffic of the lower provinces of Bengal and on the inland trade of Calcutta, and on the trade of Chittagong port for the year 1897-98, Calcutta, Bengal Secretariat Press, 1899, p. 68, Assam State Archives, Gauhati.

Report on the river-borne traffic of the lower provinces of Bengal and on the inland trade of Calcutta, and on the trade of Chittagong port for the year 1897-98, Calcutta, Bengal Secretariat Press, 1899, p. 69.

Award Winner
Cafe Irani Chaii International Film Festival
2022

WINNER
2022
CARAVAN INTERNATIONAL FILM FESTIVAL

CRITICS CHOICE AWARD
INDO FRENCH INTERNATIONAL FILM FESTIVAL
2022

Certificate of Appreciation
awarded to Shaharyar Amjad Khan as the
BEST SOCIAL FILM
in recognition of your film
TUM LOG
at Café Irani Chaii International Film Festival 2022
Festival Chairman
Jury Chairman

Caravan International Film Festival
THIS CERTIFICATE IS PROUDLY PRESENTED TO
Tum Log
Directed by Irfan Khalil Khan
from
India
FOR BEING MONTHLY WINNER AT :
CARAVAN INTERNATIONAL FILM FESTIVAL
BEST SHORT FILM
(Outstanding Achievement Award)
FESTIVAL DIRECTOR

WINNER
INDO FRENCH INTERNATIONAL FILM FESTIVAL
Certificate of Achievement
This Certificate is Proudly Presented to
TUMLOG
IRFAN KHALIL KHAN
From INDIA
CRITIC'S CHOICE AWARD
BEST INDIAN SHORT FILM
SEPTEMBER 2022
Month
Executive Director

स्ट्रॉबेरी इंटरटेनमेंट क्रिएशंस
शिवना क्रिएशंस
और ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन
की फ़िल्म
"तुम लोग"
को तीन इंटरनेशनल अवार्ड

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 प्रथम सत्र का शुभारंभ महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी तथा क्रीसेंट ग्रुप के चेयरमेन श्री अखिलेश राय तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नमिता राय ने किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 द्वितीय सत्र का शुभारंभ मुख्य नगरपालिका अधिकारी श्री संदीप श्रीवास्तव, समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल, तथा डाइट की प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव बड़गुर्जर ने किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 तृतीय सत्र का शुभारंभ लोकायुक्त एसपी श्री मनु व्यास, स्मार्ट सिटी हॉस्पिटल के संचालक डॉ. विजय सक्सेना, समाजसेवी श्रीमती रश्मि व्यास तथा श्रीमती दीप्ति मिश्रा ने किया।

आष्टा में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 का शुभारंभ ढींगरा फ़ैमिली फाउण्डेशन के भारत प्रभारी पंकज सुबीर, पत्रकार श्री आकाश माथुर, सीहोर केंद्र प्रभारी सनी गोस्वामी तथा शिवना प्रकाशन के श्री शहरयार ने किया।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।